उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

व्यक्तित्व के सिद्धान्त(एमएपीएसवाई-610

Theories of Personality(MAPSY-610)

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	व्यक्तित्व:- परिभाषा, प्रकृति, उत्पत्ति एवं विशेषताएँ; व्यक्तित्व के सिद्धान्त : प्रकार एवं शीलगुण (Personality:- Definition, Nature, Origin and Characteristics; Theory of Personality: Types and Trait)	1-18
2.	व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व विकास की अवधारणा; व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक (Concept of Personality and Personality Development; Factors affecting Personality)	19-48
3.	व्यक्तित्व का मूल्यांकन; व्यक्तित्व परीक्षण और इसके महत्वपूर्ण मुद्दे (Assessment of Personality; Personality Test and Its Key Issues)	49-76
4.	उपनिषद, अभिधम्मा एवम सांख्य में व्यक्तित्व की व्याख्या (Explanation of Personality in Upanishad, Abhi-dharma and the Sankhya)	77-98
5.	योगा (आसन एवम प्राणायाम) द्वारा व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality through Yoga (Asana and Pranayam)	99-127
6.	व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त:- फ्रायड, एरिकसन, होरने, सुलिवन (Psychodynamic Theory of Personality:- Freud, Erikson, Horney and Sullyvan)	128-149
7.	व्यक्तित्व के सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (अल्फ्रेड एडलर, एरिक फ्रोम, करेन हॉर्नी), बैंडुरा का व्यक्तित्व का सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Social Psychological Theory of Personality (Alfred Adler, Eric Fromm, Karen Horney), Bandura Social Cognitive Theory of Personality)	150-176

8.	व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त (पैवलोव एवं स्कीनर), मानवतावादी एवं स्व सिद्धान्त (मेसलो, रोजर्स) (Learning Theory of Personality (Pavlov and Skinner), Humanistic and Self Theory (Maslow, Rogers)	177-206
9.	व्यक्तित्व का डोलार्ड एवं मिलर सिद्धान्त (Dollard and Miller Theory of Personality)	207-219

इकाई-1 व्यक्तित्व:- परिभाषा, प्रकृति, उत्पत्ति एवं विशेषताएँ; व्यक्तित्व के सिद्धान्त : प्रकार एवं शीलगुण(Personality:- Definition, Nature, Origin and Characteristics; Theory of Personality: Types and Trait)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 व्यक्तित्व का स्वरूप
1.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं
1.4.1सतही परिभाषाएं
1.4.2तात्विक परिभाषाएं
1.4.3समाकलित परिभाषाएं
1.5 व्यक्तित्व की विशेषताएं
1.6 व्यक्तित्व के उपागम
1.6.1 प्रकार उपागम
1.6.2शीलगुण उपागम
1.7 सार संक्षेप
1.8 पारिभाषिक शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

व्यक्तित्व एक जटिल विषय है। इसके अध्ययन की महत्ता इस बात से प्रमाणित हो जाती है कि जहां सभी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का स्वरूप व्यक्तित्व के स्वरूप से ही निर्धारित होता है, वहीं व्यक्तित्व के स्वरूप का निर्धारण भी इन सभी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं के सम्मिलित प्रभाव से ही होता है; जहां बुद्धि से व्यक्ति की योग्यताओं के अन्तर की जानकारी मिलती है, वहीं व्यक्तित्व से व्यक्ति के लक्षणों का ज्ञान प्राप्त होता है। ये लक्षण व्यक्तित्व के विशिष्ट गुणों के रूप में उसके व्यवहार एवं अनुभूतियों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

व्यक्तित्व मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जो वास्तव में जीव विज्ञान, समाज विज्ञान एवं मनोविज्ञान का संगम स्थल है। यह एक ऐसा विषय है जिसमें केवल मनुष्यों की चर्चा की जाती है, पशुओं की नहीं। अतः व्यक्तित्व का अध्ययन मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है।

प्रस्तुत इकाई में मनोविज्ञान के इस अत्यन्त ही जटिल विषय ''व्यक्तित्व'' को समझने, उसे परिभाषित करने, उसकी विशेषताओं को जानने तथा उसके विभिन्न उपागमों की व्याख्या करने का प्रयास अत्यन्त ही सरल रूप में किया गया है। आशा है, पाठकों को इस गूढ़ विषय को समझने में आसानी होगी।

1.2 उद्देश्य -

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप

1. व्यक्तित्व के स्वरूप का खाका खींच सकें।
2. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर उत्तम परिभाषा दे सकें।
3. व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकें तथा
4. व्यक्तित्व के विभिन्न उपागमों की व्याख्या कर सकें।

1.3 व्यक्तित्व का स्वरूप -

''व्यक्तित्व'' अंग्रेजी के पर्सनॉलिटी शब्द का हिंदी रूपांतर है। पर्सनालिटी शब्द की उत्पत्ति लैटिन के परसोना से हुई है। परसोना एक प्रकार के नकाब या मुखावरण को कहते हैं, जिसका उपयोग यूनानी नाटकों में भाग लेने वाले पात्र करते थे। इन नकाबों को चेहरे पर लगा लेने से यह स्पष्ट पता चल जाता था कि नाटक में विभिन्न पात्रों के कार्य किस ढंग के होंगे। इस परसोना शब्द से पर्सनॉलिटी शब्द बना है, जिसका अर्थ बनावटी रूप होता है। इस शाब्दिक अर्थ में जिन लोगों ने व्यक्तित्व को परिभाषित करने की चेष्टा की है, उन लोगों ने मनुष्य की बाह्य रूप-रेखा, वेश-भूषा को ही व्यक्तित्व कहा है। साधारण बोलचाल की भाषा में भी व्यक्तित्व का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। इस दृष्टिकोण को सतही दृष्टिकोण कहते हैं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जो देखने में सुंदर है, जिसकी पोशाक आकर्षक है, जो मधुरभाषी और फुर्तीला है- साधारण बोलचाल की भाषा में उसे अच्छे व्यक्तित्व का व्यक्ति कहा जाता है। ठीक इसके विपरीत, जब किसी बेडौल नाक-नक्शेवाले व्यक्ति को मैले कपड़ों में देखते हैं तब हम उसके व्यक्तित्व को बुरा कहते हैं।

व्यक्तित्व के संबंध में एक अन्य दृष्टिकोण तात्विक दृष्टिकोण कहलाता है। यह दृष्टिकोण मनुष्य के स्वाभाविक स्थायी गुणों की ही व्याख्या करता है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों में वारेन एवं कारमाइकेल के नाम प्रमुख है। वे व्यक्तित्व को मानसिक संगठन मानते हैं, जिसके अंतर्गत बुद्धि धातुस्वभाव, कौशल आदि आंतरिक स्वाभाविक गुण आते हैं।

लेकिन, उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में कोई भी एक दृष्टिकोण व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने में सफल नहीं है। मनोविज्ञान के अन्दर व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें दोनों दृष्टिकोणों को शामिल करना होगा। इसका मतलब यह हुआ कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें उसके बाह्य रंग-रूप, वेश-भूषा, चाल-ढाल इत्यादि के साथ-साथ उसके अन्दर के गुण, स्वभाव, विचार, अभिरूचि, मनोवृत्ति इत्यादि पर भी ध्यान देना होगा। अतःइस दृष्टिकोण के अनुसार 'व्यक्तिव को व्यक्ति के बाह्य एवं आन्तरिक स्वाभाविक स्थायी गुणों का समन्वय कहा जा सकता है।'

व्यक्तित्व के स्वरूप को और अच्छी तरह स्पष्ट करने हेतु हम एक सामान्य उदाहरण का विश्लेषण करें। मान लें, आपके किसी मित्र ने नौकरी के लिए आवेदनपत्र देते समय अपने परिचितों में आपका नाम दे दिया है। अब नियुक्ति करनेवाला ऑफिसर आपको एक गुप्त पत्र भेजकर उस उम्मीदवार की योग्यता, चरित्र एवं व्यक्तित्व के संबंध में पूछता है। उत्तर में आप लिखते हैं- उम्मीदवार का व्यक्तित्व आकर्षक और दिलचस्प है, वह उत्साही, अध्यवसायी और ईमानदार होने के साथ-साथ प्रसन्नचित, सरल और विश्वासपात्र है। वह अपने साथियों के साथ मिल-जुलकर काम करना जानता है, वह आत्मनिर्भर तथा अच्छे चरित्रवाला है। इसी तरह हजारों ऐसे विशेषण है जिनके उपयोग किसी के व्यक्तित्व को प्रकट करने हेतु किए जा सकते हैं।

यदि आप उपर्युक्त विशेषणों पर सोचें तो विदित होगा कि ये विशेषण सही अर्थ में क्रियाविशेषण है जिनसे व्यक्ति के व्यवहार के तरीकों के बारे में जानकारी मिलती है। अर्थात् व्यक्ति के विशिष्ट गुण उसके व्यवहार के तरीके का ज्ञान कराते हैं। अतःव्यक्तित्व की विशेषता बताने वाले शब्द व्यक्ति के गुणों के नाम है। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व एक छोटे-से काम को करने में भी प्रकट हो सकता है। उस कार्य को वह विशेष ढंग से करेगा और यही विशेष ढंग उसका व्यक्तित्व होगा। व्यक्तित्व के इस विश्लेषण के आलोक में ही वुडवर्थ एवं मार्क्रविस ने व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी है- व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की वह व्यापक विशेषता है जो उसके विचारों और उनके प्रकट करने के ढंग, उसकी मनोवृत्ति और अभिरूचि, कार्य करने के उसके ढंग और जीवन के प्रति उसके व्यक्तिगत दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रकट होती है

स्पष्ट है कि व्यक्तित्व में व्यक्ति के बाह्य रूप-रंग, वेश-भूषा आदि के साथ-साथ किसी कार्य करने के विशेष ढंग (जो उसका स्थायी गुण होता है) को प्रकट करने वाले गुणों का समन्वय होता है तथा इसी समन्वय के फलस्वरूप उसका वातावरण के साथ अभियोजन अपूर्व ढंग का होता है।

1.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं -

व्यक्तित्व के स्वरूप का ऊपर जो वर्णन किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को थोड़े से शब्दों में (संक्षेप में) बताना आसान काम नहीं है। इसका कारण यह है कि व्यक्तित्व की विशेषताओं को प्रकट करने वाले विशेषण अमूर्त होते हैं, जिन्हें ठोस अर्थ में व्यक्त करना कठिन है। फिर भी, विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की है। जहां कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य पक्ष के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है, वहीं कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष को महत्व देते हुए व्यक्तित्व की परिभाषा दी है। कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर व्यक्तित्व को परिभाषित किया है।

अतः व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उपलब्ध परिभाषाओं को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:-

(क) सतही परिभाषाएं- इस वर्ग की परिभाषाएं व्यक्ति के बाहरी पक्ष यानी शरीरिक रचना, रूप-रंग, शारीरिक बनावट आदि पर आधारित हैं। सुन्दर एवं संगठित शारीरिक रचना अथवा भव्य शारीरिक प्रतीति वाले व्यक्ति को देखकर हम अक्सर कह बैठते हैं कि उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। असल में व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमारी

यह धारण व्यक्तित्व के शाब्दिक अर्थ से प्रभावित है। यूनान के लोग नाटक के बड़े शौकीन थे। नाटक के समय अभिनय के अनुसार अभिनेता अपने असली चेहरा को छिपाकर नकली चेहरा के साथ दर्शकों के सामने आने के लिए अपने चेहरे पर एक विशेष मुखावरण लगा लिया करते थे, जिसको परसौना कहा जाता था। अभिनेता के मुखावरण को देखकर ही दर्शकों को इस बात का भान हो जाता कि उसका अभिनय किस ढंग का होगा। इस प्रकार एक विशेष समय में किसी अभिनेता के अच्छे, बुरे, संवेगी, असंगी या क्रोधी होने का परिचय उसके मुखावरण से मिल जाया करता था। इसी आधार पर बाद में शारीरिक गठन, शारीरिक प्रतीति तथा वेश-भूषा को व्यक्तित्व मान लेने की भूल की गयी।

उल्लेखनीय है कि सतही दृष्टिकोण व्यक्तित्व की व्याख्या उत्तेजना तथा प्रतिक्रिया के आधार पर करता हे। अतः सतही दृष्टिकोण को निम्नलिखित दो उप-वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः-

(1) उत्तेजना दृष्टिकोण- इस दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व एक उत्तेजना के रूप में कार्यरत होता है। प्रत्येक व्यक्तित्व का एक उत्तेजना मान होता है, जिससे उसकी (व्यक्तित्व की) प्रभावशीलता निर्धारित होती है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय इस बात से मिलता है कि वह दूसरे व्यक्तियों को किस रूप में प्रभावित करता है। उसका यह प्रभाव सकारात्मक भी होता है और नकारात्मक भी। फिर, उसके सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव की मात्रा अधिक भी हो सकती है और कम भी। वह दूसरों पर जितना ही अधिक सकारात्मक प्रभाव डाल पाता है, उसका व्यक्तित्व उतना ही अधिक भव्य, आकर्षक तथा प्रभावशाली समझा जाता है।

(2) प्रतिक्रिया दृष्टिकोण- इस दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व का बोध प्रतिक्रिया के रूप में होता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का बोध प्रतिक्रिया के रूप में होता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय इस बात से मिलता है कि वह भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार या प्रतिक्रिया करता है। किसी व्यक्ति को बार-बार आक्रमणकारी व्यवहार करते देखकर हम कह उठते हैं कि वह आक्रमणकारी व्यक्तित्व का व्यक्ति है। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति को बार-बार लजाते देखकर हम उसे लजालु व्यक्तित्व का आदमी समझने लगते हैं। स्पष्ट है कि इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय उसके द्वारा किये गये व्यवहारों से मिलता है।

व्यवहारवाद के जन्मदाता वाटसन (1924) ने सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी रचना व्यवहारवाद में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा व्यक्तित्व का तात्पर्य विश्वसनीय सूचना हेतु एक लंबे समय तक निरीक्षण की जाने वाली क्रियाओं के योगफल से है। इसी प्रकार शर्मन (1925) ने व्यक्ति की शारीरिक प्रतीति (उत्तेजना मान) तथा उसके व्यवहार (प्रतिक्रिया-मान) को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व की परिभाषा दी कि व्यक्ति के विशिष्ट व्यवहार को व्यक्तित्व कहते हैं। मैक कीनन (1944) ने भी सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित किया और कहा कि आदत-प्रणाली तथा क्रियाओं का परिणाम ही व्यक्तित्व है।

लेकिन, सतही परिभाषायें अधिक दिनों तक टिक नहीं सकी। विद्वानों ने व्यक्तित्व को केवल उत्तेजना (बाह्य प्रतीति) अथवा प्रतिक्रिया (व्यवहार) के रूप में स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि व्यक्तित्व का समबन्ध

बाहरी भेष-भूषा या व्यवहार से नहीं है, बल्कि उन आन्तरिक शीलगुणों से है, जो व्यक्ति के व्यवहारों के निर्धारक हैं। इसी दृष्टिकोण को तात्विक दृष्टिकोण कहा गया।

(ख) **तात्विक परिभाषाएं-** इस वर्ग की परिभाषाएं अधिक उपयोगी तथा संतोषजनक हैं, क्योंकि उनके आधार पर व्यक्तित्व का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो पाता है। तात्विक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति का आंतरिक स्थाई स्वभाव ही व्यक्तित्व है। बुद्धि, स्वभाव, प्रवृत्ति, नैतिकता, संवेगशीलता आदि आन्तरिक शीलगुणों से संरचित मानव-स्वभाव ही वास्तविक अर्थ में व्यक्तित्व है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहारों का असल निर्धारक यही मानव स्वभाव है।

प्रिन्स (1974) ने व्यक्त्वि के तात्विक दृष्टिकोण पर बल दिया। उन्होंने अपनी रचना अचेतन में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा कि व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति के सभी जैविक जन्मजात प्रवृत्तियों, आवेगों, झुकावों, अभिलाषाओं, मूल-प्रवृत्तियों तथा अर्जित प्रवृत्तियों एवं झुकावों के योगफल से है। स्पष्टतः इस परिभाषा में व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष पर बल दिया गया है। यही मानसिक संगठन मानव-स्वभाव है, जो एक स्वतंत्र चर के रूप में भिन्न-भिन्न व्यवहारों (आश्रित चरों) को नियन्त्रित तथा संचालित करता है। वारेन आदि ने भी इसी अर्थ में व्यक्तित्व की परिभाषा दी है और कहा है कि मानव का सम्पूर्ण मानसिक संगठन ही व्यक्तित्व हे।

इस वर्ग की परिभाषाएं भी व्यक्तित्व की व्याख्या करने में केवल आंशिक रूप में सफल है। कारण, इन परिभाषाओं में केवल आंतरिक पक्ष पर बल दिया गया है और बाह्य पक्ष की उपेक्षा की गयी है। तात्विक परिभाषाओं में व्यक्ति की मनोवृत्ति, मनोवेग, अभिलाषा आदि गत्यात्मक प्रत्ययों पर बल दिया गया है, परन्तु उनका अध्ययन प्रत्यक्ष रूप में सम्भव नहीं है। अतः मानसिक संगठन के सही स्वरूप को समझने के लिए बाह्य प्रतीति तथा व्यवहार का अध्ययन आवश्यक है।

(ग) समाकलनात्मक परिभाषाएं- इस वर्ग की परिभाषाएं व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या करने में काफी सफल है। इन परिभाषाओं में व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष तथा आन्तरिक पक्ष दोनों पर बल दिया गया है। हम देख चुके हैं कि सतही परिभाषाओं में व्यक्तित्व के केवल बाह्य पक्ष अर्थात् शारीरिक गठन एवं व्यवहार पर बल दिया गया और तात्विक परिभाषाओं में केवल आन्तरिक पक्ष अर्थात् मानसिक गठन पर बल दिया गया। लेकिन, मनोवैज्ञानिकों की एक बड़ी संख्या ने व्यक्तित्व को दोनों पक्षों का समाकलित रूप माना है। इस दिशा में गार्डन ऑल्पोर्ट (1937) का प्रयास बहुत सराहनीय है। उन्होंने परसौना तथा पर्सनालिटी की छोटी-बड़ी 50 परिभाषाओं की एक सूची तैयार की और कहा कि व्यक्तित्व की केवल वही परिभाषा संतोषजनक हो सकती है, जो व्यक्तित्व के बाह्य तथा आंतरिक पक्षों की व्याख्या करने में सफल हो। अपने इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने व्यक्तित्व की परिभाषा दी कि, ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करते हैं।''

ऊपर जिन महत्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है, उनमें कुछ परिभाषाओं में व्यक्तित्व से व्यक्ति के व्यवहार का बोध होता है तो कुछ परिभाषाएं जैवभौतिक दृष्टिकोण के आधार पर दी गई हैं। जैवभौतिक दृष्टिकोण

के अनुसार व्यक्तित्व जीवरसायन एवं शारीरिक रचना पर निर्भर करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के शीलगुण पर जोर दिया है, जिनके अनुसार शीलगुण ही व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं। कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिक के अनुसार, व्यक्ति अपने समाज के दूसरे लोगों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करता है, वही उसके व्यक्तित्व का सूचक होता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि विभिन्न मनोवैज्ञानिक द्वारा दी गई परिभाषाओं में काफी भिन्नता है। यह विभिन्नता केवल शब्दों का ही नहीं, वरन् उनके दृष्टिकोणों का भी है। अतः, उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाओं में कौन परिभाषा सर्वोत्तम है यह निश्चित करना आसान नहीं प्रतीत होता। वास्तविकता तो यह है कि व्यक्तित्व अपने-आप में एक पूर्ण संगठितइकाई है, जिसमें व्यक्ति की जैविक तंत्रों का समावेश रहता है। यह संगठन प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रतिरूपें का होता है, जिससे वातावरण के साथ उसका अभियोजन-संबंधी व्यवहार अपूर्व ढंग का होता है। व्यक्तित्व के इस स्वरूप को मद्दे नजर रखते हुए ऑलपोर्ट, द्वारा दी गई परिभाषा को एक उत्तम परिभाषा माना जा सकता है। उनहोंने **"व्यक्तित्व को व्यक्ति के मनःशारीरिक गुणों अथवा तंत्रों का गत्यात्मक संगठन बताया है तथा इसी संगठन पर व्यक्ति का वातावरण के साथ विशिष्ट या अपूर्व अभियोजन निर्भर करता है"** इस परिभाषा में अन्य सभी परिभाषाओं की बातें तो शामिल हैं ही, साथ-ही-साथ इसमें व्यक्तित्व को गत्यात्मक स्वरूप का संगठन बताया गया है। तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के विभिन्न मनःशारीरिक गुण, जैसे- धातुस्वरूप, कौशल, मनोवृत्ति, विवेक आदि का संगठन लचीले स्वरूप का होता है। यही कारण है कि समय और परिस्थिति के अनुरूप व्यक्ति का व्यवहार भी अलग-अलग स्वरूप का होता है। साथ ही, इस परिभाषा में व्यक्तित्व की अपूर्वता पर भी जोर दिया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि ऑलपोर्ट की परिभाषा से व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप अच्छी तरह चित्रित होता है। अतः इसे व्यक्तित्व की एक उपयुक्त परिभाषा कह सकते हैं।

1.5 व्यक्तित्व की विशेषताएं-

मनोवैज्ञानिक जब व्यक्तित्व का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है तब उसका एकमात्र उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार द्वारा प्रदर्शित लक्षणोंद्व गुणों या विशेषताओं को पहचानना होता है। व्यक्तित्व के विशिष्ट लक्षण, विशेषता अथवा शीलगुण का तात्पर्य व्यक्ति के किसी खास गुण, विशेषता जैसे- हसमुख होना, आत्मविश्वासी होना, उत्साही होना, जिद्दी होना आदि से है जो व्यक्ति के कार्यों में अपने-आप (स्वतः) प्रकट होता है तथा जो कुछ समय के लिए उसके स्वभाव का अंग बनकर स्थिर रहता है। इन्हीं शीलगुणों की जटिल संरचना से व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व बनता है। यही कारण है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में स्थिरता एवं क्रमबद्धता पाई जाती है।

व्यक्तित्व के शीलगुण की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है- किसी खास परिस्थिति में व्यक्ति की सामान्यीकृत एवं निर्भरतापूर्वक व्यवहार करने के ढंग को शीलगुण कहते हैं।

कुछ लोग शीलगुण या विशेषताओं के आधार पर व्यक्तित्व को अलग-अलग प्रकारों में बांटते है। जैसे हम कहते हैं- 'क' एक ईमानदार व्यक्ति है, 'ख' का व्यक्तित्व विनीत प्रकार का है, 'ग' का व्यक्तित्व सामाजिक है इत्यादि। इन कथनों में हम व्यक्ति के व्यवहार की विशिष्ट विशेषता या शीलगुण पर ही जोर देते हैं। लेकिन, किसी व्यक्ति के

व्यक्तित्व को केवल उसके शीलगुण या विशेषता के आधार पर परखना गलत है। किसी व्यक्ति में किसी शीलगुण की प्रधानता से उसके व्यक्तित्व की पूर्णता का बोध नहीं होता, बल्कि इसका अर्थ केवल इतना है कि उस व्यक्ति में वह गुण या विशेषता दूसरों की अपेक्षा अधिक है। यानी, हम कह सकते हैं कि प्रत्येक शीलगुण की एक विमा होती है, जिसके विभिन्न बिंदुओं पर उस शीलगुण की विभिन्न मात्राएं रहती हैं और व्यक्ति के व्यवहारों का निरीक्षण कर उसे उस विमा के अलग-अलग बिंदुओं पर रख जाता है। शीलगुण विभिन्न मात्राओं में रहते हैं तथा उनका संगठन भी एक निश्चित प्रकार का होता है। यह संगठन विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग प्रतिरूपों का होता है। यही कारण है कि किसी एक ही शीलगुण की प्रधानता वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व में भी भिन्नता मिलती है।

व्यक्ति के व्यवहार की विशेषताएं अनेक हैं। ऑलपोर्ट एवं ऑडबर्ट (1936) को वेबस्टर की अंग्रेजी शब्दावली में लगभग 18,000 ऐसे विशेषण शब्द मिले, जो व्यक्ति की कार्यशैली, चिंतन, प्रत्यक्षीकरण आदि व्यवहार की विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। लेकिन, इनमें अनेक विशेषण शब्द एक-दूसरे के समानार्थक हैं और कुछ दुर्लभ। इस तरह, समानार्थक एवं दुर्लभ शब्दों को छांटने पर लगभग 170 विशेषण शब्द प्रचलित प्रतीत होते हैं। अर्थात् उन्हें हम प्रचलित नामों से व्यक्त करते हैं।

सधारणतः व्यक्तित्व के इन प्रचलित शीलगुणों में किसी शीलगुण को उसके विलोम शब्द के जोड़ा रूप में ही व्यक्त किया जाता है। जैसे-प्रसन्नचित-उदास, दयालु-क्रूर, ईमानदार-बेईमान, सच्चरित्र-दुश्चरित्र आदि। अर्थात, किसी व्यक्ति के शीलगुण को द्विध्रुवीय विमा में ही पहचानने की कोशिश की जाती है।

1.6 व्यक्तित्व के उपागम-

व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या जिन विभिन्न उपागमों या दृष्टिकोणों के परिप्रेक्ष्य में की गई है उसे ही व्यक्तित्व के उपागम की संज्ञा दी जाती है। ये उपागम व्यक्ति के सैद्धान्तिक उपागम हैं जिनके तहत विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया गया है। इनमें कुछ महत्वपूर्ण उपागम हैं। मनोविश्लेषणात्मक उपागम, जीवन-अवधि उपागम, प्रकार उपागम, शीलगुण उपागम, मानवतावादी उपागम, संज्ञानात्मक उपागम, अधिगम उपागम आदि।

1.6.1 प्रकार उपागम -

प्रकार उपागम व्यक्तित्व का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसर व्यक्ति को खास-खास प्रकार में बांटा जाता है और उसके आधार पर उसके शीलगुणों का वर्णन किया जाता है। मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोपलर (1986) के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार से तात्पर्य व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग से होता है जिनके गुण एक-दूसरे से मिलते जुलते हैं। जैसे- अन्तर्मुखी एक प्रकार है और जिन व्यक्तियों को इसमें रखा जाता है उनमें कुछ सामान्य गुण जैसे- संकोचशीलता, सामाजिक कार्यों में अरूचि, लोगों से कम बोलना या मिलना-जुलना आदि पाया जाता है।

यदि व्यक्तित्व के अध्ययन के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले भी इस सिद्धान्त के द्वारा व्यक्तित्व की व्याख्या की जाती थी। सबसे पहला प्रकार सिद्धान्त

हिपोक्रेट्स ने 400 बीसी में प्रतिपादित किया था। इन्होंने शरीर- द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बतालाये है। इनके अनुसार हमारे शरीर में चार मुख्य द्रव पाये जाते हैं- पीला पित्त, काला पित्त, रक्त तथा कफ या श्लेष्मा । प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों द्रवों में से कोई एक द्रव अधिक प्रधान होता है और व्यक्ति का स्वभाव या चित्तप्रकृति इसी की प्रधानता से निर्धारित होता है। जिस व्यक्ति में पीले पित्त की प्रधानता होती है, उस व्यक्ति का चित्तप्रकृति या स्वभाव चिड़चिड़ा होता है और व्यक्ति प्रायः बेचैन दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति तुनुकमिजाजी भी होते हैं। इस तरह के प्रकार को हिपोक्रेट्स ने गुस्सैल कहा है। जब व्यक्ति में काले पित्त की प्रधानता होती है तो वह प्रायः उदास तथा मंदित नजर आता है। इस तरह के प्रकार को विषादी या निराशवादी कहा गया है। जिस व्यक्ति में अन्य द्रवों की अपेक्षा रक्त की प्रधानता होती है, वह प्रसन्न तथा खुशमिजाज होता है। इस तरह के व्यक्तित्व के प्रकार का उत्साही या आशावादी कहा गया है। जिस व्यक्ति में कफ या श्लेष्मा जैसे द्रव की प्रधानता होती है, वह शांत स्वभाव का होता है तथा उसमें निष्क्रियता अधिक पायी जाती है। इसमें भावशून्यता के गुण भी पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्तित्व के प्रकार को विरक्त कहा गया है।

यद्यपि हिपोक्रेट्स का यह प्रकार सिद्धान्त अपने समय का एक काफी महत्वपूर्ण सिद्धान्त था, फिर भी आज के मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसे पूर्णतः अस्वीकृत कर दिया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि व्यक्ति के शीलगुणों तथा उसके चित्तप्रकृति का संबंध शरीरिक द्रवों से होने का कोई सीधा एवं वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिलता है। इन मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि हिपोक्रेट्स द्वारा बताये गये शारीरिक द्रव सचमुच में व्यक्ति में होते हैं या नहीं, इसका भी कोई वस्तुनिष्ठ प्रमाण नहीं मिलता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रकार सिद्धान्त को मूलतः दो भागों में बांटकर उसके द्वारा व्यक्तित्व की व्याख्या की गयी है। पहले भाग में व्यक्ति के शारीरिक गुणों एवं उसके चित्तप्रकृति या स्वभाव के संबंधों में पर बल डाला गया है तथा दूसरे भाग में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर उसे भिन्न-भिन्न प्रकारों में बांटकर अध्ययन करने की कोशिश की गई है। आइए, प्रकार सिद्धान्त के इन दोनों ही भागों पर विस्तृत चर्चा करें।

अ. शारीरिक गुणों के आधार पर-

शारीरिक गुणों के आधार पर प्रतिपादित सिद्धान्त को शरीरगठन सिद्धान्त कहा गया है। शारीरिक गुणों के आधार पर दो वैज्ञानिकों अर्थात् क्रेशमर तथा शेल्डन द्वारा किया गया व्यक्तित्व का वर्गीकरण काफी महत्वपूर्ण है।

क्रेशमर जो एक जर्मन मनोचिकित्सक थे, शारीरिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बतलाये हैं। प्रत्येक प्रकार से संबंधित कुछ खास-खास शीलगुण भी हैं जिनसे संबंधित स्वभाव या चित्तप्रकृति का पता चलता है। क्रेशमर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन दो तरह के मानसिक रोग यानी मनोविदालता एवं उत्साह-विषाद से ग्रसित व्यक्तियों के प्रेक्षण के आधार पर किया था। उनके द्वारा वर्णित व्यक्तित्व के चार प्रकार निम्नांकित हैं-

(1) स्थूलकाय प्रकार- ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है। ऐसे लोगों की गर्दन छोटी एवं मोटी होती है। इस तरह के व्यक्ति के स्वभाव की कुछ खास-खास विशेषता होती हैं। जैसे- एसे व्यक्ति सामाजिक होते हैं, खाने-पीने तथा सोने में काफी मजा लेते हैं तथा वे खुशमिजाज होते हैं। इस तरह के

स्वभाव या चित्तप्रकृति को क्रेश्मर ने साइक्लोआड की संज्ञा दी है। ऐसे व्यक्तियों में मानसिक रोग उत्पन्न होने पर उत्साह-विषाद मनोविकृति के लक्षण विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

(2) कृशकाय प्रकार- इस तरह के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु वे दुबले-पतले शरीर के होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के शरीर की मांसपेशियां विकसित नहीं होती हैं और शरीर का वजन उम्र के अनुसार होने वाले समान्य वजन से कम होता है। ऐसे लोगों का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा होता है, सामाजिक उत्तरदायित्व से इनमें दूर रहने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। ऐसे व्यक्ति में दिवास्वप्न अधिक होता है तथा काल्पनिक दुनिया में भ्रमण करने की आदत इनमें अधिक तीव्र होती है। मानसिक रोग होने पर इनमें मनोविदालता होने की संभावना तीव्र होती है। इस तरह के चित्तप्रकृति या स्वभाव को क्रेश्मर ने सिजोईड की संज्ञा दी है।

(3) पुष्टकाय प्रकार- इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की मांसपेशियां काफी विकसित एवं गठी होती हैं तथा शरीरिक कद न तो अधिक लम्बा और न ही अधिक छोटा होता है। इनका पूरा शरीर सुडौल एवं हर तरह से संतुलित दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में न तो अधिक चंचलता और न ही अधिक मंदता होती है। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थिति के साथ आसानी से समायोजन कर लेते हैं। अतः इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा काफी मिलती है।

(4) विशालकाय प्रकार- इस श्रेणी में उन व्यक्तियों को रखा जाता है जिनमें ऊपर के तीन प्रकारों में से किसी भी प्रकार का स्पष्ट गुण नहीं मिलता है बल्कि इन तीनों प्रकारों का गुण मिला-जुला होता है। परन्तु बाद में क्रेश्मर के वर्गीकरण को कुछ वैज्ञानिकों ने जैसे- शेल्डन ने अपने अध्ययन के आधार पर बहुत वैज्ञानिक नहीं पाया और इसमें विधि से संबंधित कई दोष पाये। इन्होंने यह भी कहा कि क्रेश्मर का यह वर्गीकरण मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्तियों की व्याख्या करने में भले ही समर्थ हो परन्तु सामान्य व्यक्तियों की व्याख्या करने में असमर्थ है। फलस्वरूप उन्होंने एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाईप सिद्धान्त कहा जाता है।

शेल्डन ने 1940 में शरीर गठन के ही आधार पर एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाईप सिद्धान्त कहा गया। इन्होंने शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण करने के लिए 4,000 कॉलेज के छात्रों की नग्न तस्वीरों का विश्लेषण कर यह बतलाया है कि व्यक्तित्व को मूलतः तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है और प्रत्येक प्रकार के कुछ खास-खास शीलगुण होते हैं जिनसे उसके स्वभाव या चित्तप्रकृति का भी पता चलता है। प्रत्येक प्रकार तथा उससे संबंधित शीलगुणों के बीच का सहसंबंध 0.78 से अधिक था जो अपने आप में इस बात का सबूत है कि प्रत्येक शारीरिक प्रकार तथा उससे संबंधित गुण आपस में काफी मजबूत हैं। शेल्डन द्वारा बताये गये वे तीन प्रकार तथा उससे संबंधित चित्तप्रकृति के संबंधित गुण निम्नांकित हैं-

(1) एण्डोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे होते हैं और इनका शरीर गोलाकार दिखता है। स्पष्ट है कि शेल्डन का यह प्रकार क्रेश्मर के स्थूलकाय प्रकार से मिलता-जुलता है। शेल्डन ने यह बतलाया है कि इस तरह के शरीरिक गठन वाले व्यक्ति आरामपसंद, खुशमिजाज, सामाजिक तथा खाने-पीने की चीजों में अधिक अभिरूचि दिखलाने वाले होत हैं। ऐसे स्वभाव को शेल्डन ने भिसरोटोनिया कहा है।

(2) मेसोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की हड्डियां एवं मांसपेशियां काफी विकसित होती हैं तथा शरीरिक गठन काफी सुडौल होता है ऐसे व्यक्ति के स्वभाव को सौमैटोटोनिया कहा गया है जिसमें जोखिम तथा बहादुरी का कार्य करने की तीव्र प्रवृत्ति, दृढ़ कथन, आक्रामकता आदि का गुण पाया जाता है। ऐसे लोग अन्य लोगों को आदेश देने में अधिक आनन्द उठाते हैं। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि मेसोमार्फी बहुत कुछ क्रेशमर के पुष्टकाय प्रकार से मिलता-जुलता है।

(3) एक्टोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति का कद लम्बा होता है परन्तु ऐसे व्यक्ति दुबले-पतले होते हैं। इनके शरीर की मांसपेशियां अविकसित होती हैं और इनका पूरा गठन इकहरा होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के चित्तप्रकृति को सेरीब्रोटोनिया कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति को अकेला रहना तथा लोगों से कम मिलना-जुलना अधिक पसंद आता है। ऐसे लोग संकोची और लजालु भी होते हैं। इनमें नींद-संबंधी शिकायत भी पायी जाती है।

ब. मनोवैज्ञानिक गुणों के आधर पर:

कुछ मनोवैज्ञानिकों के व्यक्तित्व का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर किया गया है। इसमें युंग, आइजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम अधिक मशहूर है। युंग ने व्यक्तित्व के निम्नांकित दो प्रकार बताये है।

1. **बहिर्मुखी:** इस तरह के व्यक्ति की अभिरुचि सामाजिक कार्यों की ओर अधिक होता है। वह अन्य लोगों से मिलना-जुलना पसंद करते हैं तथा खुशमिजाज किस्म के होते हैं।ऐसे व्यक्ति आशावादी होते हैं तथा अपना संबंध यथार्थता से अधिक और आदर्शवाद से कम रखते हैं। ऐसे लोगों को खाने पीने की तरफ अधिक अभिरुचि होती है।
2. **अन्तर्मुखी:** ऐसे व्यक्ति में बहिर्मुखी के विपरीत गुण पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्ति कम लोगों से मिलना पसंद करते है और उनकी दोस्ती कुछ ही लोगों तक सीमित होती है।इनमें आत्मकेंन्द्रिता का गुण अधिक पाया जाता है। इन व्यक्तियों को अकेलापन पसंद होता है तथा ऐसे लोग रुढिवादी प्रकृति के होतेहैं तथा पुराने रीति रिवाजों एवं नियमों को आदर देने वाले होते है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा युंग के इन दो प्रकारों की आलोचना की है और इन लोगों ने कहा कि सभी लोग इन दोनों में से किसी एक श्रेणी में आए ही यह जरुरी नहीं है। अधिकतर लोगों में ये दोनों गुण पाये जाते है। फलस्वरुप एक रुप में वो बहिर्मुखी के रुप में व्यवहार करते है तथा दूसरे रुप में अन्तर्मुखी के रुप में व्यवहार करते है।

आइजेन्क (1947) ने भी मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बतलाये है। इन्होने युंग के अन्तर्मुखी बहिर्मुखी सिद्धान्त की सत्यता की जांच करने के लिए 10,000 सामान्य एवं तंत्रिका रोगियों पर अध्ययन किया और विशेष सांख्यिकीय विश्लेषण कर यह बतलाया कि व्यक्तित्व के निम्नांकित तीन प्रकार होते है जो द्विधुरवीय है।

1. अन्तर्मुखी - बहिर्मुखी: - आइजेन्क ने युंग के अन्तर्मुखता तथा बहिर्मुखता के सिद्धान्त को स्वीकार किया। परन्तु युंग के समान उन्होंने इसे व्यक्तित्व का दो अलग-अलग प्रकार नही माना। उनका कहना था कि चूँकि ये

दोनो प्रकार एक-दूसरे के विपरीत हैं, अतः इन्हें एक साथ मिलाकर रखा जा सकता है तथ एक ही मापनी बनाकर अध्ययन किया जा सकता है। चूंकि ऐसा नहीं होता है कि ये दोनो तरह के गुण एक ही व्यक्ति में एक साथ अधिक या कम हो अतः इसे आइजेन्क ने व्यक्ति की एक ही विमा माना हैजो स्पष्टतः द्विधुरवीय है। जैसे-किसी व्यक्ति में यदि सामाजिकता अधिक है तथा वह लोगों से मिलना-जुलना अधिक पसंद करता है वो यह कहा जाता है कि व्यक्ति इस विमा के बहिर्मुखता पक्ष में अधिक ऊँचा है। दूसरी तरफ यदि व्यक्ति अकेले रहना पसंद करता है, लजालु तथा संकोचशील भी है तो ऐसा कहा जाता है कि ऐसा व्यक्ति इस विमा के अन्तर्मुखता पक्ष में अधिक ऊँचा है।

2. स्नायुविकृति-स्थिरता - आइजेन्क के अनुसार व्यक्तित्व की यह दूसरी प्रमुख विमा है ।व्यक्तित्व के इस प्रकार के पहले छोर पर होने पर व्यक्ति में सांवेगिक नियंत्रण कम होता है तथा उनकी इच्छा-शक्ति कमजोर होती है इनके विचारों एवं क्रियाओं में मंदता पायी जाती है।इनमें अन्य व्यक्तियों के सुझाव को चुपचाप स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति अधिक होती हैं तथा सामाजिकता की कमी पायी जाती है।ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रायःअपनी इच्छाओं का दमन किया जाता है। इस प्रकार के दूसरे छोर पर स्थिरता होती है जिसकी और बढने पर उक्त व्यवहारों या लक्षणों की मात्रा घटती जाती है और व्यक्ति में स्थिरता की मात्रा बढंती जाती है।

3. मनोविकृतता-पराहं की क्रियाएँ- आइजेन्क (1962) ने व्यक्तित्व की इस विमा को बाद में किये गये शोध के आधार पर जोडा है। आइजेन्क ने इस प्रकार की व्याख्या करते हुए कहा कि व्यक्तित्व की विमा मानसिक रोग की एक विशेष श्रेणी, जिसे मनोविक्षिप्त कहा जाता है, के तुल्य नहीं हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि मनोविक्षिप्ति रोग से पीडित व्यक्ति में मनोविक्षिप्ति वाले व्यक्तित्व की विमा में क्षीण एकाग्रता ,क्षीण स्मृति तथा क्रूरता का गुण अधिक होता है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति में असंवेदनशीलता ,दूसरों के प्रति सौहार्द्रपूर्ण संबंध की कमी, किसी प्रकर के खतरे के प्रति असतर्कता, सृजनात्मकता की कमी आदि गुण पाये जाते है। इस विमा के दूसरे छोर पर पराहं की क्रियाएं होती हैं। जैसे-जैसे इस छोर की ओर हम बढते है,उक्त लक्षणों या व्यवहारों की मात्रा घटती जाती है तथा व्यक्ति में आदर्शत्व तथा नैतिकता की मात्रा बढती जाती है।

इस तरह हम देखते है कि आइजेन्क के तीनों विमा या प्रकार द्विध्रुवीय हैं। यह कदापि नहीं है कि अधिकतर व्यक्ति को दो छोरों में से किसी एक छोर पर रखा जा सकता है। सच्चाई यह है कि प्रत्येक प्रकार या विमा के बीच में ही अधिकतर व्यक्तियों को रखा जाता है।

गिलफोर्ड (1959) ने आइजेन्क के अन्तर्मुखता - बहिर्मुखता की विमा का काफी विस्तृत रुप से विश्लेषण किया और पाया कि इसमें व्यक्तित्व के कई तरह के शीलगुण पाये जाते हैं। इस तरह से उन्होंने अपने अध्ययन के आधर पर आइजेन्क (1947) के विचारों की पुष्टि की है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के प्रकार सिद्धान्त में व्यक्तित्व के समान शीलगुण को एक साथ मिलाकर एक विशेष प्रकार का निर्माण किया जाता है और उसी विशेष प्रकार के अनुसासर व्यक्तित्व की व्याख्या की जाती है। इस सिद्धान्त की सबसे बडी़ विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तित्व को एक संगठित एवं समग्र रुप से

अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इस गुण के बावजूद भी इस सिद्धान्त की आलोचना की गयी है जो निम्नांकित है-

(1) प्रकार सिद्धान्त में इस बात की पूर्वकल्पना की गयी है कि सभी व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार या श्रेणी में निश्चित रुप से आते हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि एक ही व्यक्ति में व्यक्तित्व के कई प्रकारों का गुण मिलता है जिसके कारण उन्हें किसी एक प्रकार में रखना संभव नहीं है। उदाहरणस्वरूप अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर्मुखता एवं बहिर्मुखता दोनों शीलगुण पाये जाते हैं। अतः उन्हें दोनों प्रकारों में से किसी एक प्रकार में रखकर अध्ययन करना सर्वथा भूल होगी।

(2) प्रकार सिद्धान्त के अनुसार जब किसी व्यक्ति को एक विशेष प्रकार में रखा जाता हैतो यह पूर्व कल्पना भी साथ-साथ कर ली जाती है कि उसमें उस प्रकार से संबन्धित सभी गुण होगें। परन्तु सच्चाई इस तरह की नहीं होती है। जैसे यदि किसी व्यक्ति को अन्तर्मुखी की श्रेणी में रखा जाता हैतो यह पूर्व कल्पना की जाती है कि उसमें अन्य गुणों के अलावा, सांवेगिक संवेदनशीलता भी होगी तथा ऐसा व्यक्ति एकांत प्रिय होगा। परन्तु ये दोनों गुण एक अन्तर्मुखी व्यक्ति में भी हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं। एक सांवेगिक रुप से संवेदनशील व्यक्ति अकेले भी रहना पसंद कर सकता है तथा अन्य लोगों के समूह में भी रहना पसंद कर सकता है। अतः प्रकार सिद्धान्त की यह पूर्वकल्पना भी बहुत सही नहीं है।

(3) प्रकार सिद्धान्त द्वारा व्यक्तित्व के संरचना की व्याख्या तो होती है परन्तु व्यक्तित्व विकास की व्याख्या नहीं होती है।इस सिद्धान्त में उन कारको का उल्लेख नहीं है जिससे व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है तथा इस सिद्धान्त से व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं का भी पता नहीं चलता है।

(4) कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकार सिद्धान्त में विशेषकर शारीरिक गठनों के आधर पर किए गए वर्गीकरण मेंसामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक के महत्व को बिल्कुल ही गौण रखा जाता है। शेल्डन का यह दावा है कि व्यक्ति के शारीरिक संगठन तथा उसके शीलगुणों में जो निश्चित संबंध होता है, वह व्यापक होता है तथा सभी परिस्थितियों मेंसमान होता है,उचित नही है। विटेकर (1970) के अनुसार इस तरह का संबंध सचमुच में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा अधिक प्रभावित होता है।

1.6.2 शीलगुण उपागम

शीलगुण सिद्धान्त प्रकार सिद्धान्त से भिन्न एवं विरोधी स्वरुप का है। शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुणों से ठीक वैसी ही बनी होती है जैसे एक मकान की संरचना छोटी-छोटी ईटों से बनी होती है। शीलगुण का सामान्य अर्थ होता है व्यक्ति के व्यवहारों का वर्णन। जैसे-सतर्क, सक्रिय, अवसादित आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके सहारे मानव व्यवहार का वर्णन होता है। प्रश्न उठता है कि क्या सभी शब्द जिनसे मानव व्यवहार का वर्णन होता है, शीलगुण हैं? कदापि नहीं। शीलगुण कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें संगति का गुण हो। उदाहरणस्वरुप, यदि कोई व्यक्ति हर तरह की परिस्थिति में ईमानदारी का गुण दिखलाता है तो हम कह सकते हैं कि उसके व्यवहार में संगति है तथा उसमें ईमानदारी का शीलगुण है।

किसी व्यवहार को शीलगुण कहलाने के लिए संगति के अलावा उसमें स्थिरता का भी गुण होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शीलगुण कहलाने के लिए कम-से-कम थोड़े समय के लिए स्थायित्व का गुण भी होना चाहिए। अगर व्यक्ति एक महीने तक हर परिस्थिति में ईमानदारी दिखलाता है परन्तु बाद में नही तो इसे शीलगुण नहीं कहा जाएगा। अतः शीलगुण एक ऐसी विशेषता होती है जिसके कारण व्यक्ति संगत ढंग से तथा साक्षेप रूप से स्थायी तौर पर एक-दूसरे से भिन्न होता है।

एटकिंसन, एटकिंसन तथा हिलगार्ड (1983) ने भी शीलगुण को इसी तरह परिभाषित किया है। इनके अनुसार, ''शीलगुण से तात्पर्य एक ऐसी विशेषता से होता है जो एक व्यक्ति से दूसरें व्यक्ति में सापेक्ष रुप से स्थायी एवं संगत ढंग से भिन्न-भिन्न होता है।''

शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तित्व के किसी 'प्रकार' द्वारा नियंत्रित नहीं होता है बल्कि भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुणों द्वारा नियंत्रित होता है जो प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद रहता है। इस तरह शीलगुण उपागम व्यक्तित्व के मौलिक इकाई को यानी शीलगुण को अलग करके उसके आधर पर व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करता है।

इस तरह से शीलगुण उपागम में व्यक्तित्व के उन महत्तवपूर्ण विमाओं की पहचान करने की कोशिश की जाती है जिनके आधार पर व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न समझे जाते हैं। इस उपागम की मान्यता यह है कि यदि एक बार यह जान लिया जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किस तरह से भिन्न है, फिर यह आसानी से मापा जा सकता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कितना भिन्न है। तब अध्ययनकर्ता उन अंतरों को विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तियों के व्यवहार के अन्तरों के साथ संबद्ध कर उसकी व्याख्या करता है। शीलगुण सिद्धान्त में मूल रुप से जिन दो मनोवैज्ञानिकों के विचारों का उल्लेख किया जाता है वे हैं - आलपोर्ट एवं कैटेल। आलपोर्ट का नाम शीलगुण सिद्धान्त के साथ गहरे रुप से जुडा है। यही कारण है कि आलपोर्ट द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त को आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त कहा जाता है। शीलगुण को दो भागों में बाटा गया है।

(1) **सामान्य शीलगुणः** सामान्य शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जो किसी संस्कृति के अधिकतर लोगों में पाया जाता है। फलतः सामान्य शीलगुण ऐसा शीलगुण है जिसके आधार पर किसी समाज या संस्कृति के अधिकतर लोगों की तुलना आपस में की जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रभुत्व की माप पर सोहन का शीलगुण यदि 70 शततमक पर है, तो इसका मतलब हुआ कि 70 प्रतिशत व्यक्तियों का गुण सोहन की तुलना में कम है। स्पष्टतः यहां प्रभुत्व के शीलगुणों के आधार पर सोहन की तुलना अन्य व्यक्तियों से की जा रही है। अतः शीलगुण प्रभुत्व का उदाहरण हुआ।

(2) **व्यक्तिगत शीलगुणः** आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत शीलगुण एक दूसरा महत्वपूर्ण शीलगुण है जिसे उन्होंने व्यक्तिगत प्रवृत्ति कहना उचित ठहराया है। उनका कहना है कि व्यक्तिगत प्रवृत्ति अधिक विवरणात्मक है तथा इससे संभ्रान्ति भी कम होती है।

व्यक्तिगत प्रवृत्ति से तात्पर्य ऐसे शीलगुणों से होता है जो किसी समाज या संस्कृति के व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होता है, अर्थात उस समाज या संस्कृति के सभी व्यक्तियों में वह नहीं पाया जाता है। यहही कारण है कि इस तरह के शीलगुण के आधार पर व्यक्तियों के बीच तुलना नहीं की जा सकती है परन्तु एक ही व्यक्ति का तुलनात्मक अध्ययन भिन्न-भिन्न पहलुओं पर हो सकता है। जैसे यदि हम यह कह सकते है कि श्याम सक्रिय कम परन्तु निष्क्रिय ज्यादा है, तो यह व्यक्तिगत प्रवृत्ति का उदाहरण होगा। आलपोर्ट ने व्यक्तिगत प्रवृत्ति तथा सामान्य शीलगुण में निम्नांकित दो अंतर बताये है

(1) सामान्य शीलगुण समाज के अधिकतर व्यक्तियों में पाया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति समाज के कुछ व्यक्ति विशेष में पायी जाती है।

(2) सामान्य शीलगुण के आधार पर कई व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति के आधार पर एक ही व्यक्ति के भिन्न भिन्न शीलगुणों का आपस में तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुण की अपेक्षा व्यक्तिगत प्रवृत्ति के अध्ययन पर बल डाला है। उन्होंने यह भी बताया है कि व्यक्तिगत प्रवृत्ति की संख्या करीब करीब 18,000 है। उनके अनुसार कुछ व्यक्तिगत प्रवृत्तियां ऐसी होती हैं जो व्यक्तित्व की परिधि पर होती हैं। उन्हें स्पष्टतः समझा जा सकता है। परन्तु कुछ प्रवृत्ति व्यक्तित्व के भीतर अपनी केन्द्र में होती है जिन्हें सीधे और स्पष्टतः तो समझना थोडा कठिन है। आलपोर्ट ने व्यक्तिगत प्रवृत्ति को तीन भागों में बाटा है -

(1) कार्डिनल प्रवृत्ति - इस तरह की व्यक्तिगत प्रवृत्ति व्यक्तित्व का इतना प्रमुख एवं प्रबल गुण होता है कि उसे छुपाया नहीं जा सकता है और व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस तरह से कार्डिनल प्रवृत्ति के रुप में आसानी से की जा सकती है। सभी व्यक्तियों में कार्डिनल प्रवृत्ति नही होती है। परन्तु जिसमें होती है, वह व्यक्ति पूर्णरुपेण उस प्रवृत्ति या गुण से चर्चित होता है। जैसे, महात्मा गांधी के व्यक्तित्व में कार्डिनलगुण शांति एवं अहिंसा थे और इन गुणों के कारण वो पूरे संसार में चर्चित है। उसी तरह से हिटलर तथा नेपोलियन की कार्डिनल प्रवृत्ति क्या थी?इसे पाठक स्वंय ही सोच सकते हैं।

(2) केन्द्रीय प्रवृत्ति - यह सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 गुण या प्रवित्तियॉ ऐसी पायी जाती हैं जिसके भीतर उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। यदि कहा जाए कि व्यक्तित्व इन 5 से 10 गुणों के भीतर जिंदा रहता है तो कोई अतिशोक्ति नहीं होगी। इस तरह के गुणों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहा जाता है। सामाजिकता, आत्मविश्वास, उदासी आदि कुछ केन्द्रीय प्रवृत्ति के उदाहरण है।

(3) गौण प्रवृत्ति- गौण प्रवृत्ति वैसे गुणों को कहा जाता है जो व्यक्तित्व के लिए कम महत्वपूर्ण, कम संगत, कम अर्थपूर्ण तथा कम स्पष्ट होते हैं, जैसे-खाने की आदत, हेयर स्टाइल, पहनावा आदि कुछ ऐसी प्रवृत्तियां है जिनके आधार पर व्यक्तित्व को समझने में कोई खास मदद नहीं मिलती और न ही इनके आधार पर व्यक्तित्व के बारे में कुछ खास अर्थ ही लगाया जा सकता हैं। आलपोर्ट ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि एक व्यक्ति के लिए एक गुण केन्द्रीय प्रवृत्ति हो सकता है परन्तु दूसरे के लिए वही गुण गौण प्रवृत्ति हो सकता है। उदाहरणार्थ वहिर्मुखी के लिए

सामाजिकता एक केन्द्रीय प्रवृत्ति है परन्तु अन्तर्मुखी के लिए सामाजिकता एक गौण प्रवृत्ति है। इस तरह आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के शीलगुणों को कई भागों में बाटकर एक यथोचित व्याख्या प्रस्तुत की है।

शीलगुण सिद्धान्तों में आलपोर्ट के बाद कैटेल का नाम अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इन्होंने शीलगुण सिद्धान्त में अपना विशेष योगदान करके इस सिद्धान्त को व्यक्तित्व की व्याख्या करने में काफी प्रबल बनाया है। कैटल ने शीलगुणों की खोज आलपोर्ट द्वारा बताये 18,000 शीलगुणों में से 4,500 शीलगुणों को चुनकर किया। इनमें से समानार्थ शब्दों को एक साथ मिलाकर इसकी संख्या उन्होने 200 कर दी और बाद में विशेष सांख्यिकीय विधि यानी, कारक विश्लेषण के सहारे अंतर सहसंबंध द्वारा उसकी संख्या 35 कर दी।

कैटल ने शीलगुणों को कई भागों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया। सबसे मशहूर वर्गीकरण वह था जिसमें उन्होंने व्यक्तित्व के शीलगुणों को सतही शीलगुण तथा मूल या स्त्रोत शीलगुण के रुप में विभाजन किया है। वर्णन इस प्रकार है-

I. **सतही शीलगुण-** इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व के उपरी सतह या परिधि पर होता हैं यानी, इस तरह के शीलगुण ऐसे होते हैं जो व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में आसानी से अभिव्यक्त हो जाते है। इसकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होती है कि संबधित शीलगुण के बारे में व्यक्ति में कोई दो मत हो ही नही सकते है। जैसे प्रसन्नता, परोपकारिता, सत्यनिष्ठा कुछ ऐसे गुण हैं जो सतही शीलगुण के उदाहरण हैं। इनकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तः क्रिया में स्पष्ट रुप से होती है।

II. **स्त्रोत या मूल शीलगुण-** कैटल के अनुसार शीलगुण व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण संरचना है। इसकी संख्या सतही शीलगुण की अपेक्षा कम होती है। मूल शीलगुण सतही शीलगुण के समान, व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में स्पष्ट रुप से व्यक्त नहीं हो पाती है। अतः इसका प्रेक्षण सीधे नहीं किया जा सकता है। कैटल के अनुसार शीलगुण व्यक्तित्व की भीतरी संरचना होती है जिसके बारे में ज्ञान तब होता है जब उससे संबन्धित सतही शीलगुण को एक साथ मिलाने की कोशिश करते हैं। जैसे -सामुदायिकता, निःस्वार्थता, तथा हास्य-तीन ऐसे सतही शीलगुण होते है जिन्हें एक साथ मिलाने से एक नया मूल शीलगुण बनता हैं जिसे मित्रता की संज्ञा दी जा ती हैं। यह स्पष्ट है कि मूल शीलगुण की अभिव्यक्ति सतही शील गुण के रुप में की जाती है।इसलिए कैटल ने सतही शीलगुण को शीलगुण सूचक भी कहा है। कैटल के अनुसार 23 मूल शीलगुण ऐसे हैं जो सामान्य व्यक्तियों में पाये जाते हैतथा 12 ऐसे मूल शीलगुण है जो असामान्य व्यक्तियों में पाये जाते हैं। 23 में से 16 को कैटल ने अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया हैऔर इसे मापने के लिए एक विशेष प्रश्नावली भी तैयार की जिस सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली या 16 पी.एफ. की संज्ञा दी।

सामान्य रुप से मूल शीलगुण को कैटल ने दो भागों में बांटा है। पर्यायवरण प्रभावित शीलगुण तथा स्वाभाविक शीलगुण। कुछ मूल शीलगुण ऐसे होते है जिनके विकास में आनुवांशिता की अपेक्षा वातावरण संबंधी कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन्हें पर्यायवरण प्रभावित शीलगुण कहते हैं। कुछ ऐसे शीलगुण होते हैं जिनके

विकास में वातावरण की अपेक्षा आनुवंशिकता का अधिक प्रभाव पड़ता है, इस तरह के शीलगुण को स्वाभाविक शीलगुण कहा जाता है।

कैटल ने शीलगुणों का विभाजन उस व्यवहार पर भी किया है जिससे वे संबंधित होते हैं। इस कसौटी के आधार पर शीलगुण के तीन प्रकार होते है। गत्यात्मक शीलगुण, क्षमता शीलगुण, तथा चित्तप्रकृति शीलगुण।

गत्यात्मक शीलगुण वैसे शीलगुण को कहा जाता है जिससे व्यक्ति का व्यवहार एक खास लक्ष्य की ओर अग्रसित होता है। मनोवृत्ति, मूलवृत्ति तथा मनोभाव गत्यात्मक शीलगुण के कुछ उदाहरण है। क्षमता शीलगुण से तात्पर्य उन शीलगुणों से होता है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुचाने में काफी प्रभावकारी सिद्ध होते हैं। चित्तप्रकृति शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुण से होता है जो किसी लक्ष्य पर पहुचने के प्रयास से उत्पन्न होता है तथा जिसका संबंध व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति, अनुक्रिया करने की शक्ति तथा दर आदि से संबंधित होता है। सांवेगिक स्थिरता, मस्त-मौलापन आदि चित्तप्रकृति शीलगुण के उदाहरण है।

कैटल ने बताया कि शीलगुणों का अध्ययन करने के लिए मूलतः तीन स्रोत हैं। जीवन अभिलेख ,आत्म रेटिंग तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षण। पहले स्रोत से प्राप्त आकड़ों को एल प्रदत्त, दूसरे स्रोत से प्राप्त आकडों को क्यू-प्रदत्त तथा तीसरे को ओट कहा जाता है।

ऊपर वर्णित आलपोर्ट तथा कैटल के शीलगुण सम्बन्धी दृष्टिकोणों पर विचार करने पर यह सवाल उठता है कि मानव व्यक्तित्व के शीलगुण या विमा कौन-कौन से है? वास्तव में शीलगुण उपागम का उद्देश्य इसी प्रश्न का उत्तर ढूढना है, परन्तु उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि यह उपागम इस प्रश्न का उत्तर संतोषजनक ढग से देनें में सफल नहीं हो पाया है। गत दो दशको में किए गये महत्वपूर्ण शोधों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों के बीच कुछ खास विमाओं के बारे में सहमति होते नजर आती है। कोस्टा एवं मैकके, नौलर, ला एवं कोमरे आदि शोधकर्ताओं के बीच लगभग इस बात पर सहमति है कि व्यक्तित्व के निम्नांकित पांच महत्वपूर्ण तथा मजबूत विमाएं हैं जो सभी द्विधुव्रीय हैं।

बहिर्मुखता-व्यक्तित्व का यह एक ऐसा विमा है जिसमें एक परिस्थिति में व्यक्ति मजाकिया, सामाजिक, स्नेहपूर्ण, वातूनी आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थितियों में वह संयमी, गंभीर, रूखापन, शांत, सचेत रहने आदि का गुण भी दिखाता है।

सहमति जन्यता- इस विमा के भी दो छोर या ध्रुव बतलाये गये है। इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी, दूसरों पर विश्वास करने वाला, उदार सीधा, सच्चा, उत्तम प्रकृति आदि से संबद्ध व्यवहार दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु, चिड़चिड़ा, जिद्दी, बेरहम आदि बनकर भी व्यवहार करता पाया जाता है।

कर्तव्यनिष्ठा- इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित, उत्तरदायी, सावधान एवं काफी सोच विचार कर व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वही व्यक्ति बिना सोचे-समझे असावधानीपूर्वक, कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखता हैं

स्नायुविकृति-इस विमा में व्यक्ति एक ओर कभी-कभी तो सांवेगिक रूप काफी शान्त, संतुलित, रोगभ्रमी विचारों से अपने को मुक्त पाता है तो दूसरी ओर वह कभी-कभी अपने आप को सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से घिरा हुआ पाता है।

अनुभूतियों का खुलापन या संस्कृति-इस विमा में कभी-कभी व्यक्ति एक तरफ काफी संवेदनाशील, काल्पनिक, बौद्धिक, भद्र आदि व्यवहार से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी ओर काफी असंवेदनशील, रुखा, संकीर्ण, असभ्य, एवं अशिष्ट, व्यवहारों से संबद्ध शीलगुण भी दिखाता है।

उपयुक्त पांचों शीलगुणों को नॉर्मन (1963) ने ''दी विग फाइव'' कहा है जो आलपोर्ट, गोल्डवर्ग तथा कैटेल द्वारा किये गये शोधों पर आधृत है। आधुनिक मनावैज्ञानिकों द्वारा इन पांचों शीलगुणों को सबसे अधिक मान्यता दी जा रही है, क्योंकि लोगों का मत है कि चाहे व्यक्ति किसी समाज या संस्कृति का हो, उसके बारे में इन पांचों शीलगुणों के बारे में जानकर उसके व्यक्तित्व के बारे में सही -सही एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

अभ्यास प्रश्न

1. शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त संबद्ध है-

(अ) प्रकार उपागम से (ब) शीलगुण उपागम से

(स) मानवतावादी उपागम से (द) इन सभी से

2. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक का व्यक्तित्व सिद्धान्त शीलगुण उपागम से संबद्ध है-

(अ) क्रेश्मर (ब) ऑलपोर्ट

(स) रोजर्स (द) इनमें से कोई नहीं

3. शीलगुणों को सतही एवं स्त्रोत के रूप में किसने विभाजित किया-

(अ) ऑलपोर्ट ने (ब) युंग ने

(स) कैटेल ने (द) फ्रायड ने

1.7 सार संक्षेप

1. जहां कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य पक्ष, जैसे रूप-रंग, वेश-भूषा, बनावट आदि के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है, वहीं दूसरी ओर कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष को महत्व देते हुए मनुष्य के स्वभाविक स्थायी गुणों, जैसे- बुद्धि, धातु-स्वभाव, कौशल, नैतिकता आदि के आधार पर व्यक्तित्व की परिभाषा दी है।
2. व्यक्तित्व की परिभाषाओं को कुल तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है- सतही परिभाषाएं, तात्विक परिभाषाएं तथा समाकलनात्मक परिभाषाएं।
3. हर व्यक्ति की अपनी खास विशेषता होती है जिसे व्यक्तित्व का शीलगुण कहते हैं। इन्हीं विशेष शीलगुणों के कारण किसी खास परिस्थिति में व्यक्ति सामान्यीकृत एवं निर्भरतापूर्वक व्यवहार करने के ढंग को प्रदर्शित करता है।

4. व्यक्तित्व का प्रकार उपागम जहां विभिन्न व्यक्तित्व सिद्धान्तों की व्याख्या व्यक्ति को खास-खास प्रकार में बांटकर उस प्रकार विशेष के शीलगुणों के परिपेक्ष्य में करता है वहीं शीलगुण उपागम विभिन्न व्यक्तित्व सिद्धान्तों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलनगुणों के आलोक में करता है।

1.8 पारिभाषिक शब्दावलीः-

व्यक्तित्वः व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करते हैं।

शीलगुणः व्यक्तित्व की एक ऐसी विशेषता जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में सापेक्ष रूप से स्थायी एवं संगत ढंग से भिन्न-भिन्न होता है।

गत्यात्मक शीलगुणः वैसा शीलगुण जिससे व्यक्ति का व्यवहार एक खास लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

क्षमता शीलगुणः वैसा शीलगुण जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुंचाने में काफी प्रभावकारी सिद्ध होता है।

चित्तप्रकृति शीलगुणः वैसा शीलगुण जो किसी लक्ष्य तक पहुंचने के प्रयास से उत्पन्न होता है तथा जिसका संबंध व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति, अनुक्रिया करने की शक्ति तथा दर आदि से संबंधित होता है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अ, 2. ब, 3. स

1.10 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना।
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality

1.11 स्व- मूल्यांकन हेतु प्रश्नः-

1. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में उसके स्वरूप को स्पष्ट करें।
2. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
3. व्यक्तित्व के प्रकार उपागम की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
4. व्यक्तित्व के शीलगुण उपागम पर प्रकाश डालें।

इकाई 2 व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व विकासकी अवधारणा; व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक(Concept of Personality and Personality Development; Factors affecting Personality)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 व्यक्तित्व का संप्रत्यय
2.4 व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय
2.4.1 व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विधियां
2.4.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया
2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक/प्रभावक
2.5.1 जैविक कारक/निर्धारक
2.5.2 सामाजिक/वातावरणीय कारक/निर्धारक
2.6 सार संक्षेप
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.1 प्रस्तावना-

व्यक्तित्व जहाँ व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों, यानी बाहरी रूप-रंग, डील-डौल, आकर्षण तथा आन्तरिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है, वहीं व्यक्तित्व विकास व्यक्ति के व्यक्तित्व पैटर्न का विकास है, यानी उन सभी मनोदैहिक तंत्रों का विकास है जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है तथा जो आपस में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं।

व्यक्तित्व विकास के क्रम में मूलतः व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण में विकासात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं एवं इन्हें व्यक्ति के जैविक व सामाजिक सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं।

पिछली इकाई में आपने व्यक्तित्व की परिभाषा, उसके स्वरूप, उसकी विशेषताएं एवं व्यक्तित्व अध्ययन के विभिन्न उपागमों की जानकारी प्राप्त की। आइए, अब इस इकाई के अन्तर्गत यह जानने का प्रयास करें कि वास्तव में व्यक्तित्व का विकास कैसे होता है, इसकी प्रक्रिया क्या है तथा इसके अध्ययन की कौन-कौन सी विधियां हैं?

साथ ही, हम यह देखने का भी प्रयास करेंगें कि व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में कौन-कौन से जैविक व सामाजिक-सांस्कृतिक या वातावरणीय कारकों का क्या महत्व हैं?

2.2 उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व विकास के संप्रत्यय को स्पष्ट कर सकें,
2. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन विधियों को उपयोग में ला सकें,
3. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को रेखांकित कर सकें तथा
4. व्यक्तित्व के विकास में जैविक एवं वातावरणीय कारकों के सापेक्षिक महत्व को प्रतिपादित कर सकें।

2.3 व्यक्तित्व का संप्रत्यय-

व्यक्तित्व का संप्रत्यय यूनानी नाटकों में नायकों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले नकाब से सम्बद्ध है जिसे ''परसोना'' कहा जाता था। परसोना लैटिन शब्द है। इसी का अंग्रेजी अनुवाद है-''पर्सनालिटी'' तथा इसी को हिन्दी में ''व्यक्तित्व'' की संज्ञा दी जाती है। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व अपने शाब्दिक अर्थ में बाहरी वेशभूषा तथा दिखावा है। जिस व्यक्ति का बाहरी दिखावा जितना ही भड़कीला होगा, उसका व्यक्तित्व उतना ही अच्छा व प्रभावशाली समझा जायेगा।

व्यक्तित्व का उसके शाब्दिक अर्थ से जुड़ा यह सम्प्रत्यय कालांतर में खारिज कर दिया गया और आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस काफी वैज्ञानिक रूप में परिभाषित करते हुए बताया कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्त प्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है (आइजेंक, 1952)''।

व्यक्तित्व की इस वैज्ञानिक परिभाषा से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतरी गुणों तथा बाहरी गुणों का समन्वय है। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार ऑलपोर्ट (1937) ने प्रस्तुत किया था। उनका कहना था कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक तंत्रों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ऑलपोर्ट और आइजेंक की राय लगभग एक समान ही है। दोनों ने ही व्यक्तित्व के निर्धारण में उसके आन्तरिक पक्षों एवं बाहृय पक्षों के महत्व पर प्रकाश डाला है, परन्तु भीतरी गुणों पर तुलनात्मक रूप से अधिक बल दिया है। व्यवहार पक्ष पर उतना बल नहीं दिया है। मिशेल (1981) ने व्यक्तित्व को व्यवहारवादी दृष्टि कोण से परिभाषित करते हुए लिखा है- ''प्रायः' व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस

विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित हैं) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।''

आधुनिक व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व में निम्नलिखित चार प्रकार की संगतता का अध्ययन किया-

1. प्रकार-'अ' संगतता
2. प्रकार- 'ब' संगतता
3. प्रकार- 'स' संगतता तथा
4. प्रकार-'द' संगतता

इन चारों को 2×2 मॉडल में निम्नवत् दर्शाया गया है-

परिस्थिति

		समान	भिन्न
	समान	प्रकार-'अ'	प्रकार-'ब
व्यवहार			
	भिन्न	प्रकार-'स'	प्रकार-'द'

1. प्रकार-'अ' संगतताः-विभिन्न अन्तराल पर समान परिस्थितियों में दिखाई गई व्यवहार की संगतता।
2. प्रकार- 'ब' संगतताः- दो विभिन्न परिस्थितियों में दिखाई गई व्यवहार की संगतता।
3. प्रकार-'स' संगतताः- एक ही परिस्थिति में विभिन्न तरह के व्यवहारों में पाई जाने वाली संगतता।
4. प्रकार 'द' संगतताः- अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग ढंग से किए गये व्यवहार की संगतता।

व्यक्ति के व्यवहार की यही संगतता उसके व्यक्तित्व के स्थायी गुणों तथा संगठनात्मकता का सूचक होती है।

2.4 व्यक्तित्व विकास का सम्प्रत्यय-

व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय एक ऐसा संप्रत्यय है जो व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिकों को सर्वाधिक उलझा कर रखा है। इस संम्प्रत्यय को समझने के लिए विकास का अर्थ समझना आवश्यक है। विकास से तात्पर्य समय बीतने के साथ परिपक्वता तथा पर्यावरण के साथ होने वाली अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति की अभिवृद्धि तथा क्षमता में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता तथा अनुभूति के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के उत्तरोत्तर क्रम को विकास कहा जाता है। वॉन डेन डीले (1976) के अनुसार विकास से आशय गुणात्मक परिवर्तन से होता है। इसका मतलब यह हुआ कि विकास का अर्थ केवल यही नहीं होता है कि व्यक्ति की लम्बाई दो इंच बढ़ गयी है या उसका वजन पाँच किलोग्राम पहले से अधिक हो गया है या उसकी क्षमता पहले से अधिक हो गयी है। बल्कि विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया होती है जिसमें बहुत सारी संरचनाएँ तथा क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

जहाँ तक व्यक्तित्व विकास का प्रश्न है, इससे तात्पर्य व्यक्तित्व पैटर्न के विकास से होता है। व्यक्तित्व पैटर्न में सभी मनोदैहिक तंत्र जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है, आपस में अंतर्सम्बंधित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व होते हैं-आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण। व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य इन दोनों तत्वों में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन से होता है। आइए, इन दोनों तत्वों पर स्वतंत्र रूप से विचार करें।

1. आत्म-संप्रत्यय-

आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य उस तथ्य से होता है जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा वह क्या है। सचमुच में यह एक तरह का 'दर्पण बिम्ब' होता है जो व्यक्ति द्वारा की गईए अपनी भूमिकाओं, दूसरों के साथ संबंधों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं द्वारा मूलतः निर्धारित होता है।

प्रत्येक आत्म-संप्रत्यय के दो पहलू होते हैं- दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक। दैहिक पहलू में वे सारे संप्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के अपने रूप-रंग, यौन उपयुक्तता, किये जाने वाले व्यवहार के संदर्भ में शरीर का महत्व तथा दूसरे लोगों से उनके शरीर को मिलने वाली प्रतिष्ठा आदि के सम्बन्ध में होते हैं। मनोवैज्ञानिक पहलू में वे सारे संप्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के अपनी क्षमता तथा अक्षमता, अपनी योग्यता तथा अन्य लोगों के साथ संबंध आदि के बारे में होते हैं। प्रारंभ में ये दोनों पहलुएँ अलग-अलग होते हैं परंतु जैसे व्यक्तित्व का विकास होते जाता है, वे आपस में मिलकर एक हो जाते हैं।

चूँकि आत्म-संप्रत्यय व्यक्तित्व पैटर्न का सारभाग होता है अतः इससे शीलगुणों का विकास सीधे प्रभावित होता है। जैसे- यदि व्यक्ति का आत्म-संप्रत्यय धनात्मक होता है, तो व्यक्ति में आत्म-विश्वास, आत्म-सम्मान तथा अपने आप को यथार्थपूर्ण संदर्भ में मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित होती है। इससे उनमें उत्तम सामाजिक समायोजन का विकास होता है। दूसरे तरफ यदि आत्म-संप्रत्यय नकारात्मक होता है, तो व्यक्ति में हीनता तथा अपर्याप्तता का भाव विकसित हो जाता है। वह हमेशा अनिश्चित होकर व्यवहार करता है तथा उनमें आत्म-विश्वास की कमी पायी जाती है। इससे उसका वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही समायोजन पर बुरा असर पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि आत्म-संप्रत्यय के विकास में आनुवंशिकता तथा पर्यावरण दोनों का संयुक्त योगदान होता है तथा किशोरावस्था आते-आते आत्म-संप्रत्यय का विकास पूर्ण हो जाता है, हालांकि बाद में नये वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुभूतियों के होने से उसमें परिवर्तन भी आता है।

2. शीलगुण-

शीलगुण से तात्पर्य व्यवहार या समायोजी पैटर्न के विशिष्ट गुणों से होता है। बुद्धि, प्रभुत्व, सहनशीलता, आदि शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं। व्यक्तित्व का शीलगुण आत्म-संप्रत्यय से संघटित होता है तथा आत्म-संप्रत्यय से प्रभावित भी होता है। कुछ शीलगुण तो अलग-अलग होते हैं परंतु कुछ ऐसे होते हैं जो व्यवहार के संबंधित पैटर्न में संयोजित होते हैं जिन्हें संलक्षण कहा जाता है। शीलगुण की दो विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं- वैयक्तिकता तथा

संगतता। वैयक्तिकता से तात्पर्य यह होता है कि किसी शीलगुण की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में एक समान न होकर किसी में कम तथा किसी में अधिक होती है। संगतता से तात्पर्य यह होता है कि शीलगुण के कारण ही व्यक्ति समान परिस्थिति में समान ढंग से व्यवहार करता है।

व्यक्तियों में शीलगुण का विकास अंशतः अधिगम तथा अंशतः आनुवंशिक कारकों पर निर्भर करता है। शीलगुणों में परिवर्तन घर तथा स्कूल में दिये गए बाल्यावस्था के प्रशिक्षण द्वारा तथा उस मॉडल व्यक्ति द्वारा होता है जिसका व्यक्ति अपनी जिंदगी में अनुकरण करता है। जैसे- जिस बच्चा का बाल्यावस्था में सख्त सत्तावादी प्रशिक्षण प्राप्त होता है, प्रायः आगे चलकर उसमें एक अनम्य समायोजी पैटर्न विकसित हो जाता है। अन्य बातों के अलावा वयस्कावस्था में ऐसे लोग अतिनियंत्रित, अंतर्मुखी, रूढ़िवादी, परम्परागत, अवरोधी आदि व्यवहार दिखाने वाले हो जाते हैं। इन सबों से मिलकर जिस व्यक्तित्व संलक्षण का विकास होता है, उसे सत्तवादी व्यक्तित्व संलक्षण कहा जाता है।

स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास एक ऐसा संम्प्रत्यय है जिसमें न केवल आत्म संप्रत्यय बल्कि शीलगुणों का विकास भी सम्मिलित होता है तथा इसमें आनुवंशिकता एवं पर्यावरण दोनों का संयुक्त योगदान होता है।

2.4.1 व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विधियाँ-

जिस प्रकार व्यक्तित्व विकास का संम्प्रत्यय जटिल होता है, उसी प्रकार व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करना भी सरल काम नहीं है, फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने इसके अध्ययन हेतु निम्नलिखित महत्वपूर्ण विधियों को प्रकाश में लाया है-

(क) प्रयोगात्मक विधि

(ख) सहसंबंधात्मक विधि

(ग) केस-अध्ययन विधि

(घ) अनुदैर्ध्य विधि

(ड.) अनुप्रस्थकाट विधि

आइए, अब हम लोग इन विधियों पर चर्चा करें।

(क) प्रयोगात्मक विधि-

व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की यह विधि काफी लोकप्रिय है जिसमें प्रयोगात्मक प्राक्कल्पना की जाँच एक नियंत्रित परिस्थिति में की जाती है। इसमें कुछ चर ऐसे होते हैं जिनमें प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ करता है। इसे स्वतंत्र चर कहा जाता है तथा कुछ चर ऐसे होते है जिसपर उस जोड़-तोड़ का प्रभाव पड़ते देखा जाता है। ऐसे चर को आश्रित चर कहा जाता है। इस विधि में सामान्यतः प्रयोज्यों को दो या दो से अधिक समूहों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक समूह को स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तर से अनावृत किया जाता है। सामान्यतः यादृच्छिक आवंटन की प्रक्रिया अपनाकर विभिन्न समूहों को स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने के पहले तुल्य किया जाता है। इस यादृच्छिक आवंटन के बाद स्वतंत्र चर में किये गए जोड़-तोड के कारण आश्रित चर में अंतर होते देखा जाता है तो

प्रयोगकर्ता सामान्यतः इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऐसा अंतर स्वतंत्र चर में किये गये जोड़-तोड़ के कारण हुआ है तथा आश्रित चर में होने वाले परिवर्तन का कारण स्वतंत्र चर ही है।

(ख) सहसंबंधात्मक विधि-

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस विधि में दो व्यक्तित्व विकास चरों के बीच सहसंबंध ज्ञात करके उनके बारे में पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस विधि में चरों में कोई जोड़-तोड़ नहीं किया जाता है बल्कि व्यक्तियों का प्रेक्षण स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है। इस अध्ययन में मुख्य प्रश्न जिसका उत्तर शोधकर्ता जानना चाहता है, वह है- ''क्या चर '(क)' तथा '(ख)' साथ-साथ परिवर्तित होते हैं? क्या '(क)' चर में होने वाले परिवर्तन की दिशा '(ख)' चर में परिवर्तन की दिशा के अनुकूल है या प्रतिकूल है? इसके लिए दोनों चरों के बीच सहसंबंध गुणांक ज्ञात किया जाता है जिसकी अनेक विधियाँ हैं जिनमें 'पियर्सन विधि'' सबसे प्रमुख विधि है। सहसंबंध गुणांक पूर्ण धनात्मक (+1.00) से पूर्ण ऋणात्मक (-1.00) तक होता है। शून्य सहसंबंध इस बात का द्योतक होता है कि दोनों चरों के बीच कोई सहसंबंध नहीं है। धनात्मक सहसंबंध से दोनों चरों में समान परिवर्तन होने का संकेत मिलता है तथा ऋणात्मक सहसंबंध से दोनों चरों में विपरीत परिवर्तन का संकेत मिलता है।

सहसंबंधात्मक विधि से व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में अनेक अध्ययन किये गए हैं जिनमें शेल्डन द्वारा किया गया अध्ययन सबसे अधिक लोकप्रिय है। उस अध्ययन में उन्होंने शारीरिक प्रकार तथा चित्तप्रकृति के बीच सहसंबंध ज्ञात करके कुछ पूर्वकथन किया है जो आज भी व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों के लिए एक अनुपम धरोहर साबित हुआ है।

(ग) केस अध्ययन विधि-

इस विधि में व्यक्तित्व मनोविज्ञानी किसी व्यक्ति के व्यवहारों एवं उनके जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध रिकार्ड कुछ समय तक करते हैं, फिर उसका विश्लेषण करके कुछ निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अतः यह विधि एक तरह से अनुदैर्ध्य उपागम पर आघृत है। इस विधि का उपयोग व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में सबसे अधिक जीन पियाजे द्वारा किया गया। इन्होंने अपने तीनों बेटियों में होने वाले संज्ञानात्मक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन किया।

अभी हाल में केस अध्ययन विधि तथा प्रयोगात्मक विधि दोनों को संयोजित कर व्यक्तित्व पैटर्न के विकास के अध्ययन का प्रयास किया गया है। इस तरह के डिजाइन को मनोविज्ञान में एकल प्रयोज्य प्रयोगात्मक डिजाइन कहा जाता है जिसे ए बी ए बी क्रम से संकेतिक किया जाता है। डिजाइन के इस क्रमानुसार, एक खास अवधि तक प्रयोज्य के व्यवहार का मापन किया जाता है (क)', फिर प्रयोज को स्वतंत्र चर के जोड़-तोड़ से अनावृत किया जाता है '(ख)' फिर प्रयोगकर्ता पुनः पहली अवस्था पर वापस हो जाता है '(क)' और अन्त में पुनः प्रयोज्य को जोड़-तोड़ से अनावृत करता है। टाटे तथा वेरोफ्फ (1966) ने इस ए बी ए बी डिजाइन का उपयोग करके व्यक्ति के आत्मघाती व्यवहार के विकास पर मानव सम्पर्क में कमी के होने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन किया है। सिगमंड फायड ने इस विधि का उपयोग सांवेगिक रूप से क्षुब्ध व्यक्तियों के व्यक्तित्व के

अध्ययन में तथा मैसलों तथा रोजर्स ने इस विधि का अध्ययन सामान्य व्यक्तियों में व्यक्तित्व पैटर्न के अध्ययन में क्रमबद्ध रूप से किया है।

इस विधि के उपयोग में सबसे बड़ी कठिनाई जो आती है, वह यह है कि इससे प्राप्त परिणाम का सामान्यीकरण व्यक्तियों के बड़े समूह के लिये संभव नहीं है, क्योंकि इसमें मात्र एक या दो व्यक्तियों का ही अध्ययन किया जाता है।

(घ) अनुदैर्ध्य विधि-

व्यक्तित्व पैटर्न के विकास के अध्ययन करने की यह सबसे उत्तम विधि है। इस विधि में एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का विभिन्न समय अंतरालों पर क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षण किया जाता है तथा उनका रिकार्ड तैयार करके विश्लेषण किया जाता है। इस तरह से इस विधि में व्यक्तियों की जिन्दगी के विभिन्न अंतरालों में हुए विकास की आपस में तुलना की जा सकती है। व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में इस विधि को इतना महत्व दिया गया है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा इन प्रश्नों का उत्तर जानने की उसे एक मात्र विधि माना गया है- व्यक्ति के आरंभिक बाल्यावस्था में देखे गये विशेषताओं जैसे- आक्रमकता, निर्भरता तथा अविश्वास, वयस्कावस्था आने पर भी क्या बना रहता है? क्या बाल्यावस्था का आरंभिक सद्मा या मानसिक साधन से बाद का सामाजिक एवं बौद्धिक विकास प्रभावित होता है? आदि।

(ड.) अनुप्रस्थ-काट विधि-

व्यक्तित्व पैटर्न के विकास के अध्ययन में अनुप्रस्थ काट विधि भी काफी महत्वपूर्ण है। इस विधि में अध्ययनकर्ता विभिन्न उम्र के व्यक्तियों के विभिन्न समूहों की एक साथ तुलना करता है और एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। अतः यह अनुदैर्ध्य विधि से भिन्न तथा विपरीत है जहाँ एक समूह के व्यक्तियों को विभिन्न समय अंतरालों पर अध्ययन करके शोधकर्ता एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाता है। अनुप्रस्थ काट विधि व्यक्तित्व विकास के अध्ययन का एक स्नैपशॉट उपागम है।

व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में इस विधि का उपयोग टेम्पलिन (1957) द्वारा किया गया। इन्होंने अपने अध्ययन में विभिन्न उम्र समूहों के 60 बच्चों का चयन किया। इस अध्ययन में उन्होंने बच्चों में भाषा विकास के विभिन्न पहलुओं जैसे शब्दकोष, आवाज, विभेद, व्याकरण तथा भाषण-आवाज चिंतन आदि का तुलनात्मक अध्ययन करके कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिये।

इस विधि द्वारा व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करने में समय की काफी बचत होती है और अध्ययनकर्ता को अंतिम आँकड़े प्राप्त करने के लिये बहुत लम्बे समय का इंतजार नहीं करना पड़ता है। इसके बावजूद इस विधि की परिसीमा यह है कि इसमें प्रयोज्यों के चयन की काफी वस्तुनिष्ठ एवं सख्त विधि की आवश्यकता पड़ती है ताकि उम्र समूहों का उचित प्रतिनिधित्व मिल सके।

2.4.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया-

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं में संपन्न होती है। इस अवस्था की अपनी कुछ खास तो कुछ सामान्य विशेषता होती है। आइये, पहले ऐसे विकास की कुछ सामान्य विशेषताओं पर नजर डालें।

1. व्यक्तित्व विकास में आरंभिक नींव महत्वपूर्ण होते हैं-

इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व विकास की आरंभिक अवस्थाओं में जो मनोवृत्ति, आदत तथा व्यवहार का पैटर्न स्थापित होता है, वह बहुत हद तक बाद के व्यक्तित्व विकास में होने वाले परिवर्तनों को निर्धारित करता है।

2. व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता तथा अधिगम दोनों की भूमिका प्रधान होती है-

व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता मौलिक संसाधनों को प्रदान करता है जिसके अनुसार व्यक्ति सीखकर व्यवहार के सामान्य क्रम एवं पैटर्न को दिखाता है।

3. विकास का एक निश्चित एवं पूर्वानुमेय पैटर्न होता है-

जब तक पर्यावरण या अन्य समान कारकों का हस्तक्षेप नहीं होता है व्यक्ति के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाला विकास एक निश्चत पैटर्न के अनुसार चलता रहता है जो पूर्वानुमेय होता है। अब तक कोई ऐसा सबूत प्राप्त नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाय कि व्यक्तित्व का अपना विकास विशेष पैटर्न होता है। हाँ, यह अवश्य होता है कि व्यक्तित्व विकास का दर अलग-अलग होता है।

4. सभी व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं-

व्यक्तित्व का विकास इस ढंग से होता है कि सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं। यह विशेषता अभिन्न जुड़वों में भी पायी जाती है।

5. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषता होती है-

व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ खास ढंग का विशेष व्यवहार करता है। प्रत्येक अवस्था में कुछ अवधि संतुलन की होती है तो कुछ अवधि असंतुलन की होती है। संतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण की माँगों के साथ आसानी से समायोजन कर लेता है तथा उत्तम समायोजन करता है। असंतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण के माँगों के साथ ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है जिससे सामाजिक समायोजन में कठिनाइयाँ होती है।

6. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में कुछ जोखिम होते हैं-

विकास का प्रत्येक अवस्था में कुछ भौतिक, मनोवैज्ञानिक या पर्यावरणी जोखिम कारक होते हैं जिनसे व्यक्तित्व विकास थोड़ा अवरूद्ध होते हैं।

7. व्यक्तित्व विकास पर सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है-

प्रत्येक व्यक्ति एक परिवार में जन्म लेता है और उस परिवार के सांस्कृतिक मानकों एवं मूल्यों से बँधा होता है। अतः वह स्वाभाविक है कि व्यक्तित्व विकास पर उन सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़े।

8. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की कुछ अपनी सामाजिक प्रत्याशाएं होती हैं-

विकास की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ कौशलों को सीखता है तथा व्यवहार के विभिन्न अनुमोदित पैटर्न को सीखता है। इसे हैविंगहर्स्ट (1953) ने विकासात्मक कार्य कहा है।

स्पष्ट हुआ कि व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। आइए, अब व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया पर चर्चा करें।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया निम्नांकित अवस्थाओं में संपन्न होती है-

1. पूर्वप्रसूत अवस्था में व्यक्तित्व विकास
2. शैश्वावस्था में व्यक्तित्व विकास
3. बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास
4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास
5. पूर्वकिशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास
6. किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास
7. प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास
8. मध्यावस्था में व्यक्त्तिव विकास
9. वृद्धावस्था में व्यक्तित्व विकास

इन सबों का वर्णन इस प्रकार हैं-

1. पूर्वप्रसूति अवस्था में व्यक्त्तिव विकास-

पूर्व प्रसूति काल गर्भधारण से लेकर जन्म तक की अवधि है जो सामान्यतः 280 दिनों तक विस्तरित रहता है। यह अवस्था तीन भागों में बँटी होती है- जायगोट की अवस्था (गर्भधारण से 14 दिनों की अवधि), भ्रूण की अवस्था (दूसरा सप्ताह से आठवें सप्ताह तक की अवधि) तथा फेटस की अवस्था (9वें सप्ताह से जन्म तक की अवधि)। अध्ययनों से पता चलता है कि इस अवधि में हुई घटनाओं का माँ के गर्भ में पल रहे बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बोवेस एवं उनके सहयोगियों (1970) ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि यदि गर्भवती माता किसी कारण से कुनैन का उपयोग करती है, तो उनके बच्चे में बहरापन रोग हो जाता है। उसी तरह एसपिरीन तथा एण्टीबायटिक्स का उपयोग करने से बच्चे में हृदय रोग की संभावना बढ़ जाती है। उसी तरह गर्भावस्था मंेः जब माताएँ कुपोषण का शिकार हो जाती है, तो उनके बच्चों में मानसिक मंदता उत्पन्न होने की संभावना अधिक हो जाती है। इतना ही नहीं, ऐसे बच्चों का शारीरिक विकास भी काफी मंदित हो जाता है तथा कई तरह के स्नायविक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे उनका व्यक्त्तिव विकास मंदित हो जाता है।

2. शैशवावस्था में व्यक्त्वि विकास-

शैशवावस्था जन्म से लेकर दो सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है तथा यह अवस्था सभी अवस्थाओं से छोटी होती है। इसे दो भागों में बाँटा गया है- प्रसव अवधि, जो जन्म से लगभग 30 मिनट तक का होता है तथा

न्योनेट की अवधि, जो नाभि (नाड़ी) को काटकर बाँधने से दूसरे सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है। शैशवावस्था की क्रियाओं एवं घटनाओं से न केवल भविष्य में विकसित होने वाले व्यक्तित्व के पैटर्न का पता चलता है बल्कि इनका ऐसे व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव भी पड़ता है। इस अवधि में बच्चों में तरह-तरह की भिन्नता पायी जाती है। कुछ बच्चे अधिक रूदन करते हैं तो कोई कम। कुछ बच्चों द्वारा पेशीय क्रियाएँ अधिक होती हैं तो कुछ बच्चों द्वारा ऐसी क्रियाएँ कम एवं अनियंत्रित होती हैं। कुछ बच्चों में अमुक तरह के प्रतिवर्त क्रियाएँ अधिक होते हैं। कुछ बच्चे बहुत सोते हैं तो इस अवधि में कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो तुलनात्मक रूप से कम सोते हैं। इन सभी तरह की क्रियाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ते देखा गया है। हरलॉक (1979) के अनुसार जो बच्चे इस अवधि में अधिक पेशीय क्रियाएँ जैसे-हाथ पैर फेंकना आदि करते हैं, उनमें आगे चलकर समायोजन संबंधी कठिनाइयाँ कम होती हैं, क्योंकि उनका व्यक्तित्व विकास सामान्य होता है।

3. बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास-

बचपनावस्था की शुरूआत जन्म के दो सप्ताह बाद से प्रारंभ होकर अगले दो साल तक बनी होती है। बचपनावस्था को व्यक्तित्व विकास का विवेचित या क्रान्तिक अवस्था कहा जाता है। इसे विवेचित अवस्था इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसी अवधि में उन सारी चीजों की नींव पड़ती है जिस पर वयस्क व्यक्तित्व संरचना का आगे चलकर निर्माण होता है। निम्नांकित पाँच ऐसे सबूत प्राप्त हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वयस्क व्यक्तित्व संरचना की नींव इस अवधि में पड़ती है-

क. कोट्स एवं उनके सहयोगियों (1972) तथा रटर (1972) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि इस अवधि में बच्चों में सांवेगिक वंचन होने पर (जैसा कि घर में माँ द्वारा बच्चे के साथ अंतक्रिया करने के लिए समयाभाव के होने से या बच्चा को किसी संस्थान में रख देने से प्रायः होता है) आगे उनके व्यक्तित्व विकास में बहुत सारी कमियाँ उत्पन्न होते पायी गयी है। प्रायः ऐसे वयस्क सांवेगिक रूप से अस्थिर प्रकृति के होते देखे गए हैं।

ख. चूँकि इस अवधि में बच्चे की अन्तःक्रिया माँ के साथ सबसे ज्यादा होती हैं, अतः माँ के अपने व्यक्तित्व तथा बच्चे के साथ उसके संबंध का प्रत्यक्ष प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। यदि यह संबंध अनुकूल तथा स्नेहमयी होता है, तो बच्चों में धनात्मक आत्म-संप्रत्यय का विकास होता है।

ग. इस अवधि में जब कोई अप्रत्याशित तथा प्रतिकूल घटना घटती है, तो उस समय बच्चों में विकसित हो रहे शीलगुण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे- स्टोन एवं चर्च (1973) ने अपने अध्ययन में पाया कि इस अवधि में जब बच्चों में स्वतंत्रता का शीलगुण का निर्माण हो रहा होता है और यदि उस समय माता-पिता से उसे अतिसंरक्षण मिलता है, तो यह बच्चे के लिए हानिकारक सिद्ध होता है और उस शीलगुण का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

घ. जराई एवं स्कीनफिल्ड (1968) के अध्ययन के अनुसार इसी अवस्था में बच्चों में यौन अंतर की नींव भी पड़ जाती है जो बाद में पुरूष बच्चा को एक ढंग से तथा स्त्री बच्चा को दूसरे ढंग से व्यवहार करने एवं सोचने के लिए बाध्य करता है।

ड. इस अवस्था में व्यक्तित्व पैटर्न का सार अर्थात् आत्म-संप्रत्यय का जो जन्म होता है, वह बाद में करीब-करीब वैसा ही रह जाता है। विशेष पर्यावरणी परिस्थिति के होने पर उसमें हल्का-सा परिवर्तन होता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, व्यक्तित्व का यह सार कम-से-कम लचीला होता चला जाता है। वैसी परिस्थिति में व्यक्तित्व शीलगुणों में किसी तरह के परिवर्तन से व्यक्तित्व संतुलन बिगड़ जाता है।

बचपनावस्था के कुछ व्यक्तित्व शीलगुणों में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन का स्वरूप मात्रात्मक या गुणात्मक कुछ भी हो सकता है। मात्रात्मक परिवर्तन होने पर पहले से उपस्थित शीलगुण या तो और मजबूत हो जाते हैं या कमजोर हो जाते हैं। गुणात्मक परिवर्तन होने पर एक शीलगुण दूसरे शीलगुण द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है।

4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास-

बाल्यावस्था 2 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक की होती है। इसमें 2 वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक को आरंभिक बाल्यावस्था तथा 6 से 12 वर्ष की आयु तक को उत्तर बाल्यावस्था कहा जाता है। बाल्यावस्था को प्राक्स्कूल अवस्था या प्राक् टोली अवस्था तथा उत्तर बाल्यावस्था को टोली अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में बच्चों का शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है। इस अवस्था में शरीर की मांशपेशियाँ अधिक गठीली और मजबूत हो जाती है जिससे बचपन वाली आकृति धीरे-धीरे खत्म होने लगती है। यह अवस्था समाप्त होते-होते बालकों में 32 स्थायी दाँतों में से 28 स्थायी दाँत निकल आते हैं और बाकी चार स्थायी दाँत किशोरावस्था में निकलते हैं। इस अवस्था में बालकों में शब्दावली निर्माण में वृद्धि, उच्चारण में स्पष्टता तथा जटिल वाक्यों का प्रयोग आदि अधिक पाया जाता है। इनके संभाषण अब अधिक नियंत्रित एवं तथ्य पूर्ण दिखाई पड़ने लगते हैं। इनका सांवेगिक पैटर्न भी अब पहले की तुलना में अधिक परिपक्व हो जाता है। बाल्यावस्था समाप्त होते-होते, सांवेगिक अभिव्यक्ति का ढंग अधिक परिपक्व हो जाता है। वे सामाजिक रूप से बहिष्कृत संवेगों की अभिव्यक्ति नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा करने से उसे उन्हें दूसरों का सामाजिक अनुमोदन प्राप्त नहीं हो सकेगा। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह संयुक्त रूप से स्पष्ट हुआ है कि बाल्यावस्था समाप्त होते ही बच्चों के व्यक्तित्व में कुछ खास प्रकार के सामाजिक व्यवहार विकसित होते हैं जिनमें प्रमुख हैं- सामाजिक अनुमोदन की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रतियोगिता करना, उत्तरदायित्व लेना, सामाजिक सूझ, सामाजिक विभेद, पूर्वाग्रह तथा यौन प्रतिरोध आदि दिखाना। इस अवस्था तक व्यक्ति में 90 प्रतिशत मानसिक विकास पूरा हो जाता है तथा वह तरह-तरह के परिपक्व संज्ञानात्मक व्यवहार करने लगता है।

5. पूर्व किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था सामान्यतः 11-12 वर्ष से 13-14 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में व्यक्तित्व विकास संबंधी परिवर्तन काफी स्पष्ट होते हैं और लड़कों की तुलना लड़कियों का व्यक्तित्व विकास अधिक प्रभावित होता है क्योंकि यह वह अवस्था होती है जहाँ लड़कियों पर सामाजिक प्रतिबंध लगना प्रारंभ हो जाते हैं। मोरे (1989) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि इस अवस्था में व्यक्ति में चिंता, चिड़चिड़ापन तथा उदासी आदि अधिक बढ़ जाता है। इस अवधि में असहयोगिता, किसी बात को प्रायः नहीं मानना, विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ झगड़ना आदि मुख्य रूप से पाये जाते हैं। लड़कों तथा लड़कियों दोनों में इस अवस्था में प्रायः सरदर्द, पीठ दर्द, तथा पूरे शरीर में सामान्य दर्द की शिकायत भी होती है जो स्पष्टतः उनके ग्रन्थीय विकास के कारण होते हैं।

6. किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था 14-15 साल की आयु से लगभग 19-20 साल की आयु तक होती है। व्यक्तित्व विकास की यह अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इसमें बहुत तरह के दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं, जिसका असर व्यक्तित्व विकास पर सीधा पड़ता है इसे 'तनाव एवं तूफान की अवस्था' भी कहा गया है क्योंकि इसमें बहुत तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे व्यक्तित्व पैटर्न का विकास प्रभावित होता है। लड़के एवं लड़कियों दोनों के शारीरिक ऊँचाई, भार, शरीर के अंगों का अनुपात, यौन अंगों एवं गौण यौन विशेषताओं में पर्याप्त परिवर्तन आते हैं जिनका असर व्यक्तित्व विकास पर सीधा पड़ता है। गैसेल तथा मोरे (1965) ने अपने अध्ययन में पाया कि 16-17 साल के बालक-बालिकाओं दोनों में ही क्रोध के संवेग की तीव्रता अधिक होती है और फिर धीरे-धीरे इसकी तीव्रता कम हो जाती है। इनमें विषमलैंगिकता का शीलगुण भी विकसित होने लगता है क्योंकि लड़के एवं लड़कियाँ अपने विपरीत यौन के व्यक्तियों के साथ मिलने-जुलने में काफी आनन्द उठाते हैं। पियाजे (1965)के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति का संज्ञानात्मक विकास एक नया रूख अपनाता है और इनके द्वारा क्रमबद्ध निगमनात्मक चिंतन का उपयोग किसी समस्या के समाधान में अधिक होने लगता है। इस अवस्था में लड़के एवं लड़कियों में आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है। इस अवस्था में जो व्यक्ति लक्ष्य निर्धारण करने में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाते हैं तथा जो अपनी क्षमताओं एवं कमजोरियों का सही मूल्'यांकन करते हैं, उनका व्यक्तित्व पैटर्न का विकास अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त एवं समुचित होता है।

7. प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था 21 वर्ष से लगभग 40 वर्ष की होती है। इस अवस्था में सामान्यतः व्यक्ति शादी करके अपना घर-परिवार बसाता है और किसी नौकरी या व्यवसाय में लग जाता है तथा अपने आत्म विकास को मजबूत कर आगे बढ़ाता है। इन्हीं कारणों से इसे व्यवस्था या बसाने की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में व्यक्ति की अभिरूचियाँ थोड़ी सीमित हो जाती है। इनकी व्यक्तिगत अभिरूचियाँ, सामाजिक अभिरूचियाँ तथा मनोरंजन से संबद्ध अभिरूचियाँ किशोरावस्था के समान बहुत अधिक न होकर सीमित हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता

है कि उनमें कुछ नये-नये शीलगुणों का विकास होने लगता है। इस अवस्था में नयी-नयी जवाबदेहियाँ व्यक्ति के कंधे पर आ जाती है। व्यक्ति पर एक तरफ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ होती हैं तो दूसरी तरफ अपने व्यवसाय या नौकरी से संबद्ध जिम्मेवारियाँ। इससे व्यक्ति की जिंदगी थोड़ा तनावयुक्त हो जाती है। प्रायः वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वतंत्र रूप से करना चाहता है। इस अभ्यास से उसमें सर्जनात्मकता का गुण भी विकसित होता है। चाहे इस अवस्था में वयस्क विवाहित या अविवाहित हो, अगर उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर अनुकूल होता है, तो उनकी सामाजिक क्रियाएँ अधिक बढ़ जाती है। परंतु यदि उनका सामाजिक आर्थिक स्तर प्रतिकूल होता है, तो ऐसी सामाजिक क्रियाएँ काफी कम एवं सीमित ही हो पाती हैं। इस उम्र में अविवाहित व्यक्ति विवाहित व्यक्ति की तुलना में सामान्यतः अधिक सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हैं। अतः इनमें सामाजिकता का शीलगुण तुलनात्मक रूप से अधिक तेजी से विकसित होता है।

8. मध्यावस्था में व्यक्तित्व विकास-

मध्यावस्था या मध्यवयस्कावस्था की अवधि 40 से 60 वर्ष की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति में कई कारणों से तनाव अधिक होता पाया गया है। मारमोर (1967) के अनुसार इस अवस्था में चार तरह के तनाव मुख्य रूप से होते हैं जिनका व्यक्तित्व पैटर्न के विकास पर सीधा असर पड़ता है।

क. दैहिक तनाव- उम्र के परिणामस्वरूप गिरते स्वास्थ्य के कारण इस तरह का तनाव उत्पन्न होता है।

ख. सांस्कृतिक तनाव- इस तरह के तनाव का मुख्य कारण सामाजिक परिवेश में यौवन-शक्ति को उनके तुलना में अधिक महत्व दिया गया होता है।

ग. आर्थिक तनाव- इसका कारण सेवामुक्त होने पर आय में कमी तथा इस सीमित आय से परिवार के सदस्यों को शिक्षित करके स्तर संकेत प्रदान करने के प्रयास से होता है।

घ. मनोवैज्ञानिक तनाव- इस तरह के तनाव के कई कारण होते हैं जिनमें पति या पत्नी का देहांत, घर से बच्चों का व्यवसाय या नौकरी पर चला जाना, वैवाहिक जीवन का ऊब, मृत्यु के करीब होने का अनुमान आदि प्रमुख है।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि इस अवस्था में दैहिक क्षमता में गिरावट आने के साथ-ही-साथ मानसिक क्षमता में भी गिरावट आती है। परंतु प्रयोगात्मक सबूत इसके विपरीत हैं। टरमेन एवं ओडेन (1959)ने पुरूषों तथा महिलाओं के समूह पर एक अनुदैर्ध्य अध्ययन किया और पाया कि उच्च बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों में इस मध्यावस्था में भी बौद्धिक तथा मानसिक ह्रास के कोई सबूत नहीं मिलते हैं। केसलर (1976) ने भी अपने अध्ययन में इस तथ्य की संपुष्टि करते हुए कहा है कि ऐसे व्यक्तियों में तो इस अवस्था में समस्या-समाधान तथा शाब्दिक क्षमताएँ और विकसित हो जाती हैं। मध्यावस्था में कुछ व्यक्तियों में सामाजिक समायोजन पहले से परिपक्व हो जाता है क्योंकि उनके पास अब सामाजिक क्रियाओं के लिये पर्याप्त समय मिलता है।

9. वृद्धावस्था में व्यक्ति विकास-

जीवन अवधि की अंतिम अवस्था वृद्धावस्था होती है जो सामान्यतः 60 वर्ष से प्रारंभ होकर मृत्यु तक विस्तरित होती है। 60 से 70 साल की अवधि को आरंभिक वृद्धावस्था तथा 70 से मृत्यु तक की अवधि को प्रगत वृद्धावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में कुछ विशेष दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं जिनसे वृद्धों के समायोजन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उनके खुशियों को कुप्रभावित करता है। हरलाँक (1989) के अध्ययनानुसार इस अवस्था में व्यक्ति के सामान्य रूप रंग एवं डील-डौल में स्पष्ट परिवर्तन आते हैं। इतना ही नहीं, उनमें आंतरिक परिवर्तन भी होते हैं जिनसे उनकी संवेदी एवं पेशीय क्षमताएँ काफी प्रभावित हो जाती हैं और व्यक्तित्व की सामान्य समयोजन क्षमता कम हो जाती है। इन परिवर्तनों का कारण दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही होते हैं। दैहिक कारणों में शक्ति की कमी, जोड़-संधियों में कड़ापन, हाथ, सिर एवं निम्न जबड़े में कमी मुख्य है। मनोवैज्ञानिक कारणों में उस हीनता का भाव है जो उनमें तब पनपता है जब वह अपनी तुलना अन्य कम उम्र के व्यक्तियों के कौशल, शक्ति एवं क्षमताओं से करता है। ऐसे भाव से उनमें सांवेगिक तनाव उत्पन्न होता है जो उनके व्यक्तित्व के सांवेगिक विकास और फिर सामाजिक विकास को कुप्रभावित करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकास जीवन अवधि के विभिन्न अवस्थाओं में चलने वाली एक निरंतर प्रक्रिया है जिसका इन सभी अवस्थाओं में व्यक्तित्व पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक/प्रभावक-

जैसा कि हमने देखा- व्यक्तित्व के विकास में निरन्तरता पाई जाती है जिसका प्रारंभ गर्भाधान के समय से ही हो जाता है और मृत्यु पर्यन्त विकास की यह प्रक्रिया चलती रहती है। यह कभी रूकती नहीं। हाँ, जीवन के प्रारंभिक वर्षों में विकास की गति कुछ तेज जरूर होती है। इन बातों की पुष्टि व्यक्तित्व-विकास की प्रत्येक अवस्था का क्रमशः अध्ययन से प्राप्त आलेखों या विवरणों से होती है। परंतु, यदि व्यक्ति के विकासक्रम का ऐतिहासिक आलेख उपलब्ध न हो और हम विकास के किसी एक या दो अवस्थाओं का ही अध्ययन करें, तो निरंतरता का यह क्रम टूटता हुआ भी दृष्टिगोचर हो सकता है; क्योंकि व्यक्तित्व के कुछ शीलगुणों को तेजी से उत्पन्न होते हुए भी देखा जा सकता है। जैसे- एक सामान्य व्यक्ति अपने विकास की किसी खास अवस्था में कुछ असामान्य लक्षणों को प्रदर्शित करता है। यहाँ शीलगुण के विकासक्रम की निरंतरता टूट जाती है और एक नया मोड़ ले लेती है। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास में उछालद्व टूट या क्रम की रूकावट आदि के लक्षण भी देखे जाते हैं।

कुल मिलाकर व्यक्तित्व का विशिष्ट संगठन और पुनः संगठन निरंतर विकासात्मक तंत्र का ही प्रतिफल है तथा व्यक्तित्व के विकास के क्रम में अनेक जैविक एवं वातावरण से संबद्ध तत्वों का प्रभाव पड़ता है। तात्पर्य यह है कि अन्य सभी घटनाओं की ही तरह व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया भी कारण एवं फल के नियम द्वारा शासित होती है तथा इसमें 'अपूर्वता या विशिष्टता' आती है। इन दोनों प्रकार के विभिन्न कारक तत्वों को व्यक्तित्व का निर्धारक या प्रभावक भी कहते हैं।

2.5.1 व्यक्तित्व के जैविक निर्धारक-

व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों से तात्पर्य उन कारकों से है जो आनुवंशिक होते है। इनका निर्धारण वातावरण से नहीं, बल्कि माँ-बाप एवं पुरखों से प्राप्त वंशानुक्रम से होता है। व्यक्तित्व के विकास या गठन पर वंशानुक्रम का व्यापक प्रभाव पड़ता है। हालाँकि, व्यक्तित्व प्रत्यक्षतः वंशगत नहीं होता। पर, किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किस ढंग का होगा, यह वंशानुक्रम द्वारा पूर्व-उद्यत होता है और व्यक्तित्व का विकास पूर्व-उद्यत रूप में होता है या नहीं और यदि होता है तो किस हद तक पूर्व-उद्यत अथवा वंशानुक्रम द्वारा पूर्वनिर्धारित ढंग के अनुरूप होता है- यह वातावरण के कुछ तत्वों पर निर्भर करता है।

व्यक्तित्व विकास में वंशानुक्रम के पूर्व-उद्यत प्रभाव को हम छोटे-छोटे शिशुओं के व्यवहारों का निरीक्षण कर समझ सकते हैं। छोटे शिशुओं में अर्जित आदतों या शिक्षण का प्रभाव नहीं रहता। फिर भी, शिशुओं की विशेषताओं में महत्वपूर्ण भिन्नता पाई जाती है। उदाहरणार्थ-एक शिशु अत्यंत सक्रिय रहता है तो दूसरा आलसी, एक जोर-जोर से रोता और चिल्लाता है तो दूसरा शांत रहता है। कभी-कभी हमें शिशुरोग विशेषज्ञों की सलाह भी लेने की आवश्यकता पड़ जाती है। शिशुओं की प्रवृत्तियों में ये विभिन्नताएँ जन्मजात यानी वंशानुगत होती हैं, जिनके अनुरूप ही उनके व्यक्तित्व का विकास होता है।

मनुष्यों के व्यक्तित्व पर वंशानुक्रम के प्रभावों का अध्ययन करने हेतु विद्वानों ने परिवार जीवनियों का सहारा लिया है। उनका विश्वास था कि कोई लक्षण यदि परिवार की पीढ़ी-दर-पीढ़ी में व्याप्त हो, तो उस लक्षण को वंशानुक्रम से प्राप्त माना जा सकता है। इस विश्वास की पुष्टि के लिए अनेक अध्ययन हुए हैं। गाल्टन ने 1869 ई0 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘‘हेरिडिटरी जीनियस’’ एवं 1873 ई0 में प्रकाशित ‘‘इंग्लिश मेन ऑफ साइंस’’ में अपने इस विश्वास पर जोर देते हुए बताया है कि ‘प्रतिष्ठा’ और ‘श्रेष्ठता’ कुछ ही परिवारों में सीमित रहती है। गोडार्ड ने ज्यूक परिवारों का अध्ययन कई पीढ़ियों तक किया और पाया कि जिन परिवारों की माताएँ मंदबुद्धि की थीं, उनके बच्चे भी बुद्धिहीन थे। इसी प्रकार की बात रोगी और अपराधी प्रवृत्ति वाले व्यक्तित्यों के साथ भी पाई गई। गोडार्ड ने कालिकाक परिवार का अध्ययन कर भी वंशानुक्रम के महत्व को प्रमाणित किया है। कालिकाक मार्टिन नाम के एक सैनिक के परिवार को काल्पनिक नाम दिया है जिसने अमेरिका की क्रांति के जमाने में एक मानसिक रूप से दुर्बल लड़की और फिर बाद में मानसिक रूप से स्वस्थ महिला के साथ शादी कर ली थी। इन दोनों महिलाओं से उत्पन्न संतानों से परिवार का एक सिलसिला चला। देखा गया कि मानसिक रूप से दुर्बल महिला की संतानों से बने परिवारों के प्रायः सभी बच्चे भी मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त थे और मानसिक रूप से स्वस्थ महिला की संतानों से बने परिवारों के प्रायः सभी बच्चे भी स्वस्थ एवं औसत या उससे अधिक बुद्धि के थे।

किंतु, यहाँ स्मरणीय होना चाहिए, कि परिवार जीवनियों पर आधारित ये साक्ष्य बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं है; क्योंकि इन अध्ययनों में वंशानुक्रम से प्राप्त गुणों की जानकारी पर्याप्त नहीं थी और साथ ही वातावरण पर नियंत्रण का भी अभाव था।

व्यक्तित्व पर वंशानुक्रम के प्रभाव संबंध में सबसे अच्छे प्रमाण जुड़वे बच्चों एवं पशुओं पर किए गए अध्ययनों से प्राप्त हुए हैं।

जुड़वें बच्चे दो प्रकार के होते हैं-अभिन्न यमज एवं भिन्न यमज। जब पुरूष के शुक्रकीट से स्त्री का एक रजकीट निषेचित होता है और विकास के क्रम में निषेचित अंडाणु के दो भागों में विभक्त होने से दो स्वतंत्र बच्चे विकसित होने लगते हैं, जिनकी वंशगत विशेषताएँ एक समान यानी अभिन्न होती हैं, तब ऐसे बच्चों को 'एकांडाण्विक' या 'अभिन्न यमज' कहते हैं। इसके विपरीत, कभी-कभी स्त्री के दो अंडाणु या रजकीट एक ही समय में पुरूषों के दो शुक्रकीटों द्वारा निषेचित हो जाते हैं, जिससे गर्भाशय में प्रारंभ से ही दो स्वतंत्र बच्चे विकसित होने लगते हैं। इन दोनों बच्चों की वंशगत विशेषताएँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। ऐसे जुड़वों को 'द्विअंडाण्विक' या 'भिन्न यमज' कहते हैं। अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि अभिन्न यमजों की व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताएँ भिन्न यमजों के व्यक्तित्व की विशेषताओं की तुलना में बहुत अधिक समान होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के निर्धारण में वंशानुक्रम का बहुत बड़ा हाथ रहता है।

गोटेस्मैन (1963) ने मिन्नेसोटा मल्टीफेजिक परसनॉलटी इन्वेण्टरी और कैटेल की उच्च विद्यालय व्यक्तित्व-प्रश्नावली का प्रयोग 34 जोड़े अभिन्न एवं भिन्न यमजों यानी जुड़वें बच्चों पर किया और पाया कि 'अभिन्न जुड़वों' में 'भिन्न जुड़वों' की अपेक्षा बहुत अधिक समानता थी। व्यक्तित्व के गुणों के विकास में वुशानुक्रम के महत्व को कालमैन (1953), डफ्फी (1957), मैलमो (1956), कैटेल (1956), आदि ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध किया है।

उपर्युक्त साक्ष्यों के बावजूद इस बात के भी स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम का महत्व आंशिक है। वंशानुक्रम व्यक्तित्व-विकास की प्रक्रिया का पूर्व-उद्यत अथवा निर्धारक तत्व हैः अतः, स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के निर्धारण में वंशानुक्रम के अतिरिक्त अन्य जैविक एवं सामाजिक तत्वों का भी योगदान रहता है जिनकी चर्चा आगे की जा रही है।

क. शारीरिक बनावट या गठन एवं धातुस्वभाव-

प्रायः साधारण से साधारण व्यक्ति भी शारीरिक बनावट को देखकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को परखने की कोशिश करता है। शारीरिक बनावट के अंतर्गत व्यक्ति का रूप-रंग, उसकी लम्बाई, स्वास्थ्य, वजन, विभिन्न अंगों का संतुलित अनुपात आदि विशेषताएँ शामिल हैं। इन विशेषताओं के विशेष प्रकार के संयोग से ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व सुंदर और आकर्षक अथवा कुरूप और अनाकर्षक प्रतीत होता है। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि शारीरिक बनावट-संबंधी भिन्नता के कारण उसके प्रति लोगों द्वारा की जाने वाली प्रतिक्रियाओं की विभिन्नता पर ही व्यक्तित्व का निर्धारण निर्भर करता है। शारीरिक बनावट स्वयं में कोई महत्व नहीं रखता। उदाहरणार्थ-यदि कोई नाटा और काले रंग का हो अथवा किसी की एक आँख खराब हो तो बनावट-संबंधी इन विशेषताओं का उसके व्यक्तित्व पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, यदि समाज के दूसरे लोग उसे बुरी दृष्टि से नहीं देखे। प्रायः ऐसे लोगों को देखकर दूसरे लोग उन्हें अपाहिज या विकृत कहकर उनका अपमान करते हैं अथवा

चिढ़ाते हैं। इससे उनमें हीनता की भावना विकसित होती है, जिससे उनका व्यक्तित्व कुत्सित या कुंठित होता है। इस संबंध में एडलर का विचार है कि हीनता के भाव का अनुभव होने पर व्यक्ति में इस कमी की पूर्ति के लिए क्षतिपूर्त्यात्मक व्यवहार उत्पन्न होता है जो भला या बुरा दोनों हो सकता है। समाजविरोधी व्यक्तित्व अथवा मनोविकारी व्यक्तित्व के विकास में हीन भाव का महत्व विशेष रूप से देखा गया है। किसी-किसी में हीन भाव समाजोपयोगी व्यवहारों को भी उत्पन्न करते हैं; जैसे-किसी शारीरिक रूप से अपाहिज का एक बड़ा वैज्ञानिक साहित्यकार या चित्रकार बनना। अतः, स्पष्ट है कि शारीरिक बनावट-संबंधी विकृति के कारण व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है।

शारीरिक बनावट-संबंधी विभिन्नता के कारण व्यक्तित्व की विभिन्नता प्रयोगों द्वारा भी प्रमाणित हुई है। एक प्रयोग पंगु एवं सामान्य लड़कियों पर किया गया। इन दोनों समूह की लड़कियों की संवेगात्मक स्थिरता की जाँच की गई और देखा गया कि पंगु लड़कियों में सामान्य लड़कियों की अपेक्षा संवेगात्मक स्थिरता कम थीं स्पष्ट है कि शारीरिक बनावट का व्यक्तित्व निर्माण अथवा विकास पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

शारीरिक बनावट और धातु-स्वभाव में घनिष्ठ संबंध है। इसी संबंध के आधार पर विद्वानों ने व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की है। इन आधारों पर क्रेश्मर एवं शेल्डन के व्यक्तित्व प्रकारों की चर्चा पहले भी की जा चुकी है। मोटे तौर पर हम यह निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं कि व्यक्तित्व गठन में व्यक्ति के शरीर का आकार-प्रकार एक महत्वपूर्ण तत्व है। व्यक्तियों के शरीर रचना-संबंधी विभिन्नताएँ बहुधा व्यक्तित्व के शीलगुणों से संबंध रखती है। प्रायः, यह देखा जाता है कि गोल-मटोल आदमी विनोदी स्वभाव का, आरामपसंद और सामाजिक होता है। दुबले-पतले आदमी संयमी, तनाव की हालत में रहने वाले और अंतर्मुखी होते हैं। इस तरह के अंतरों को शेक्सपियर के नाटकों में भी प्रदर्शित किया गया है। व्यक्तित्व और शरीररचना तथा उससे संबद्ध धातु-स्वभाव के संबंधों के विषय में आजकल भी अनेक खोज किए जा रहे हैं।

ख. शरीर रसायन-

व्यक्तित्व के जैविक तत्वों में शरीर रसायन का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन लोग चार द्रवों के प्रभाव से चार अलग-अलग स्वभावों की चर्चा करते थे। उनके विचारानुसार आदतन आशावादी व्यक्तियों में अत्यधिक रक्त रहता है, चिड़चिड़े व्यक्ति में पित्त की, शांत व्यक्ति में कफ की और उदास रहने वाले व्यक्ति में प्लीहा की अधिकता रहती है। कभी-कभी एक पाँचवाँ स्वभाव धैर्यहीन या चेतनामय भी माना जाता था जिसका संबंध स्नायुद्रव की अधिकता से बताया जाता था।

उपर्युक्त दृष्टिकोण आजकल पुराना पड़ गया है, अतः बहुत उपयोगी प्रतीत नहीं होता। फिर भी, रासायनिक द्रव और व्यक्ति के व्यवहार के बीच संबंध होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप कुछ शरीर रसायन-संबंधी तत्व महत्वपूर्ण पाए गए हैं, जो निम्नवत है-

1. रक्त संचरण-

व्यक्ति के रासायनिक तत्व रक्तसंचार पर निर्भर करते हैं। स्नायुमंडल की तरह रक्तसंचार का भी शरीर के संयोजन में महत्वपूर्ण स्थान है, हालाँकि दोनों के ढंग अलग-अलग हैं। रासायनिक द्रव्यों को शरीर के विभिन्न अंगों तक ले जाने में रक्तसंचार रेलगाड़ी की तरह कार्य करता है और संदेशों को ढोने में स्नायुमंडल टेलिफोन के तार की तरह। रासायनिक द्रव्यों का संवहन कुछ इस प्रकार होता है-शरीर का प्रत्येक अंग अपने उत्पादित द्रवों को रक्त में छोड़ देता है और वे रक्त के साथ हृदय के एक कोष्ठ में पहुँचते हैं, जहाँ से रक्त शुद्ध होकर शरीर के सभी अंगों में भ्रमण करता है। उस समय शरीर के सभी अंग रक्त में बहने वाले द्रवों को अपनी आवश्यकता के अनुसार ग्रहण करते हैं रक्त संचरण-क्रिया अनवरत एक नित्य गति से हुआ करती है। लेकिन, जब इसकी गति किसी कारणवश कम या तेज होती है, तब रक्तचाप में परिवर्तन होता है जिसका प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव पर भी पड़ता है। जैसे- उच्च रक्तचाप के रोगी में घबड़ाहट एवं अत्यधित क्रोध, आवेगात्मक व्यवहार आदि लक्षण उनके व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं।

2. रक्त में चीनी की मात्रा-

रक्म में चीनी की मात्रा का भी प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। मस्तिष्क और शरीर के अन्य अंगों को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए लहू में चीनी की मात्रा उपयुक्त स्तर में रहना आवश्यक है। लेकिन, जब चीनी की मात्रा में कमी या बेशी होती है, तब व्यक्तित्व में कुछ खास परिवर्तन होते है; जैसे-व्यक्ति की मनोदशा या चित्त में परिवर्तन, चिड़चिड़ाहट में वृद्धि, भयभीत बना रहना, चेतना का लुप्त होना, वाक्-असंतुलन, स्मृति में ह्रास का होना, संवेगात्मक अस्थिरता आदि।

3. अंतःस्रावी ग्रंथियाँ-

अंतःस्रावी ग्रंथियाँनलिकाविहीन होती हैं तथा इनसे उत्पन्न होने वाले द्रव्य या स्राव सीधे रक्त में मिल जाते है। इन ग्रंथियों द्वारा कुछ हार्मोन्स उत्पन्न होते हैं, जो शरीर या उसके किसी अंग की क्रियाओं को बढ़ाने या घटाने की शक्ति रखते हैं। देखा गया है कि जिन व्यक्तियों की इन ग्रंथियों में कोई दोष रहता है, उनके व्यक्तित्व में कुछ दोषपूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। प्रमाणों के आधार पर कुछ विद्वानों ने व्यक्तित्व में अंतःस्रावीग्रंथियों के महत्व को बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर बताया है। लुइस बर्मन (1928) ने तो यहाँ तक दावा किया है कि स्नायुमुडल-संबंधी रोग, पालगपन, चारित्रिक विकृति, अपराधी प्रवृत्ति आदि इन्हीं के कारण होते हैं तथा इन ग्रंथियों के दोषों को चिकित्सा द्वारा दूर कर देने पर संबद्ध विकृति के लक्षण भी दूर हो जाते हैं। इसके विपरीत हॉकिन्स का मत है कि व्यक्तित्व विकास में अंतःस्रावी ग्रंथियों का महत्व अभी तक बहुत स्पष्ट नहीं हो सका है। उपर्युक्त विरोधी विचारों के बावजूद हाल में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट पता चलता है कि व्यक्तित्व पर अंतःस्रावी ग्रंथियों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथियों के उत्पादकों के प्रभावों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

1. गलग्रंथि-

यह ग्रंथि गर्दन की जड़ में श्वासनलिका के सामने रहती है। साधारणतः इसका वजन एक औंस होता है कभी-कभी इसका आकार असामान्य रूप से बढ़ जाता है, लेकिन इससे इसके कार्य में कोई खास चिंताजनक गड़बड़ी नहीं होती। जब किसी तरह से यह ग्रंथि रूग्ण होकर विनष्ट हो जाती है, तब इस अवस्था को माइक्सोडेमा कहते हैं और इससे स्रावित होने वाले हार्मोन, जिन्हें थाइरॉक्सिन कहते है मंद पड़ जाते है। इससे चमड़े अकड़ जाते है। फलतः मस्तिष्क और पे शियों की क्रियाएँ मंद पड़ जाती हैं। व्यक्ति में शिथिलता, मूर्खता, भुलड़पन आ जाते हैं। वह एकाग्रचित होकर न तो किसी वस्तु पर ध्यान केंद्रित कर सकता है और न सोच-विचार कर सकता है। बच्चों में तो थाइरॉक्सिन के अभाव के कारण बुद्धि का ह्रास भी हो जाता है। थाइरॉक्सिन के अभाव के कारण व्यक्ति में सुस्ती और निष्क्रियता की स्थिति के अलावा उसका स्वभाव झगड़ालू हो जाता है। कुछ मनःचिकित्सकों की राय में इस हार्मोन के अभाव के कारण व्यक्ति में मनोविदाली लक्षण भी उत्पन्न होते है, अर्थात व्यक्ति असंतुष्ट, निराश और अविश्वासी हो जाता है, जो मनोविदलिता का प्रधान लक्षण है। थाइरॉक्सिन का स्राव अधिक होने पर व्यक्ति में स्नायुमंडलीय तनाव बढ़ जाता है और व्यक्ति उत्तेजित, चिंतित और अशांत हो जाता है। स्वतःसंचालित स्नायुमंडल की कार्यशीलता भी बढ़ जाती है। विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि थाइरॉक्सिन की अधिकता का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर सीधे पड़ता है, जबकि इसके अभाव का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।

2. एड्रिनल ग्रंथि-

यह ग्रंथि दाहिने और बाँए दोनों गुर्दा के निकट स्थित है। गुर्दो के निकट रहने के कारण ही इन्हें उपवृक्क ग्रंथियाँ भी कहते हैं, हालाँकि गुर्दो के कार्य से इनका कार्य बिल्कुल भिन्न है। प्रत्येक एड्रिनल ग्रंथि के दो भाग होते हैं-बाह्य एवं भीतरी। बाह्य भाग को कॉर्टेक्स तथा भीतरी भाग को मेडुला कहते हैं। इन दोनों भागों में बनावट और काय्र की दृष्टि से अंतर होता है। बाह्य भाग यानी कॉर्टेक्स से उत्पन्न हार्मोन को कॉर्टिन और भीतरी भाग मेडुला से उत्पन्न हार्मोन को एड्रेनलिन कहते हैं।

एड्रेनलिन अत्यंत शक्तिशाली हार्मोन है। इसमें दो प्रकार के रासायनिक तत्व रहते हैं, जिन्हें एपिनेफ्रीन एवं नॉर-एपिनेफ्रीन कहते हैं। रक्त में एड्रेनिन की थोड़ी-सी मात्रा भी अग्रलिखित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होती है-(1) तेज और जोरदार हृदय की धड़कन; (2) ऊँचा रक्तचाप जो रक्त को चर्म या शरीर के भीतरी अंग के रास्ते न धकेलकर मांसपेशियों और मस्तिष्क के रास्ते धकेलता है; (3) उदर और आँत की क्रियाओं का स्थगित होना; (4) फेफड़ों के वायुमार्गो का चौड़ा पड़ जाना; (5) लीवन से एकत्र चीनी का निकास; (6) मांसपेशियों में देर तक थकान का न आना; (7) बहुत अधिक पसीना आना; (8) आँख की पुतली का फैल जाना।

इन प्रभावों को उत्पन्न करने में स्वतःसंचालित स्नायुमंडल के सहानुभूतिक विभाग का हाथ रहता है। सहानुभूतिक मंडल द्वारा उपर्युक्त प्रभाव शीघ्रता से और थोड़े समय के लिए उत्पन्न होते है, जबकि रक्त में मिले हुए एड्रेनिन के कारण ये प्रभाव धीरे-धीरे एवं लंबे समय के लिए उत्पन्न होते है। इस प्रकार, एड्रिनल मेडुला सहानुभूतिक मंडल से जुड़ा हुआ है।

शरीर द्वारा सोडियम पोटाशियम और चीनी का उपयोग करने में कॉर्टिन से काम लिया जाता है और मांसपेशियों तथा यौन क्रियाओं पर इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह शरीर को उपयुक्त स्थिति में रखता है। यह जीवन के लिए आवश्यक भी है। साधारणतः, यक्ष्मा की बीमारी के कारण पुरूषों में एड्रिनल कॉर्टेक्स का पूर्ण विनाश हो जाता है, जिसे 'एडीसन' की बीमारी कहते हैं। इस बीमारी का नामकरण एडीसन नाम के अनुसंधानकर्ता के नाम पर हुआ है। इस घातक रोग के उत्पन्न होने पर निर्बलता और शिथिलता में तेजी से वृद्धि, यौन क्रियाओं में अरूचि, मेटाबॉलिक क्रियाओं का मंद पड़ना, किसी संक्रामक रोग के प्रतिरोधक शक्ति का कम हो जाना, चर्म का काला पड़ जाना, गर्मी का ठंडक के प्रति असहनशीलता, नींद की कमी, चिड़चिड़ाहट आदि लक्षण उत्पन्न होते है। रोगी को बाहर से कार्टिन देने पर ये लक्षण दूर हो जाते है।

एड्रिनल कॉर्टेक्स की अत्यधिक कार्यशीलता के कारण पुरूषों और स्त्रियों में पुरूषोचित्त लक्षणों की अधिकता पाई जाती है। स्त्रियों के अंगों की गोलाई नष्ट हो जाती है, आवाज भारी हो जाती है और दाढ़ी उगने लगती है।

3. यौन ग्रंथि-

पुरूषों की यौनग्रंथि को अंडकोष और स्त्रियों की यौनग्रंथि को डिंब कहते हैं। इन ग्रंथियों से क्रमशः शुक्रकीट और रजकीट नाम के क्रोमोजोम प्राप्त होते हैं जिनके संयोग से संतान की उत्पत्ति होती है। साथ ही, इन ग्रंथियों से कुछ हॉर्मोन्स का भी स्राव होता है, जिनका व्यक्ति के विकास और उसके व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यह हॉर्मोन्स काफी संख्या में होते हैं और इनमें कुछ पुरूष और स्त्री दोनों में उपस्थित रहते हैं। पुरूष के हॉर्मोन्स का संतुलन पुरूष में पुरूषत्व तथा स्त्री के हॉर्मोन्स का संतुलन स्त्री में स्त्रीत्व का विकास करता है। वयःसंधि के समय ये हॉर्मोन्स जननेद्रियों, यौन लक्षणों, जैसे स्त्रियों में दुग्ध ग्रंथि तथा पुरूषों में भारी आवाज और दाढ़ी का विकास करते हैं।

यौनग्रंथि द्वारा उत्पादित हॉर्मोन्स काफी हद तक स्त्रियों में संतानोत्पत्ति-संबंधी प्रक्रियाओं-जिसके अंतर्गत मासिक धर्म गर्भाधान, शिशु को दूध पिलाना आदि क्रियाएँ शामिल हैं-को नियंत्रित करती हैं। शिशु के पालन-पोषण की प्रेरणा में भी इन हॉर्मोन्स का महत्वपूर्ण हाथ रहता है।

कुछ व्यक्तियों में कामवासना अधिक होती है तो कुछ में कम। इस विभिन्नता का कारण यौनग्रंथि के हॉर्मोन्स को ही माना जाता है। पर, इस बात के यथेष्ट प्रमाण अभी नहीं मिले हैं। कुछ लोग रतिक्रिया में कम अभिरूचि रखते है; जिससे वे अपने मित्रों की आलोचना का विषय बने रहते है। इन आलोचनाओं की प्रतिक्रिया के रूप में ऐसे लोग कुछ विभिन्न प्रकार की यौन क्रियाओं में संलग्न हो जाते हैं। इस तरह, स्पष्ट है कि यौनग्रंथि का भी व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

4. पियूष ग्रंथि-

इसे ग्रंथिपति की संज्ञा दी जाती है; क्योंकि इस ग्रंथि के हॉर्मोन्स अन्य अंतःस्रावी ग्रंथियों पर नियंत्रण रखते है। यह मस्तिष्क की निचली सतह में स्थित एक छोटी-सी ग्रंथि है। इस ग्रंथि के दो भाग है-पीछे का भाग एवं आगे का भाग। पियूष ग्रंथि के पिछले भाग से उत्पादित होने वाले हॉर्मोन्स शारीरिक क्रियाओं, जैसे रक्तचाप और जल के

मेटाबोलिक कार्यो को नियमित करते हैं तथा आगे के भाग से उत्पादित हॉर्मोन्स अन्य अंतःस्रावी ग्रंथियों, जैसे गलग्रंथि, यौनग्रंथि, एड्रिनल ग्रंथि आदि को उत्तेजित करते हैं। पियूष ग्रंथि के निष्क्रिय रहने पर ये ग्रंथियाँ या तो विकसित नहीं हो पाती अथवा सामान्य रूप से कार्य नहीं कर पातीं।

पियूष ग्रंथि के अगले भाग का शारीरिक विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था में इस ग्रंथि की अतिकार्यशीलता के कारण हड्डियाँ एवं मांसपेशियाँ बड़ी तेजी से बढ़ती हैं और व्यक्ति की लंबाई असामान्य रूप से दैत्य की तरह 7 से 9 फुट तक हो जा सकती है। बाद में चलकर यह ग्रंथि शक्तिहीन हो जा सकती है जिससे कम उम्र में ही उसकी मृत्यु हो जा सकती है। यदि प्रौढ़ जीवन में यह ग्रंथि अधिक कार्यशील होती है तो व्यक्ति का कद लंबा होने के बजाए हाथ, पैर, नाक, जबड़े इत्यादि की लंबाई में वृद्धि होने की संभावना रहती है। इस स्थिति को मिडगेट्स कहते हैं। शरीर के विकास की अवधि में इस ग्रंथि के कम क्रियाशील रहने पर व्यक्ति बौने कद का हो जाता है जिन्हें 'क्रेटिन्स' कहते हैं। पियूष ग्रंथि के पिछले भाग का व्यक्तित्व के साथ क्या संबंध है इसके बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं है।

5. पीनियल ग्रंथि-

इसके हॉर्मोन का प्रभाव बाल्यकाल में अधिक देखा जाता है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि यह ग्रंथि अपने स्राव के द्वारा बच्चों में यौन भाव के विकास के न होने में सहायक है।

6. पैक्रियाज-

इसका बहाव या स्राव मांसपेशियों की चीनी की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। कभी-कभी देखा जाता है कि पैक्रियाज के अत्यधिक क्रियाशील होने के फलस्वरूप व्यक्ति और चिंतित रहने लगता है।

व्यक्ति के व्यवहार और किसी ग्रंथिविशेष का क्या संबंध है-यह बताना कठिन है। इसका कारण यह है कि व्यवहार और ग्रंथि दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते है। फिर भी उपर्युक्त वर्णन से इतना तो स्पष्ट है कि विभिन्न ग्रंथियों के अत्यधिक या कम कार्यशील होने का प्रभाव शारीरिक बनावट एवं कार्य पर पड़ता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार में भी कुछ विशिष्ट प्रकार के परिवर्तन होते हैं। परंतु, ग्रंथियाँ यदि सामान्य रूप से कार्य करती हों, तो व्यक्तित्व में अंतर का कारण निश्चित रूप से अन्यान्य जैविक एवं सामाजिक तत्व हो सकते हैं। शायद यही कारण है कि व्यक्तित्व और अंतःस्रावी ग्रंथियों के पारस्परिक संबंधों के बारे में इंगल (1935) ने यह निष्कर्ष निकाला है- ''निष्कर्ष रूप में हम इतना ही कह सकते हैं कि व्यक्तित्व के आधारभूत जैविक तत्वों में अंतःस्रावी ग्रंथियाँ भी है''

ग. स्नायुमण्डल-

व्यक्तित्व का सम्बन्ध व्यक्ति के समायोजन सम्बन्धी व्यवहारों से है तथा इन व्यवहारों पर व्यक्ति के शीलगुणों एवं वातावरणीय कारकों के बीच उत्पन्न संघर्षो का सार्थक प्रभाव पड़ता है। स्नायुमण्डल की इस समायोजित व्यवहार की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्नायुमण्डल के केन्द्रीय एवं स्वतःचालित-दोनों ही तंत्रों का व्यक्ति के समायोजन सम्बन्धी व्यवहारों के नियमन एवं नियंत्रण पर सार्थक प्रभाव देखा गया है।

2.5.2 व्यक्तित्व के सामाजिक/वातावरणीय निर्धारक-

व्यक्तित्व विकास पर जैविक कारकों के साथ-साथ वैसे कारकों का भी प्रभाव पड़ता है जिनका सम्बन्ध उसके वातावरण सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति आदि से होता है। इसे ही व्यक्तित्व का सामाजिक या सामाजिक-सांस्कृतिक या वातावरणीय निर्धारक कहते है। सामाजिक निर्धारकों को निम्नलिखित मुख्य वर्गो में बांटा जा सकता है -

(क) जीवन के प्रारंभिक वर्षो का प्रभाव-

मनुष्य एक अनुभवशील प्राणी है। वह जन्म से ही अनुभव प्राप्त करता है और इसी अनुभव पर उसके व्यक्तित्व का निर्माण निर्भर करता है। इस संबंध में फ्रायड ने जोरदार शब्दों में कहा है कि मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का बीजारोपण बचपन के प्रारंभिक 5 वर्षो में हो जाता है और उसी नींव पर संपूर्ण व्यक्तित्व-रूपी भवन खड़ा रहता है। चरित्रनिर्माण की व्याख्या करते हुए फ्रायड ने स्पष्ट किया है कि बाल्यावस्था में किसी बच्चे को दूध पिलाना शीघ्र बंद कर दिया जाता है तो किसी को देर से। इन घटनाओं के फलस्वरूप बालकों को कुछ अनुभव प्राप्त होते हैं जिनकी अभिव्यक्ति बाद में चलकर संरक्षित या असंरक्षित होने की भावना के रूप में होती है। इसी तरह, बालक जब विकास के गुदावस्था में पहुँचता है, तब उस समय भी उसे कुछ नई अनुभूतियाँ प्राप्त होती है जिनका प्रभाव भी उसके भावी, व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है। उक्त अवस्था में बालकों में मल-मूत्र को रोके रहने अथवा जल्दी-जल्दी निष्काषित करने की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसकी छाप उसके व्यक्तित्व पर पड़ती है। गुदा धारण की अवस्था में बालकों में मल-मूत्र को रोके रखने की प्रवृत्ति बहुत अधिक रहती है। कभी-कभी मल-मूत्र परित्याग-संबंधी प्रशिक्षण के अभाव में बालक इसी अवस्था में लंबे समय तक रहते हैं। इसी प्रकार बाल्यावस्था की शिक्षावस्था अथवा किशोरावस्था के अनुभवों की भी अमिट छाप वयस्क व्यक्तित्व पर पड़ती है।

(ख) परिवार का प्रभाव-

बालकों के व्यक्तित्व के विकास पर उसके परिवार तथा घरेलू वातावरण का प्रभाव अत्यंत व्यापक रूप से पड़ता है। घरेलू वातावरण में पालन-पोषण की प्रणाली, माता और पिता के आपसी संबंध, माता-पिता का बच्चों के साथ संबंध, परिवार के दूसरे बच्चों के साथ संबंध आदि तत्वों के प्रभाव प्रमुख हैं।

1. पालन-पोषण की प्रणाली-

प्रत्येक परिवार में बालकों के पालन-पोषण की रीति भिन्न-भिन्न ढंग की होती है। कुछ माँ-बाप बच्चों को अति सुरक्षा प्रदान करते हैं तो कुछ उनके प्रति लापरवाह रहते हैं। किसी बच्चे को स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र प्रशिक्षण का पर्याप्त अवसर मिलता है तो किसी को ऐसा अवसर बिल्कुल नहीं मिलता। इन विभिन्नताओं का प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व के विकास और निर्माण पर पड़ता है। ब्रॉडी (1956) ने 32 माताओं के बच्चा पोसने के ढंग का अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि जो माताएँ अपनी संतानों की आवश्यकताओं के प्रति बहुत अधिक सजग रहती हैं उनका बच्चों के प्रति व्यवहार निश्चित और स्थिर ढंग का होता है तथा वे बच्चों पर पूरा ध्यान रखती है। लेकिन, जो माताएँ बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति सजग नहीं रहतीं उनके व्यवहार अनिश्चित

ढंग के होते हैं। सीयर्स, मैक्रॉबी एवं लेविन (1957) ने भी 300 माताओं का अध्ययन कर उन्हें निम्न प्रकारों में बाँटा है-अनुमोदन-कठोरता, सामान्य पारिवारिक अभियोजनशील एवं शिशु के साथ उत्साही संबंध रखने वाली माताएँ। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि इन तीनों प्रकार की माताओं द्वारा पाले-पोसे गए शिशुओं के व्यक्तित्व में अंतर होता है।

इस संबंध में किए गए अन्यान्य अध्ययनों से भी यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के विकास में माता-पिता की मनोवृत्ति और पालन-पोषण के तरीकों का महत्वपूर्ण स्थान है।

2. माता और पिता के आपसी संबंध-

माता और पिता के पारस्परिक संबंधों का बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में सिरिल बर्ट का कहना है कि जिन बच्चों के माता-पिता के पारस्परिक संबंध अच्छे नहीं रहते, उनके बच्चों में संतुलित व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। ऐसे परिवारों में उचित अनुशासन का अभाव रहता है जिसके परिणामस्वरूप वे बाल-अपराधी हो जाते हैं। ऐसे घरों को सिरिल बर्ट ने बिगड़े या टूटे हुए घर की संज्ञा दी है। बॉलकाइण्ड एवं रटर (1973) ने बिगड़े या टूटे हुए घरों के संबंध में यह निष्कर्ष निकाला है कि विकासशील बालकों के लिए माता-पिता के पारस्परिक झगड़े, संघर्ष और उनके बीच की तनावपूर्ण स्थितियाँ घातक होती हैं, फलतः उन घरों में विकसित होने वाले बच्चे असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहने लगते हैं, तथा उनका व्यक्तित्व भी कुंठित हो जाता है। ऐसे घरों में बच्चों में बेईमानी की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं, बच्चे विश्वासघाती हो जाते हैं अथवा इस प्रकार के अन्यान्य अवांछित गुण विकसित होते है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसे बच्चे घरों में अपने माता-पिता का उपयुक्त स्नेह और प्यार नहीं प्राप्त कर पाते और वे शीघ्र ही समाज के अवांछित तत्वों के संपर्क में आ जाते हैं अथवा अपने माता-पिता के अनाभियोजित व्यवहारों को ग्रहण करते हैं।

3. माता-पिता का बच्चों के साथ संबंध-

माता-पिता के पारस्परिक संबंध के अतिरिक्त बच्चों के साथ उनके संबंध भी व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस संबंध में किए गए लगभग सभी अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि कठोर अनुशासन, दंड या अति-सुरक्षा अस्वीकार करने आदि के फलस्वरूप व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त हो जाता है। कभी माता-पिता बच्चे के जन्म का स्वागत करते हैं तो कभी बच्चे अनावश्यक समझे जाते हैं। अनावश्यक समझे जाने वाले बच्चे हीनता ही भावना से ग्रस्त रहने लगते हैं, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है।

माता-पिता हैं अथवा नहीं, इस दृष्टि से बच्चों को अग्रलिखित वर्गो में बाँटा जा सकता है-(क) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनों जीवित हैं, (ख) ऐसे बच्चे जिनके पिता हैं, माता नहीं, (ग) ऐसे बच्चे जिनकी माँ है; किंतु पिता नहीं, (घ) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनों नहीं है; (च) ऐसे बच्चे जिन्हें सौतेली माँ या सौतेला बाप अथवा नर्स पालती-पोसती है। इन सभी अवस्थाओं में बच्चों की मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न ढंग से उत्पन्न होती हैं जिनका महत्वपूर्ण प्रभाव उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार पर पड़ता है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि माता-पिता का बच्चों के साथ कैसा संबंध है, इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व निर्माण पर पड़ता है।

4. परिवार के बच्चों का एक-दूसरे से संबंध-

परिवार में बच्चों को अपने भाई-बहनों या दूसरे बच्चों के साथ भी अंतःक्रिया करनी पड़ती है। इस अंतःक्रिया का भी प्रभाव उनके व्यक्तित्व-विकास पर महत्वपूर्ण ढंग से पड़ता है। इस संबंध में एकलौता बच्चा, जन्मक्रम, बच्चों का यौन-वितरण, बच्चों का यौन संयोग, परिवार का आकार आदि परिवार-संरचना के महत्वपूर्ण तत्व है तथा इन संरचनात्मक तत्वों में भिन्नता का प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व-संबंधी गुणों के विकास पर अलग-अलग ढंग से पड़ता है। इन तत्वों द्वारा सामाजिक अभियोजन की प्रक्रिया निर्धारित होती है। एक घर में अगर एक से अधिक बच्चे होते है तो वह एक-दूसरे के विचारों, मनोवृत्तियों आदि से प्रभावित होते हैं तथा परस्पर अभियोजन का प्रयास करते हैं। इसी प्रयास का फल है कि व्यक्ति बड़ा होने पर पहले से सीखी हुई अभियोजन-विधि का उपयोग सामाजिक परिस्थितियों में अभियोजन करने हेतु करता है एकलौते बच्चों को ऐसा अवसर नहीं मिलता, फलतः उन्हें सामाजिक अभियोजन में कठिनाई होती है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों में जन्मक्रम का भी महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। इस संबंध में मैक्लीलैण्ड, विंटरबॉटम, सैम्पसन आदि ने विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जन्मक्रम में भिन्नता होने के फलस्वरूप एक ही परिवार के विभिन्न बच्चों के व्यक्तित्व-गुण भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। इस संदर्भ में एडलर का विचार है कि एकलौते बच्चों के आराम, अधिकार एवं माता-पिता के स्नेह का भागीदार दूसरा कोई नहीं होता, जिससे ऐसे बच्चों में एकाधिपत्य की भावना विकसित होती है और उनका व्यक्तित्व अधिकारप्रिय प्रकार का हो जाता है। मंझले बच्चों में स्पर्द्धायुक्त व्यक्तित्व और छोटे बच्चे में लाइम लाइट व्यक्तित्व पाया जाता है। इसका कारण यह है कि मंझले बच्चों की अपने से बड़े एवं छोटे दोनों छोरों पर के भाई तथा बहनों के साथ प्रतिस्पर्धा रहती है। सबसे छोटे बच्चों को परिवार का अंतिम बच्चा होने के कारण परिवार में सभी का भरपूर लाड़-प्यार मिलता है। इसी से ऐसे बच्चे अपने को सबसे प्रधान समझने लगते हैं। फलतः उनमें संरक्षित होने का भाव सर्वाधिक मात्रा में रहता है जिससे उनका व्यक्तित्व लाइम लाइट प्रकार का हो जाता है।

सहोदरों के यौन-संयोग एवं यौन-वितरण का भी अध्ययन किया गया है और देखा गया है कि यौन-संयोग एवं वितरण की भिन्नता का प्रभाव व्यक्तित्व के निर्माण में अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। इस संदर्भ में यौन-प्रतिस्पर्धा की भावना का प्रमुख हाथ रहता है।

(ग) पड़ोस का प्रभाव-

व्यक्तित्व-निर्माण में पड़ोस का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। बच्चे जब कुछ बड़े होते हैं तब वे पड़ोस के बच्चों के साथ मिलते-जुलते हैं, पड़ोसियों के घरों में आने-जाने लगते हैं तथा पड़ोस के बच्चों के साथ खेलते हैं

इस तरह, आस-पास के पड़ोसियों से वे सामाजिक रहन-सहन, तौर-तरीकों और अभियोजन-संबंधी गुणों को ग्रहण करते हैं। साथ ही, बच्चे अपने व्यवहार एवं मनोवृत्तियों से दूसरों को और दूसरों के व्यवहार एवं मनोवृत्तियों से स्वयं अपने को भी प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों के फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व में सामाजिक अभियोजन संबंधी गुणों का विकास होता है।

पड़ोस दो तरह के हो सकते हैं- (क) तुरंत-तुरंत बदलने वाला पड़ोस और (ख) स्थिर एवं निश्चित पड़ोस। प्रायः यह देखा गया है कि जिनका पड़ोस तुरंत-तुरंत बदलता रहता है, उनके व्यक्तित्व में हिल-मिलकर रहने तथा सहयोग की भावना का विकास अपेक्षाकृत कम होता है बनिस्पत वैसे बालक के, जिनका पड़ोस स्थायी और निश्चित होता है। उदाहरणार्थ-बंजारों या नोमैडिक ट्राइब्स के पड़ोस तुरंत बदलते रहते हैं; क्योंकि वे सदा गतिशील रहते हैं। फलतः, उनमें मिलकर रहने तथा पड़ोसियों के साथ सहयोग की भावना का विकास नहीं हो पाता।

(घ) स्कूल का प्रभाव-

लगभग 5 से 6 वर्ष की आयु में बच्चे स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रवेश लेते हैं और पूर्ण वयस्क होने के समय तक शैक्षणिक वातावरण द्वारा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास होता है। हालाँकि स्कूलों में प्रवेश लेने के पूर्व ही घरेलू वातावरण में बच्चों के व्यक्तित्व की रूप-रेखा तैयार हो जाती है और स्कूल में वे अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन भी उसी रूपरेखा के आलोक में करते हैं, फिर भी स्कूल का वातावरण बच्चों में नया अनुभव उत्पन्न करता है जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व-निर्माण पर महत्वपूर्ण रूप से पड़ता है। स्कूल में पहली बार बच्चों को संस्थानिक कायदे-कानून का अनुभव प्राप्त होता है, हम उम्र के विभिन्न विद्यार्थियों के साथ रहना पड़ता है, विद्यालय प्रशासन का अनुभव होता है तथा शिक्षकों की मनोवृत्तियों, वर्ग के सहपाठियों के विचारों, उनके रहन-सहन, मनोवृत्ति इत्यादि का एक नया अनुभव प्राप्त होता है तथा उसके अनुसार ही अभियोजन का नया ढंग सीखना होता है। इन सब बातों से उनका व्यक्तित्व सिंचित और पल्लवित होता है।

स्कूल में बालकों को तीन प्रकार के लोगों के साथ संबंध स्थापित करना पड़ता है- (क) शिक्षक जो उसके लिए पितातुल्य होते हैं, (ख) वर्ग के सहपाठियों के साथ और (ग) अपने से ऊँचे और नीचे के वर्गो के विद्यार्थियों के साथ।

कभी-कभी पिता और शिक्षक के विचार, विश्वास एवं व्यवहार में विरोधाभास होता है; जैसे-पिता आध्यात्मिक दृष्टिकोण का है तो शिक्षक का अध्यात्म में विश्वास नहीं है। इस तरह के विरोधाभास की स्थिति में बालक के व्यक्तित्व का विकास संतुलित रूप से नहीं हो पाता। ऐसा इसलिए होता है कि शिक्षक बालकों के लिए उनके पिता के समान होते हैं, अतः बालक अपने शिक्षक के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का अनुकरण करने लगते हैं। परंतु, जब उनके व्यवहार पिता के व्यवहार से भिन्न प्रतीत होते हैं तब बालक असमंजस में पड़ जाता है जिससे उसके व्यक्तित्व का संतुलित विकास अवरूद्ध हो जाता है।

शिक्षकों के व्यक्तित्व का बालकों के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन बोआयण्टेन तथा अन्य (1934) लोगों ने किया है तथा उन्होंने देखा कि जो शिक्षक 'बर्नरायटर-व्यक्तित्व आविष्कारिका' पर स्नायुमंडल-संबंधी रोगों के लक्षण प्रदर्शित करते थे, उनके विद्यार्थियों में भी इस रोग के लक्षण मौजूद थे।

स्कूल की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का भी प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। स्कूल की प्रशासनिक व्यवस्था स्कूल प्रशासक के व्यक्तित्व, उसकी मनोवृत्ति, विश्वास, कार्यशैली इत्यादि द्वारा निर्धारित होती है। अतः, विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर स्कूल के प्रशासक एवं प्रशासनिक व्यवस्था दोनों का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि मिशन द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ रहे विद्यार्थियों और राज्य सरकार द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ रहे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है। इस संबंध में लेमैन (1949) ने एक अध्ययन में पाया कि आस-पास के दो विद्यालयों में से एक के विद्यार्थियों ने उनके परीक्षण कार्यक्रम में काफी सहयोग दिया, जबकि दूसरे विद्यालय के विद्यार्थियों ने स्पष्ट असहयोग किया। जाँच करने पर पता चला कि पहले स्कूल के प्राचार्य का प्रशासन लोकतंत्री व्यवस्था पर आधृत था, जबकि दूसरे स्कूल के प्राचार्य सत्तवादी प्रशासक थे।

स्पष्ट है कि स्कूल के शिक्षकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के व्यक्तित्व, दृष्टिकोंण आदि का भी प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। उनके दृष्टिकोणों से ही विद्यार्थियों की संवेगात्मक स्थिति निर्धारित होती है। इसी प्रकार, स्कूल के साथियों, वर्ग के साथियों, अनुशासन आदि का भी प्रभाव बच्चों में पारस्परिक सहयोग की भावना, टीम की भावना एवं संवेगात्मक संतुलन के विकास पर पड़ता है।

(ड़) समुदाय का प्रभाव-

समुदाय के अंतर्गत समूह, गैंग, क्लब आदि सामाजिक परिस्थितियाँ आती हैं। इन सामाजिक परिस्थितियों का भी प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व-विकास पर कुछ कम नहीं पड़ता, खासकर सामाजिकता से संबद्ध गुणों के विकास पर इनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व पर समुदाय अथवा सामाजिक वातावरण के प्रभावों का संकेत हमें समुदाय की नियमावली और कार्यभाग अथवा भूमिका से प्राप्त होता है। व्यक्ति आचरण की एक नियमावली सीखता है। वह अपने समूह या समुदाय की नियमावली को अपना लेता है अथवा उस समूह में रहते हुए अपनी व्यक्तिगत नियमावली बना लेता है। इस तरह, समुदाय में या तो उसके लिए कोई कार्य रहता है अथवा वह अपने लिए कार्यभाग का चुनाव खुद कर लेता है।

सामुदायिक जीवन में ही वह अपने समाज के रीतिरिवाजों, परंपराओं, नैतिक आदर्शो इत्यादि को ग्रहण कर लेता है तथा उसी के अनुरूप आचरण करता है। इसी क्रम में परस्पर सहयोग, मिल-जुलकर रहने, प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्द्धा आदि व्यक्तित्व-गुणों को भी अर्जित करता है। साथ ही, समुदाय द्वारा दिए गए कार्यो अथवा समुदाय में अपने योग्य कार्यो का चुनाव कर वह अपने व्यवहारों से दूसरों को भी प्रभावित करता है। व्यक्ति द्वारा किए गए कार्यो के मूल्यांकन से उसे संतुष्टि, प्रतिष्ठा, सामाजिक स्तर आदि प्राप्त होते हैं, जिससे उसके व्यक्तित्व में निखार आता है।

इस प्रकार, व्यक्ति के व्यक्तित्व पर सामाजिक समूह का पर्याप्त असर होता है।

(च) सांस्कृतिक निर्धारक-

व्यक्तित्व के निर्धारण में संस्कृति का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। संस्कृति के अंतर्गत रहन-सहन, वेश-भूषा, विचार, व्यवहारशैली, आदि शामिल हैं जिनका व्यक्तित्व पर दो तरह से प्रभाव पड़ता है-

1. विशिष्ट प्रकार की संस्कृति में जन्म लेने के कारण व्यक्ति उसी संस्कृति को अपना लेता है। अतः, व्यक्ति को सांस्कृतिक वातावरण से पृथक नहीं किया जा सकता।
2. संस्कृति की कुछ ऐसी भी बातें होती हैं जिन्हें व्यक्ति अपनाना नहीं चाहता, परंतु संस्कृति में अपनी पहचान बनाए रखने की इच्छा से अथवा सामाजिक दबाव के कारण वह उसे अपना लेता है।

उपर्युक्त दोनों तरह के प्रभावों के फलस्वरूप ही व्यक्ति पर उसकी संस्कृति की छाप रहती है और व्यक्तित्व का संगठन तथा निर्माण उस संस्कृति की विशेषताओं के अनुरूप होता है। लिंटन (1936) एवं कार्डिनर (1945) ने कुछ प्रजातियों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोगों के व्यक्तित्व में अंतर होता है।

मीड (1901, 1952, 1972) ने न्यूगिनी और उसके आसपास रहने वाली तीन संस्कृतियों का अध्ययन किया और बताया कि तीनों संस्कृतियों की मूल व्यक्तित्व-रचना एक दूसरे से भिन्न है। अरापेश संस्कृति जनाना स्वरूप की हैं अतः, इस संस्कृति के रहने वाले लोगों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने तथा अगुआ बनने की भावना का अभाव रहता है। इस संस्कृति के स्त्री-पुरूष अत्यधिक सहयोगपूर्ण, दयालु, विश्वासी, सुशील और नेक होते हैं। इसके विपरीत, मुंडुगुमोर संस्कृति मर्दाना स्वरूप की है। इस संस्कृति के लोग अक्खड़, उग्र, ईर्ष्यालु, अविश्वासी, आक्रमणशील और व्यक्तिवादी होते हैं। इन दोनों से भिन्न शांबुली की संस्कृति है, जहाँ स्त्रियाँ घरों के बाहर जीविकोपार्जन के धंधों में लगती हैं तथा पुरूष बच्चों की देख-रेख, लालन-पालन करते हैं। वे अपने को सुंदर और आकर्षक बनाने के लिए श्रृंगार करते हैं, कलाप्रेमी होते हैं तथा आपस में मिलकर गप्पें मारते हैं। स्त्रियाँ पुरूषों की सजावट देखकर प्रसन्न और मुग्ध होती हैं तथा उनसे विवाह की याचना करती हैं। इन्हीं तथ्यों के आधार पर कुईनर (1951)ने लिखा है कि यदि समाज में स्त्रियों और पुरूषों के लिए अलग-अलग नियम निर्धारित न हों, तो उनकी भूमिकाओं में भी कोई अंतर नहीं होगा।

रूथ बंनेडिक्ट ने भी जुनी इंडियन संस्कृति के लोगों में स्पर्द्धा नामक गुण का अभाव पाया, जिसका कारण उन्होंने उनकी संस्कृति की विशेषता बताया है।

उपर्युक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में पलने वाले व्यक्तियों में अंतर पाया जाता है।

व्यक्तित्व के निर्धारकों के संबंध में निष्कर्ष-

व्यक्तित्व के जिन निर्धारकों का वर्णन ऊपर किया गया है, उनसे स्पष्ट होता है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास को समझने के लिए हमें उसके वंशानुक्रम और वातावरण की पारस्परिक अंतःक्रियाओं का अध्ययन करना आवश्यक होगा। किसी व्यक्ति में वंशपरंपरा (पीढ़ी-दर-पीढ़ी) द्वारा जैविक रूप से संचारित गुणों की

संपूर्णता को वंशानुक्रम की संज्ञा दी जाती है, जिसका प्रभाव शारीरिक रचना पर पड़ता है वातावरण का तात्पर्य उन अवस्थाओं की संपूर्णता से है, जो व्यक्ति को व्यवहार करने हेतु उत्तेजित या उद्यत करता है अथवा जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति का व्यवहार परिमार्जित या संशोधित होता है। व्यक्ति के जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विकास में उपर्युक्त तत्वों के कार्यो को निम्नलिखित सूत्र द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है-

वंशानुक्रम×वातावरण×समय = विकासात्मक स्तर

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम या जैविक तत्व तथा वातावरण के तत्व दोनों का प्रभाव साथ-साथ पड़ता है। अतः, संक्षेप में कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी वंशपरंपरा, जैविक एवं वातावरण के विभिन्न तत्वों की संयुक्त उपज है। इनमें किसी एक के महत्व को अधिक या कम बताना उचित नहीं है।

व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में जैविक एवं सामाजिक तत्वों का सापेक्षिक महत्व-

व्यक्तित्व के जैविक एवं सामाजिक तत्वों या निर्धारकों के वर्णन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के निर्माण और विकास की प्रक्रिया इन दोनों कारकों से निर्धारित होती है। अब प्रश्न यह है कि इनमें किसका महत्व कम या अधिक है, अर्थात कौन तत्व किस अनुपात में व्यक्तित्व को प्रभावित करता है? यह विषय अभी तक विवादास्पद है। कुछ लोग वंशानुक्रम या जैविक संरचना की दुहाई देते हैं तो कुछ लोग सामाजिक वातावरण की। इस विवाद का संतोषप्रद हल दुष्कर है। वंशानुक्रम या जैविक संरचना में विकसित होने की विशिष्ट प्रवृत्ति या संभावना रहती है, लेकिन इस प्रवृत्ति या संभावना के पोषण और विकास में वातावरण से प्राप्त उत्तेजना एवं अवसर का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। उदाहरणार्थ, वंशानुक्रम से किसी की शारीरिक रचना सुदृढ़ और मांसपेशियाँ गठी हुई होती है किंतु, यदि उपयुक्त आहार और व्यायाम का अवसर न मिले तो शारीरिक रचना का सुदृढ़ होना और मांसपेशियों का गठा होना संभव नहीं होगा। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास एवं निर्माण में उपर्युक्त दोनों तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है-किसी एक का कम या अधिक नहीं।

व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया को निर्धारित करने वाले जैविक एवं सामाजिक अथवा वातावरण से संबद्ध तत्वों का सापेक्षिक महत्व बताने हेतु विचारणीय यह नहीं है कि इनमें से किसका महत्व कम या अधिक है, बल्कि विचारणीय प्रश्न यह है कि इन दोनों प्रकार के तत्व किस प्रकार अंतःक्रिया करते हैं। उदाहरण के लिए, वंशानुक्रम से खास तरह का शारीरिक गठन, रंग या आकृतिक विशेषताएँ निर्धारित होती हैं किंतु, प्रत्येक समाज में खास तरह का शारीरिक गठन प्रशंसनीय और दूसरी तरह का गठन निंदनीय माना जाता है तथा उसी के अनुरूप व्यक्ति अपने समाज के साथ प्रतिक्रिया भी करता है। इस प्रकार, व्यक्ति के वंशगत गुणों और वातावरण दोनों की पारस्परिक अंतःक्रियाओं के अनुसार ही व्यक्ति के व्यवहार का एक प्रतिरूप बनता है, जिससे व्यक्तित्व की विशेषताएँ प्रकट होती हैं। अतः, व्यक्तित्व को जैविक या सामाजिक तत्वों का योग नहीं कहा जाता, बल्कि इन दोनों प्रकार के तत्वों की पारस्परिक क्रिया की उपज माना जाता है। इसे और अच्छी तरह स्पष्ट करने हेतु व्यक्ति को हम एक आयत मान लें। अब यदि आयत के आधार को वंशानुक्रम और लंब को वातावरण मानें तो व्यक्तित्व

इस आयत (व्यक्ति) का क्षेत्रफल होगी, अर्थात, व्यक्तित्व = आधार × लंब। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व वंशानुक्रम और वातावरण का गुणनफल होता है। स्पष्ट है कि जिस प्रकार किसी आयत के क्षेत्रफल के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि इसका क्षेत्रफल आधार पर निर्भर करता है या लंब पर, उसी प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में यह भी कहना असंभव है कि वह वंशानुक्रम अथवा वातावरण में से किसी एक पर अधिक निर्भर है। यदि आधार या लंब दोनों में से कोई एक न रहे तो क्षेत्रफल होगा किसका? इसलिए, दोनों नितांत आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. इनमें से किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व की सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा दी हैं?

क. शेल्डन ख. कैटेल

ग. क्रेश्मर घ. ऑलपोर्ट

2. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की वह विधि जिसमें व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का विभिन्न समय अन्तरालों पर क्रमबद्ध निरीक्षण कर उनका रेकार्ड तैयार किया जाता है, कहते हैं-

क. अनुप्रस्थ काट विधि ख. आनुवंशिकता

ग. स्नायुमंडल घ. अन्तःस्रावी ग्रन्थियां

2.6 सार संक्षेप-

1. व्यक्तित्व व्यक्ति के बाहरी गुणों तथा भीतरी गुणों का एक समन्वय है। यह अपेक्षाकृत टिकाऊ प्रकृति का होता है तथा वातावरण में व्यक्ति के अपूर्व समायोजन का निर्धारक भी।
2. व्यक्तित्व में चार प्रकार की संगतता पाई जाती है- प्रकार 'अ' संगतता, प्रकार 'ब' संगतता, प्रकार 'स' संगतता तथा प्रकार 'द' संगतता।
3. व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य व्यक्तित्व पैटर्न के विकास से है। इसके मुख्य दो तत्व होते हैं- आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण
4. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की निम्नलिखित विधियां हैं- प्रयोगात्मक विधि, सहसम्बन्धात्मक विधि, केस-अध्ययन विधि, अनुदैर्ध्य विधि तथा अनुप्रस्थ काट विधि।
5. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं में सम्पन्न होती है तथा प्रत्येक अवस्था की अपने कुछ खास तो कुछ सामान्य विशेषता होती है।
6. व्यक्तित्व विकास की निम्नलिखित अवस्थाएं हैं- पूर्व प्रसूत अवस्था, शौशवावस्था, बचपनावस्था, बाल्यावस्था, पूर्व किशोरावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था।
7. व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को मूलतः दो भागों में बाँटा गया है- जैविक एवं सामाजिक या वातावरण। इन्हें व्यक्तित्व का निर्धारक भी कहते हैं।
8. जैविक कारक के अन्तर्गत आने वाले कारक हैं- आनुवंशिकता, शारीरिक गठन व धातु स्वभाग, अन्तःस्रावी ग्रंथिया, स्नायुमण्डल आदि।

9. सामाजिक कारक के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन के प्रारंभिक वर्षो का वातावरण, पारिवारिक वातारण, स्कूल, पड़ोस, खेल के साथी, समुदाय, संस्कृति आदि आते हैं।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली-

आत्म-संप्रत्यय: व्यक्ति के स्वयं से सम्बद्ध एक ऐसा तथ्य जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा क्या है? यह एक दर्पण-बिम्ब होता है जो व्यक्ति द्वारा सम्पन्न भूमिकाओं, दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है।

हार्मोन्स: शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाला स्राव जो शरीर या उसके किसी अंग की क्रियाओं को बढ़ाने या घटाने की शक्ति रखता है।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ 2. ख 3. क

2.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality

2.10 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न-

1. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विभिन्न विधियों का वर्णन करें।
2. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया किन-किन अवस्थाओं में सम्पन्न होती हैं? व्याख्या करें।
3. व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों की विवेचना करें।
4. व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक-आर्थिक कारकों पर प्रकाश डालें।

इकाई 3:व्यक्तित्व का मूल्यांकन; व्यक्तित्व परीक्षण और इसके महत्वपूर्ण मुद्दे

(Assessment of Personality; PersonalityTest and Its Key Issues)

इकाई संरचना-

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 व्यक्तित्व मापन का अर्थ
3.4 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी दृष्टिकोण
3.4.1 समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण
3.4.2 शीलगुण दृष्टिकोण
3.4.3 प्रक्षेपी जाँच दृष्टिकोण
3.5 व्यक्तित्व परीक्षण की प्रमुख विधियां
3.6 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय
3.7 सार-संक्षेप
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ-ग्रन्थ
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना-

पिछली इकाई में आपने व्यक्तित्व विकास के सम्प्रत्यय एवं उसे प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया। आपने देखा कि किस प्रकार व्यक्ति से सम्बद्ध जैविक एवं वातावरणीय कारक उसके व्यक्तित्व को संरचित करने एवं गति प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आइए, अब इस इकाई में हम यह जानने का प्रयास करें कि इन जैविक एवं सामाजिक कारकों की अन्तःक्रिया से जिस व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास होता है उसे मापते कैसे हैं? व्यक्तित्व मापन की उपयोगिता इस बात को लेकर है कि इससे जहाँ एक ओर व्यक्तित्व के स्वरूप और उसके विकास से सम्बन्धित नये-नये ज्ञान प्राप्त होते हैं, वही दूसरी ओर व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने एवं उसे सही मार्ग दर्शन देने में मद्द मिलती है। आज व्यापारिक प्रतिष्ठानों में सफल सेल्समैन की नियुक्ति हो, औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कुशल कर्मचारी व अधिकारी का चयन हो, सेना में अफसरों की नियुक्ति हो, अथवा सरकारी/गैरसरकारी इकाइयों में विभिन्न पदों पर योग्य कर्मचारियों/अधिकारियों के चयन का मामला हो-व्यक्तित्व के विभिन्न परीक्षणों का

इस्तेमाल कर इस समस्या का समाधान पूरी दुनिया में बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इतना ही नहीं, आज व्यक्तित्व की माप कर शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श देने का कार्य भी जोरों पर है। इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व का मापन एवं मूल्याकन अत्यावश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में आप व्यक्तित्व मापन से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों, मापन पद्धतियों एवं मापन के क्षेत्र में व्याप्त मूल विवाद विषयों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. आप व्यक्तित्व मापन की आवश्यकता एवं सार्थकता पर प्रकाश डाल सकें।
2. व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना कर सकें।
3. विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व परीक्षणों की व्याख्या कर सकें तथा
4. व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय पर अपना सुझाव दे सकें।

3.3 व्यक्तित्व मापन का अर्थ-

व्यक्तित्व मापन का अर्थ व्यक्तित्व के शीलगुणों का पता लगाकर यह निर्धारित करना होता है कि किस सीमा तक ये शीलगुण संगठित अथवा असंगठित या विसंगठित हैं। किसी भी व्यक्ति के विभिन्न शीलगुण जब आपस में संगठित होते हैं तो इससे व्यक्ति का व्यवहार सामान्यता की ओर अग्रसर होता है तथा ठीक विपरीत, व्यक्तित्व के शीलगुणों के विसंगठित होने पर व्यक्ति का व्यवहार असामान्य होने लगता है।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्तित्व मापन से व्यक्तित्व के विकास तथा उसके स्वरूप से सम्बन्धित बहुत से ज्ञान प्राप्त होते हैं, साथ-ही इस क्षेत्र में शोध करने तथा नये-नये सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने में मद्द मिलती है। यह व्यक्तित्व मापन का सैद्धान्तिक पहलू है।

मनोवैज्ञानिक मापन का व्यावहारिक पहलू असंगठित शीलगुणों से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की असामान्यताओं को दूर करने में व्यक्ति की सहायता करना है। व्यक्तित्व मापन से यह पता चलता है कि व्यक्तित्व के किस-किस शीलगुण की शक्ति कितनी है और किस शीलगुण की कमी से व्यक्ति को समायोजन करने में दिक्कत होती है। अतः व्यक्तित्व मापन करके वैसे व्यक्तियों को मद्द दी जाती है जिन्हें समायोजन में व्यक्तिगत कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व चयन एवं उत्तरदायी पदों पर सही व्यक्ति की नियुक्ति भी व्यक्तित्व मापन का व्यावहारिक उद्देश्य है।

व्यक्तित्व मापन मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए भी उपयोगी है। मनोवैज्ञानिक अपने शोधों द्वारा यह जानने की रूचि रखते हैं कि क्या उम्र के साथ-साथ व्यक्तित्व में परिवर्तन होता हैं, क्या बालकों में कुछ ऐसे व्यक्तित्व विशेषक या शीलगुण होते हैं जिनके कारण वे एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं, क्या अभिन्न समयज (जुड़वों) के व्यक्तित्व में स्पष्ट अन्तर पाया जाता है, व्यक्तित्व शीलगुण और सामाजिक-आर्थिक स्तर में क्या सम्बन्ध होता है; माता-पिता के बीच के तनावपूर्ण सम्बन्घ का बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर कैसा प्रभाव पड़ता है-आदि-आदि।

इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने हेतु मनोवैज्ञानिकों के लिए व्यक्तित्व की माप या परीक्षण आवश्यक है।

3.4 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी दृष्टिकोण-

व्यक्तित्व की माप हेतु मनोवैज्ञानिकों ने अनेक मापक बनाये है; जो उनके विभिन्न दृष्टिकोणों के अनुरूप हैं। अतः व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों का वर्णन करने से पहले उन दृष्टिकोणों का वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है जिनके आधार पर व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियां विकसित हुई हैं।

सामान्यतः व्यक्तित्व मापन के विभिन्न दृष्टिकोणों को निम्नलिखित तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है- (1) समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण, (2) शीलगुण दृष्टिकोण तथा (3) प्रक्षेपी जाँच का दृष्टिकोण।

3.4.1 समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण-

इस दृष्टिकोण से संपूर्ण व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है। अर्थात, इस दृष्टिकोण से जो मनोवैज्ञानिक किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की परख करने में अभिरूचि रखते हैं, वे व्यक्तित्व के किसी खास पक्ष पर जोर न देकर व्यक्ति का समग्र रूप से मूल्यांकन करने पर जोर देते हैं। इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व-मूल्यांकन का सर्वप्रथम प्रयास जर्मन सैनिक मनोवैज्ञानिकों ने किया और तब ब्रिटिश सेना के मनोवैज्ञानिकों ने इसे बाद में चलकर उसी देश की एक सैनिक संस्था ऑफिस ऑफ द स्ट्रेटेजिक सर्विसेज ने पिछले विश्वयुद्ध के जमाने में दुश्मनों की सैन्य-शक्ति को दुर्बल करने और अपनी सेना के नैतिक बल को बढ़ाने, दुश्मनों को परास्त करने के लिए महत्वपूर्ण रचनाएँ एकत्र करने आदि कार्यो के लिए सफल व्यक्तियों को चुनकर सेना में भर्ती करने के हेतु किया था।

3.4.2 शीलगुण दृष्टिकोण-

कुछ मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार व्यक्तित्व शीलगुणों का समूह या संगठन है अतः, उनके अनुसार विभिन्न शीलगुणों को अलग-अलग मापकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पता लगाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण को मानने वालों में कैटेल, ऑलपोर्ट, लेविन, आइजेंक आदि के नाम प्रमुख है।

3.4.3 प्रक्षेपी जाँच का दृष्टिकोण-

कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि शीलगुण-दृष्टिकोण व्यक्तित्व का सतही दृष्टिकोण है, अतः केवल शीलगुणों को मापकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहराई का पता नहीं लगाया जा सकता। व्यक्तित्व की गहराई में व्यक्ति की मनोवृत्ति, प्रेरणा, रूचियाँ आदि रहती हैं तथा इनके संगठन से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व के इन पक्षों का पता किसी प्रत्यक्ष विधि द्वारा लगाना मुश्किल होता है। अतः, आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति को एक ऐसी जाँच परिस्थिति में रखा जाए, जिसमें वह अपनी मनोवृत्ति, प्रेरणा, रूचि आदि को व्यक्त कर सके। (प्रक्षेपण प्रविधियों) इसके लिए प्रक्षेपण प्रविधियों का विकास किया गया, जिन्हें व्यक्तित्व की प्रक्षेपी माप कहते हैं। मानसिक रोगियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करने हेतु इन प्रविधियों का उपयोग सर्वाधिक लाभप्रद होता है, क्योंकि मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति इन परिस्थितियों में आसानी से अपने अंतःमन की बातों को प्रकट कर सकते हैं। इन प्रविधियों का उपयोग मनोविश्लेषकों के लिए भी लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

3.5 व्यक्तित्व परीक्षण की प्रमुख विधियां-

व्यक्तित्व मापन के विभिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित व्यक्तित्व परीक्षण की अनेकों विधियां विकसित की गई हैं जिन्हें हम मूलतः तीन प्रमुख वर्गो में बाँट सकते हैं-

(क) व्यवहार-अध्ययन की विधियाँ

(ख) नैदानिक विधियाँ

(ग) मनोमितिक विधियाँ

3.5.1 व्यवहार-अध्ययन की विधियाँ-

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार निर्माण की प्रक्रिया में आदत-प्रतिरूपों का योगदान रहता है। ये आदत-प्रतिरूप अपूर्व ढंग से सामान्यीकृत हो जाते हैं और इन्हीं सामान्यीकृत आदत-प्रतिरूपों के संगठन से व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

आदत-प्रतिरूप व्यक्ति के व्यवहार में प्रकट होते हैं। अतः, इस दृष्टिकोण के अनुसार, व्यक्तित्व उत्तेजना-प्रतिक्रिया-व्यापार है। उत्तेजना-प्रतिक्रिया की प्रत्येक इकाई एक आदत बनती है। इस तरह की अनेक आदतें एक साथ संगठित होकर आदत-तंत्र की रचना करती हैं। इन्हीं आदत तंत्रों के योग को व्यक्तित्व कहते है। अर्थात, व्यक्तित्व उत्तेजना प्रतिक्रिया की इकाइयों अथवा आदत एवं आदत-तंत्र का योग होता है। इन आदत या आदत-तंत्रों की अभिव्यक्ति मनुष्य के व्यवहार में परिलक्षित होती है। अतःकिसी व्यक्ति के व्यवहार का बाह्य निरीक्षण या अवलोकन कर उसके व्यक्तित्व के बारे में आसानी से जाना जा सकता है। अतःव्यक्तित्व की परख के लिए व्यवहार-अध्ययन की विधियों के विकास में व्यवहारवादियों का ही योगदान रहा है।

व्यवहार-अध्ययन में व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसके व्यवहार का अवलोकन किया जाता है। परिस्थितियाँ दो तरह की हो सकती हैं- (1) स्वाभाविक परिस्थिति एवं (2) जाँच-परिस्थितियाँ।

स्वाभाविक परिस्थिति में जब किसी के व्यवहार का निरीक्षण या अवलोकन किया जाता है, तब उसे स्वाभाविक या वास्तविक परिस्थिति में किया गया निरीक्षण कहते हैं।

जाँच-परिस्थिति में परिस्थिति अस्वाभाविक रहती है। यह परिस्थिति जाँचक द्वारा बनाई या निर्मित की जाती है। वह जान-बूझकर एक ऐसी परिस्थिति उपस्थित करता है जिससे व्यक्ति (प्रयोज्य) खास तरह का आचरण (व्यवहार या प्रतिक्रिया) करे। इसीलिए, इसे अस्वाभाविक निरीक्षण कहते हैं।

3.5.1.1 स्वाभाविक परिस्थिति में अध्ययन-

स्वाभाविक परिस्थिति में व्यक्ति का व्यवहार भी स्वाभाविक होता है। लेकिन, इस तरह की परिस्थिति में कुछ कठिनाइयाँ भी हैं; जैसे-स्वाभाविक परिस्थिति पर पूर्ण नियंत्रण का अभाव। नियंत्रण के अभाव में व्यक्ति के व्यवहार के संबंध में प्राप्त सूचनाएँ अविश्वसनीय हो सकती हैं, अतः इस आधार पर प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक दृष्टिकोण से त्रुटिपूर्ण होगा। एक अन्य कठिनाई यह है कि स्वाभाविक परिस्थिति में किसी व्यक्ति के व्यवहार का

निरीक्षण कर प्राप्त निष्कर्ष की सत्यता को हम पुनः समान परिस्थिति में दुबारा जाँच करके सत्यापित करना चाहें तो पुनः पहले वाली स्वाभाविक परिस्थिति के उत्पन्न होने के लिए लंबे समय तक हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और साथ-ही-साथ यह भी संभव है कि दूसरी बार में व्यक्ति के व्यवहार में कुछ भिन्नता या परिवर्तन आ जाए। अतः, स्वाभाविक परिस्थितियाँ किसी निष्कर्ष की सत्यता की जाँच करने में सहायक नहीं होती।

स्वाभाविक परिस्थिति में निरीक्षण करने में एक और कठिनाई यह है कि व्यक्ति को जब यह पता चल जाएगा कि कोई अन्य व्यक्ति उसके द्वारा प्रदर्शित व्यवहारों का अवलोकन या निरीक्षण कर रहा है, तब वह अपने स्वाभाविक व्यवहार को छिपा लेने अथवा उस पर पर्दा डालने की कोशिश कर सकता है। फलस्वरूप, सही एवं स्वाभाविक व्यवहार का निरीक्षण करना मुश्किल हो जाएगा।

3.5.1.2 जाँच परिस्थिति में अध्ययन-

जाँच-परिस्थितियाँ अध्ययकर्ता द्वारा निर्मित परिस्थितियाँ होती हैं और उन निर्मित परिस्थितियों में व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित व्यवहारों का निरीक्षण किया जाता है। इस तरह के निरीक्षण में स्वाभाविक परिस्थिति की कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। निरीक्षणकर्ता को जब किसी के व्यवहार का निरीक्षण करना होता है तब वह विशिष्ट प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न करता है तथा उक्त परिस्थिति में व्यक्ति द्वारा प्रकट किए गए व्यवहारों का वस्तुगत ढंग से निरीक्षण कर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है। इस तरह की परिस्थितियों में व्यक्ति को यह जानकारी नहीं दी जाती कि कोई उसका निरीक्षण कर रहा है, फलतः वह सामान्य रूप से उस तरह की परिस्थिति में जैसा व्यवहार करता है, उसी तरह के व्यवहार को प्रदर्शित करने की संभावना जाँच परिस्थिति में भी रहती है। उदाहरणार्थ, मान लें कोई शिक्षक अपने वर्ग के विद्यार्थियों की ईमानदारी के गुण की जाँच करना चाहता है। इसके लिए शिक्षक वर्ग के छात्रों को कोई कार्य करने हेतु यह निर्देश देता है कि छात्र स्वयं ईमानदारी के साथ बिना किसी प्रकार की नकल किए हुए इस कार्य को पूरा करें। इसके बाद शिक्षक वर्ग से बाहर चला जाता है, अर्थात छात्रों पर कोइ्र निगरानी नहीं रखता और निर्धारित समय के बाद वह छात्रों के कार्य-उत्पादन का विवरण एकत्र कर लेता है। कुछ समय बाद समान परिस्थिति में समान तरह के कार्य देकर छात्रों को पुनः ईमानदारी के साथ उस कार्य को करने का निर्देश देता है। पर, इस बार शिक्षक स्वयं वर्ग में उपस्थित रहकर छात्रों पर कड़ी निगरानी रखता है। इन दोनों परिस्थितियों में छात्रों द्वारा संपादित कार्य का मूल्यांकन करने पर यदि कोई छात्र पहले वाली अवस्था (बिना निगरानी की अवस्था) की अपेक्षा दूसरी अवस्था (निगरानी की अवस्था) में अच्छा अंक नहीं प्राप्त कर पाएगा तो इससे यह स्पष्ट होगा कि उस छात्र ने पहली अवस्था में नकल की थी। इस तरह से प्राप्त तथ्य को विश्वसनीय बनाने हेतु अध्ययनकर्ता विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार के कार्यों का उपयोग करेगा। विभिन्न अवसरों पर छात्र की नकल करने की बारंबारता के आधार पर ईमानदारी के गुण का विश्वसनीय परीक्षण किया जा सकता है।

नेतृत्व की योग्यता की परख के लिए इस तरह की विधि का उपयोग अधिक प्रचलन में है। नेतृत्वविहिन समूह-बहस की परिस्थितियों में बहस का कोई विषय रखा जाता है और उस समूह में भाग लेने वाले प्रयोज्यों का

निरीक्षण किया जाता है। इस समूह में सभी प्रयोज्य एक-दूसरे के लिए अपरिचित रहते हैं, अतः किसी का किसी के प्रति पहले से कोई संबंध नहीं रहता तथा परिस्थिति को यथासंभव अनिर्मित रखा जाता है। बहस का विषय अच्छी तरह परिभाषित भी नहीं रहता। इसे परिभाषित करने का कार्य समूह पर ही छोड़ दिया जाता है; साथ ही बहस के लिए कोई औपचारिक नियम, कायदे-कानून इत्यादि नहीं रहते। निरीक्षक मौजूद रहता है, किंतु वह निष्क्रिय रहता है। प्रायः इन परिस्थितियों में एक से अधिक निरीक्षण रहते हैं तथा वे बहस में भाग लेने वाले प्रयोज्यों के सफल नेतृत्व की मात्रा के अनुसार उन्हें विभिन्न श्रेणियों में श्रेणीगत करते हैं। इस तरह की प्रविधि का उपयोग बास (1954) ने सफलतापूर्वक किया है। इस प्रविधि का उपयोग 1946 ई0 में ऑफिस ऑफ स्ट्रेटेजिक सर्विस द्वारा भी किया गया है।

3.5.2 नैदानिक विधियाँ-

नैदानिक विधियों का विकास नैदानिक क्षेत्रों के मनोवैज्ञानिकों के प्रयासों की देन है। इनमें से कुछ प्रचलित प्रविधियों का वर्णन आगे किया जा रहा है-

3.5.2.1 साक्षात्कार-विधि-

यह विधि मनचिकित्सकों एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की एक प्रमुख प्रविधि है। इन क्षेत्रों में व्यक्तित्व-संबंधी विकृतियों के अध्ययन एवं उन्हें दूर करने के प्रयासों के सिलसिले में इसका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है।

साक्षात्कार आमने-सामने परस्पर वार्तालाप या समालाप करने की विधि है। इस विधि में जिसके व्यक्तित्व की जाँच करनी होती है उसे साक्षात्कार का उम्मीदवार और जो व्यक्तित्व की जाँच करता है उसे साक्षात्कारकर्ता कहते हैं। ये दोनों एक दूसरे के आमने-सामने साधारण वार्तालाप करते है तथा इसी वार्तालाप द्वारा व्यक्ति की व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है।

साक्षात्कार निर्मित और अनिर्मित दो तरह का होता है। निर्मित यानी 'रचित साक्षात्कार' की विधि में व्यक्तित्व के जिस पक्ष या विशेषता को मापना होता है, उससे संबद्ध निश्चित प्रश्न पहले से ही निर्धारित कर लिए जाते हैं तथा उन प्रश्नों के उत्तरों के विकल्प भी पूर्वनिर्धारित रहते हैं। साक्षात्कारकर्ता उम्मीदवार से क्रमशः उन प्रश्नों को पूछता जाता है जिसे वह पूर्वनिर्धारित वैकल्पिक उत्तरों में से किसी एक को जो उसकी विशेषता के अनुरूप होता है, चुनकर बताता है। साक्षात्कार की इस परिस्थिति में साक्षात्कारकर्ता और उम्मीदवार दोनों के कार्य अत्यंत सरल होते हैं। साक्षात्कारकर्ता केवल पूर्वनिर्धारित प्रश्नों को पूछता जाता है तथा उम्मीदवार उनके पूर्व निर्धारित वैकल्पिक उत्तरों में से किसी एक को चुनकर बताता है जिसे समालापक नोट कर लेता है।

अनिर्मित अथवा अरचित साक्षात्कार में उम्मीदवार की भूमिका ही प्रधान रहती है। वह अपनी बातों (भावनाओं, विचारों आदि) को स्वयं प्रकट करता है। साक्षात्कार की प्रक्रिया का प्रारंभ, गतिविधि का संचालन एवं साक्षात्कार का अंत आदि सब उसकी इच्छा एवं योग्यता पर निर्भर है। पूछे जाने वाले प्रश्न और उनके उत्तर भी पूर्वनिर्धारित नहीं होते। साक्षात्कारकर्ता एक निष्क्रिय व्यक्ति की तरह केवल अवलोकन एवं नोट करने का कार्य करता है। इससे उम्मीदवार को इस बात की पूरी छूट रहती है कि वह किसी बात को जिस ढंग से चाहे व्यक्त कर

सकता है। साक्षात्कारकर्ता बीच-बीच में उम्मीदवार को अपनी बातों को अच्छी तरह प्रकट करने हेतु उत्साहित करता है तथा उसके द्वारा कही गई बातों की गहराई को कुरेदने के उद्देश्य से कुछ आगे भी प्रश्न करता है। इस प्रकार, वह साक्षात्कार की गतिविधि को आगे बढ़ाने में सहयोग देता है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के साक्षात्कार को क्रमशः दृढ़ एवं खुला हुआ अथवा क्लाईंट सेंटर्ड इंटरव्यू भी कहते हैं। नैदानिक दृष्टिकोण से चूँकि अरचित साक्षात्कार में व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहराई में पहुँचने का प्रयास किया जाता है अतः साक्षात्कार की इस विधि का ही उपयोग बहुधा किया जाता है। लेकिन, व्यक्तित्व की किसी वांछित विशेषता के आधार पर व्यक्तियों के चयन हेतु रचित साक्षात्कार-विधि का उपयोग सरल और सुविधाजनक है। अतः, व्यक्तियों के चयन हेतु इसी प्रविधि का उपयोग अधिकतर किया जाता है।

3.5.2.2 व्यक्ति-इतिहास विधि-

नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व की परख के लिए व्यक्ति-इतिहास विधि का उपयोग आवश्यक मानते हैं। इस विधि में व्यक्ति के संपूर्ण विगत जीवन (तात्कालिक अवस्था तक का) इस एक ऐतिहासिक ब्योरा या विवरण तैयार करते हैं तथा उसके विगत जीवन की विभिन्न घटनाओं का विश्लेषण कर व्यक्तित्व का अध्ययन करते हैं। व्यक्ति के गत जीवन के संबंध में सूचनाओं को एकत्र करने हेतु व्यक्ति की जीवनी एवं आत्मजीवनी का भी उपयोग सूचनादायक यंत्र के रूप में किया जाता है। इसमें मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के निकट संबंधियों, जैसे-माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन तथा अन्य संबंधियों इत्यादि से भी संपर्क कर उनके साथ समालाप यानी साक्षात्कार-प्रविधि की सहायता से कुछ सूचनाएँ एकत्र करता है। इस प्रकार, व्यक्ति-इतिहास विधि अपने-आपमें अकेली विधि नहीं है, अपितु इसमें कई प्रविधियों जैसे-जीवनकथा, आत्मजीवनी, साक्षात्कार, व्यक्ति का अंतर्निरीक्षण या आत्मवृतांत आदि का सहयोग लिया जाता है। इन सभी प्रविधियों के सहयोग से व्यक्तित्व का पारखी व्यक्ति के संबंध में सूचनाएँ एकत्र करता है तथा उन्हीं सूचनाओं को व्यवस्थित और विश्लेषित कर व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में अध्ययन करता है।

3.5.3.3 प्रक्षेपण विधियाँ-

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की माप के लिए अत्यधिक प्रामाणिक विधि की खोज की दिशा में अनुसंधान करने की आवश्यकता महसूस की जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रक्षेपण प्रविधियों का विकास हुआ। इन प्रविधियों की एक विशेषता यह है कि इनके द्वारा किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का गहराई से अध्ययन वस्तुगत एवं मनोमितिक प्रणालियों द्वारा किया जा सकता है।

'प्रक्षेपण' का अर्थ 'आरोपण' से है। अर्थात, व्यक्ति अपने मनोभावों एवं विचारों को दूसरों पर आरोपित करता है। व्यक्ति के सम्मुख जब कोई तटस्थ या अर्थहीन वस्तु या परिस्थिति उपस्थित होती है, तब वह उन वस्तुओं में किसी अर्थपूर्ण वस्तु को देखता है। ऐसा देखने में व्यक्तिगत विभिन्नता पाई जाती है, अर्थात एक ही तटस्थ परिस्थिति में विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न वस्तुएँ देखते हैं। उदाहरण के लिए, कभी-कभी हम आकाश में छाए हुए बादलों में मानव-आकृति का अनुभव करते है। लेकिन, जब कोई दूसरा व्यक्ति उसे देखता है तब उसे पेड़ नजर

आता है, तीसरे को कोई पशु, चौथे को महल इत्यादि। इसी तरह के अनुभवों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने तटस्थ अथवा अपरिचित अथवा अस्पष्ट परिस्थितियों या तस्वीरों के प्रामाणिक सेट बनाकर प्रयोज्यों के समक्ष उपस्थित किया है तथा उनके द्वरा प्रक्षेपित या आरोपित विचारों का विश्लेषण कर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने की विधि विकसित की है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति जिन सार्थक वस्तुओं को देखता है अथवा जिन विचारों को व्यक्त करता है, उनका संबंध व्यक्ति के अंतःमन की प्रकृति या उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं से रहता है।

व्यक्तित्व की प्रक्षेपण-मापों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इस विधि द्वारा व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के प्रेरक तत्वों का भी पता आसानी से चल जाता है।

व्यक्तित्व की प्रक्षेपण-मापों को गहरी जाँच की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस विधि द्वारा अचेतन प्रवृत्तियों का भी पता चल जाता है।

व्यक्तित्व की प्रक्षेपण प्रविधियों में मर्रे का थीमेटिक-एपरसेप्सन टेस्ट या टी0ए0टी0, रोर्शा का इंक ब्लॉट टेस्ट या आर0टी0, काहन का टेस्ट ऑफ सिम्बॉल अरेंजमेंट, युंग का शब्द-साहचर्य विधि, वाक्यपूर्ति जाँच आदि प्रविधियाँ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

अब इन प्रविधियों का संक्षेप में एक-एक कर वर्णन किया जा रहा है-

(क) थीमेटिक-एपरसेप्सन टेस्ट-

मर्रे एवं उनके सहयोगी मॉर्गन ने व्यक्तित्व की जाँच के लिए टी.ए.टी. का निर्माण किया है। इस जाँच में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में अपरिचित मानव-चेहरों के 30 कार्ड हैं जिनमें एक कार्ड सादा भी है।

प्रत्येक कार्ड की पीठ पर यह अंकित रहता है कि किस कार्ड का उपयोग पुरूषों, स्त्रियों अथवा दोनों, वयस्कों एवं बच्चों पर होगा। इस प्रकार व्यक्ति की उम्र एवं लिंग के अनुसार 20-20 कार्ड चुन लिए जाते हैं तथा 10-10 कार्डो के द्वारा दो सत्रों में उनके व्यक्तित्व की जाँच की जाती है। केवल एक सत्र में 10 कार्डो की सहायता से भी काम चलाया जाता है।

व्यक्तित्व का पारखी व्यक्ति को निर्देश देता है कि उसके सामने कुछ दृश्यों के चित्र क्रमशः एक-एक कर एक निश्चित समय (2 मिनट) के लिए दिखाए जाएँगे। प्रत्येक चित्र को उक्त अवधि तक अवलोकन करने के बाद उसे उस चित्र के आधार पर एक छोटी काल्पनिक कहानी लिखनी होगी जिसमें अग्रलिखित तीन बातों पर प्रकाश पड़े- (1) वर्तमान में चित्र के पात्र क्या कर रहे हैं (2) चित्र के पात्र या पात्रों के साथ यह स्थिति क्यों उत्पन्न हुई तथा (3) अंतिम परिणाम क्या होने जा रहा है

इस निर्देशन के बाद बारी-बारी से चुने गए कार्ड दिखाए जाते हैं। तथा प्रत्येक कार्ड के संबंध में व्यक्ति द्वारा लिखी गई लघुकथाओं का विश्लेषण कर उनके व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।

मर्रे के विचारानुसार टी.ए.टी परीक्षणों में व्यक्ति जो कहानी प्रस्तुत करता है, उसमें वह तस्वीर के पात्रों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है, अर्थात चित्र के पात्र और अपने में कोइ्र अंतर नहीं समझता (सारूप्य

समझता है)। अतः, उसकी कहानी में उसके व्यक्तिगत जीवन की अप्रकट या गुप्त घटनाओं की झलक मिलती है। कहानी के माध्यम से व्यक्ति अपने उन संवेगों या भावों, इच्छाओं, विचारों आदि को प्रकट करता है, जिन्हें वह अपने सामान्य जीवन में खुलकर व्यक्त करने में हिचकिचाता है अथवा उन्हें अपने से संबद्ध होने से इनकार करता है। इस प्रकार, मर्रे के अनुसार व्यक्ति की इन कहानियों द्वारा उसके प्रभावी प्रेरकों, संवेग, भावुकता एवं मानसिक संघर्ष की स्थिति आदि का पता चलता है।

मनोमितिक सिद्धांत के आधार पर इस परीक्षण की विश्वसनीयता एवं सार्थकता की जाँच हेतु कई मनोवैज्ञानिकों ने अनेक विधियों द्वारा अध्ययन किया है। इन अध्ययनों से प्राप्त परिणामों में एकरूपता नहीं मिलने के कारण इसकी विश्वसनीयता एवं सार्थकता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है।

फिर भी सामान्य एव असामान्य मनोदशा के व्यक्तियों में अंतर करने, मानसिक रोगियों के निदान एवं चिकित्सा के लाभों का मूल्यांकन करने के क्षेत्रों में इस परीक्षण को अत्यंत ही उपयोगी पाया गया है। स्कूल एवं कॉलेज के छात्रों के व्यक्तित्व एवं शैक्षणिक योग्यता-संबंधी भविष्यवाणी करने में भी यह एक उपयोगी परीक्षण प्रमाणित हुआ है।

निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि मनोमितिक आधार पर यह परीक्षण दूसरे वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की तुलना में उतना अच्छा नहीं होते हुए भी नैदानिक उपयोग की दृष्टि से एक उपयोगी परीक्षण है।

(ख) रोर्शा परीक्षण-

स्विस मनचिकित्सक हर्मन रोर्शा ने 1921 ई0 में स्याही के धब्बों की तरह के अनिर्मित चित्रों का एक परीक्षण बनाया। इसीलिए, इस 'स्याही धब्बा परीक्षण' के नाम से भी जाना जाता है। इस परीक्षण में 10 कार्ड होते हैं और प्रत्येक कार्ड में स्याही के धब्बों की तरह के विभिन्न रूपों के चित्र बने होते हैं। इनमें 5 कार्डो के चित्र काले और उजले धब्बों के हैं तथा शेष 5 कार्डो के चित्र रंगीन धब्बों के। रोर्शा ने सैकड़ों ऐसे धब्बों वाले चित्रों पर प्रयोग कर 10 चित्रों का चयन किया है।

इस परीक्षण द्वारा वस्तुतः व्यक्तित्व की रचना का पता चलता है, जिसे साक्षात्कार या दूसरी किसी प्रत्यक्ष विधि से ज्ञात करना सामान्यतः संभव नहीं होता। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति इस परीक्षण के रंगों के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करता है, इससे उसकी संवेगात्मक प्रतिक्रिया का पता लगाया जा सकता है।

इस परीक्षण में व्यक्ति को विभिन्न कार्डो की धब्बा-आकृतियों को देखकर निम्नलिखित बातें बतानी होती हैं-

चित्र में उसे किन-किन वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण होता है, अर्थात वह क्या-क्या देखता है। उन वस्तुओं को चित्र के किन-किन भागों में देखता है तथा चित्र की कौन-सी ऐसी विशेषता है जिसके कारण उसे खास तरह की चीजें दिखाई पड़ती है।

रोर्शा परीक्षण द्वारा व्यक्ति की प्रतिक्रियाओें के लिए चार प्रकार के अंक दिए जाते हैं-स्थान, निर्धारक, तथ्य-विषय एवं प्रतिक्रियाओं की लोकप्रियता अथवा मौलिकता।

उपर्युक्त ढंग से व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का अंकन करने के बाद उनका विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व के संबंध में समुचित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

रोर्शा परीक्षण का संचालन एवं अंकन-प्रणाली अत्यंत ही जटिल है। अतः, इसका उपयोग विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते हैं।

रोर्शा परीक्षण द्वारा प्राप्त प्रतिक्रियाओं का अंकन वस्तुगत एवं आत्मगत दोनों तरह से किया जाता है। उदाहरण के लिए, धब्बों के किसी भाग पर वह कितने प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है, कि तुलना धब्बों के संपूर्ण भाग पर व्यक्त की गई प्रतिक्रियाओं की संख्या से हो सकती है। इसी प्रकार, रंगों के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं एवं गतिसूचक प्रतिक्रियाओं की भी गणना ही नहीं करते, अपितु वे विभिन्न प्रतिक्रियाओं के प्रतिरूपों एवं कुछ अन्यान्य संकेतों का भी उपयोग आत्मगत ढंग से व्याख्या एवं विश्लेषण हेतु करते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रविधि द्वारा व्यक्तित्व की परख हेतु वस्तुगत एवं आत्मगत दोनों तरह का विश्लेषण किया जाता है।

यद्यपि इस परीक्षण का निर्माण मानसिक रोगियों के व्यक्तित्व की जाँच के उद्देश्य से ही हुआ है, तथापि कुछ लोग इसका उपयोग विभिन्न पेशों के लिए व्यक्तियों के चयन के उद्देश्य से भी करने का दावा करते हैं। लेकिन, कुर्ज (1948) को जीवन बीमा कंपनियों के प्रबंधकों एवं अन्यान्य औद्योगिक एवं सैन्य संगठनों में व्यक्तियों के चयन में इस परीक्षण से पर्याप्त सफलता नहीं मिल सकी। अतः, अन्यान्य परिस्थितियों में इसके उपयोग किए जाने के यथेष्ट प्रमाण नहीं हैं।

(ग) काहन का सिम्बॉल अरेंजमेंट जाँच-

उपर्युक्त दोनों परीक्षणों से भिन्न, काहन(1955) ने भी एक प्रक्षेपण-परीक्षण का निर्माण किया है, जिसे काहन टेस्ट ऑफ सिम्बाल अरेंजमेंट कहते हैं। इस परीक्षण में कुछ प्रतीक, जैसे-हृदय, तितलियाँ, कुत्ते, तारे आदि उपयोग में लाए जाते हैं। व्यक्ति से उसके लिए ये प्रतीक क्या अर्थ रखते हैं-पूछा जाता है तथा व्यक्ति के द्वारा इन प्रतीकों को व्यक्तित्व पारखी के विभिन्न निर्देशों के अनुसार बारी-बारी से कई बार व्यवस्थित कराया जाता है।

इस परीक्षण में व्यक्ति विभिन्न प्रतीकों का अपने अनुसार जो अर्थ लगाता है, उसके लिए अंक प्रदान किया जाता है। इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति के रचनात्मक गुणों की परख की जाती है तथा इस कार्य में शारीरिक अथवा संवेगात्मक तत्वों के कारण जो कमी दृष्टिगोचर होती है, उसके संबंध में अनुमान लगाया जाता है।

दूसरे प्रक्षेपण-परीक्षणों के विपरीत, इस परीक्षण के संचालन एवं अंकन में बहुत ही कम समय लगता है। इसके संचालन में लगभग 15 मिनट का समय लगता है तथा अंकन का काम मात्र 3 मिनट में पूरा किया जा सकता है। साथ ही, इस परीक्षण के संचालन के लिए गहन प्रशिक्षण की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

नैदानिक दृष्टिकोण से भी यह एक उपयोगी परीक्षण माना जाता है। मर्फी, बोलिंगर एवं फेरिमैन ने इस परीक्षण को मानसिक रोगियों के वर्गीकरण में अत्यंत ही कुशल परीक्षण पाया है। काहन एवं जिफेन (1960) के अनुसार

मनोविदालिता के लक्षणों की पहचान करने में यह परीक्षण पूर्णतः सफल प्रमाणित हुआ है। अतः, स्पष्ट है कि यह परीक्षण नैदानिक कार्यों के लिए एक उपयोगी परीक्षण है।

(घ) शब्द साहचर्य जाँच-

इस जाँच में संवेगात्मक शब्दों और असंवेगात्मक अथवा तटस्थ शब्दों की मिली-जुली एक सूची तैयार की जाती है। दोनों प्रकार के शब्दों की संख्या बराबर-बराबर रखी जाती है। व्यक्ति के सम्मुख प्रत्येक शब्द को एक-एक कर बारी-बारी से उपस्थित किया जाता है तथा व्यक्ति प्रत्येक शब्द को सुनने के तुरंत बाद ही प्रतयुत्तर में उस शब्द को बोलता है, जो सबसे पहले उसकी चेतना में आते हैं। प्रत्येक शब्द को सुनने के बाद व्यक्ति कितनी देर में अपना प्रत्युत्तर देता है तथा प्रत्युत्तर के रूप में जो शबद बोलता है, उसे नोट कर लिया जाता है। सूची के प्रत्येक शब्द को एक बार प्रस्तुत कर लेने के बाद दुबारा उन शब्दों को पहले की ही तरह प्रस्तुत किया जाता है। दुबारा शब्दों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह होता है कि व्यक्ति पहले दिए गए शब्दों को ठीक-ठीक बोल पाया है या नहीं-इसकी जाँच हो सके।

व्यक्ति कुछ संवेगात्मक शब्दों को सुनने के तुरंत बाद अपना प्रत्युत्तर देता है, तो कुछ शब्दों को सुनने के बाद प्रत्युत्तर देने में विलंब करता है। सूची में से सुनाए जाने वाले शब्दों को उत्तेजना शब्द कहते हैं तथा उनके प्रति व्यक्ति का जो प्रत्युत्तर होता है, उसे प्रतिक्रिया शब्द कहते है। इस प्रकार, विभिन्न उत्तेजना शब्दों के प्रति व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रतिक्रिया शब्दों के बीच, जो समय व्यवधान होता है, उसकी गणना करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है, जिसके आधार पर संतुलन-विसंतुलन, संवेगात्मकता, प्रतिक्रिया आदि गुणों की परख की जाती है।

इस परीक्षण के उपयोग का श्रेय युंग (1918) महोदय को है, जिन्होंने 100 शब्दों की एक सूची बनाकर व्यक्ति की संवेगात्मक समस्याओं को समझने हेतु प्रयोग किया है। युंग के अतिरिक्त फ्रायड ने भी व्यक्तित्व की परख के लिए इस विधि को महत्वपूर्ण बताया है।

युंग के समय ही केंट तथा रोजेनौफ (1910) ने भी इस तरह का एक परीक्षण बनाया, जिसका उपयोग सामान्य एवं मनोस्नायु विकृति के रोगियों के व्यक्तित्वों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया जाता है। परंतु, युंग के परीक्षण की तुलना में यह परीक्षण उतना लोकप्रिय नहीं है। नैदानिक क्षेत्रों में यह एक अत्यंत ही उपयोगी परीक्षण सिद्ध हुआ है। इसका उपयोग मनचिकित्सा से मानसिक रोगियों के स्वास्थ्य-सुधार का मूल्यांकन करने, उनकी संवेगात्मक समस्याओं को समझने तथा विभिन्न मनःस्नायुरोगों के लक्षणों के अध्ययन के लिए विशेष महत्व रखता है।

व्यक्तित्व माप की यह विधि सरल भी है जिसका उपयोग साधारण प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति भी सफलतापूर्वक कर सकता है।

(ड.) वाक्य पूर्ति जांच -

व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी विधियों में वाक्य-पूर्ति जांच भी एक महत्वपूर्ण विधि है जिसमें कुछ अधूरे वाक्य होते हैं जिन्हें पूरा करने के क्रम में व्यक्ति अपने मनोभावों, मनोवृत्तियों, आवश्यकताओं, प्रवृत्तियों एवं प्रेरणाओं आदि को प्रक्षेपित या आरोपित करता है। सैक्स, टेंडलर, लिंडजे, फोरर आदि ने इस परीक्षण का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है।

(च) भारतीय प्रक्षेपण परीक्षण-

बहुत से भारतीय मनोवैज्ञानिकों का भी ध्यान प्रक्षेपण-प्रविधि के क्षेत्र की ओर गया है, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय अवस्था में भी कुछ प्रविधियों को प्रमाणित किया जा सका है।

भारतीय स्वरूप के कुछ चित्र बनाकर व्यक्तित्व के कुछ पक्षों का अध्ययन करने के उद्देश्य से उपयोग किया गया है। इस दिशा में मद्रास, मैसूर, अलीगढ़ एवं इलाहाबाद में सराहनीय कार्य हुए हैं। उदाहरण के लिए धपोला (1971) ने आक्रमण शीलता के गुण की पहचान हेतु टी.ए.टी. की कुशलता की जाँच की है। सिन्हा, ए0के0 एवं शर्मा, एम0बी0 ने भी भारतीय समूह पर एक अध्ययन कर टी0ए0टी0 एवं रोशार्क के परीक्षणों में अनाभियोजन के कुछ अतिरिक्त विषय सूचकों का पता लगाया है। प्रक्षेपण प्रविधियों का मार्ग दर्शन एवं निर्देशन में महत्व-का अध्ययन दोसाझ, एन0एल0 ने किया है। हाल ही में एन0सी0ई0आर0टी0 के उदय पारीक ने भी टी0ए0टी0 के अनुरूप उपलब्धि प्रेरणा को मापने के लिए एक परीक्षण बनाया है।

इसी तरह के और भी अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किए है। इन सभी कार्यो का वर्णन करना यहाँ अभीष्ट नहीं है।

3.5.3 मनोमितिक विधियाँ-

आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के नैदानिक दृष्टिकोण पर आश्रित रहना उपयुक्त नहीं समझते, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह दृष्टिकोण और इस पर आधारित माप की विधियों में दो महत्वपूर्ण त्रुटियाँ है- (क) व्यक्तित्व का नैदानिक दृष्टिकोण मूल रूप से मानसिक रोगियों से प्राप्त प्रदत्तों पर आधारित है। अतः, इस दृष्टिकोण से सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व की व्याख्या उपयुक्त नहीं है। (ख) दूसरी कठिनाई यह है कि प्रारंभिक नैदानिक मनोविज्ञानी व्यक्तित्व की परिगणात्मक माप में अभिरूचि नहीं रखते थे। यद्यपि, आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञानी इन दिनों व्यक्तित्व के परिणामस्वरूप मापकों का ही उपयोग करने लगे हैं, तथापि व्यक्तित्व संबंधी उनके सिद्धांत रोगियों के वैयक्तिक वाचिक वृत्तांतों पर ही आधारित है। अतः, इस दृष्टिकोण पर विभिन्न विद्वानों के विचारों में बहुत अधिक भिन्नता पाई जाती है। फलतः, उनके विचारों में वस्तुनिष्ठता का अभाव है।

उपर्युक्त कठिनाईयों के आलोक में ही आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने परिमाणात्मक एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ विकसित की है। व्यक्तित्व परख की इन्हीं वस्तुनिष्ठ एवं परिमाणात्मक विधियों के उपयोग के संबंध में मनोवैज्ञानिकों का

विचार यह है कि व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों एवं उनके अंतःसंबंधों का वस्तुगत अध्ययन करके किसी व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है।

विभिन्न मनोमितिक विधियों का वर्णन करने से पहले इन विधियों की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करना उपयुक्त प्रतीत होता है, जो निम्नलिखित हैं-

व्यक्तित्व की किसी भी माप का विकास करने से पहले कुछ विशेष बातों पर ध्यान दिया जाना उचित है। इस संबंध में सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात यह है कि माप ऐसी हो जो मापी जाने वाली विशेषता को मापने में समर्थ हो, अर्थात वह एक सार्थक माप हो।

दूसरी बात यह है कि मापक यंत्र ऐसा हो जो समान अवस्था में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की बार-बार जाँच करने पर सदा समान बातें या परिणाम प्राप्त कर सके। समान अवस्था में बार-बार एक जैसा परिणाम मिलने पर मापक को विश्वसनीय माना जाता है। अतः, मनोमितिक मापकों में विश्वसनीयता का गुण आवश्यक है।

कोई भी जाँच या माप सार्थक या विश्वसनीय तभी हो सकती है, जब वह वस्तुगत स्वरूप की हो। अतः, मनोमितिक मापकों में वस्तुनिष्ठता का गुण होना भी जरूरी है।

किसी भी वैज्ञानिक अथवा वस्तुनिष्ठ माप की एक अंतिम प्रमुख विशेषता यह होती है कि उस माप द्वारा किसी व्यक्ति के संबंध में प्राप्त अंकों की व्याख्या उस समूह के दूसरे व्यक्तियों के संदर्भ में की जा सके। यह तभी संभव होगा, जबकि माप प्रामाणिक हो।

व्यक्तित्व की मनोमितिक विधियों में उपर्युक्त सभी विशेषताएँ पाई जाती है। व्यक्ति की मनोमितिक मापों में विशेष रूप से प्रश्नावलियों, आविष्कारिकाएं तथा श्रेणीगत मापनी उपयोग में लायी जाती है। इनमें से प्रश्नावली एवं आविष्कारिका को पेपर-पेंन्सिल जाँच भी कहा जाता है क्योंकि-मनोवैज्ञानिक उद्देश्य के लिए सबसे सुविधाजनक माप कागज-पेन्सिल माप या जाँच होती है। इस तरह की जाँच का उपयोग एक ही साथ कई व्यक्तियों पर आसानी से हो सकता है। इसमें समय और खर्च दोनों की बचत होती है। अतः, व्यक्तित्व की परख के लिए कागज-पेन्सिल जाँच ही सर्वाधिक प्रचलन में है। जेम्स एवं अन्य लोगों (1969) के अनुसार पिछले छः दशकों में इस तरह के अनेक मापक विकसित हुए हैं तथा आज भी अनेक मनोवैज्ञानिक इस कार्य में रत है।

3.5.3.1 प्रश्नावली-

प्रश्नावली में व्यक्ति के व्यवहार, स्वभाव अथवा व्यक्तित्व की विशेषताओं से संबंधित प्रश्नों की सूची होती है जिनका उत्तर लिखित रूप में या मौखिक रूप से 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जाता है। कुछ प्रश्नावलियों में उत्तर देने का एक और विकल्प अनिश्चित या संदिग्ध भी दिया रहता है। व्यक्ति प्रश्नावली में पूछे गए वैकल्पिक उत्तरों में से जो उसे सही मालूम पड़ता है, उसे बताता है। दिए गए उत्तरों के अनुसार अंक प्रदान किए जाते हैं, जिससे व्यक्तित्व का परिमाणात्मक परिचय या ज्ञान प्राप्त होता है। प्रश्नावली का एक नमूना नीचे दिया जा रहा है-

(क) संसार में मैं कभी-कभी स्वयं को अकेला महसू करता हूँ।

(ख) साधारणतया मैं सिनेमा देखने अकेले जाता हूँ।

(ग) अपने परिचितों से भेंट न हो, इस उद्देश्य से उनके घरों की गलियों में जाने से मैं प्रायः कतराता हूँ।

(घ) जोड़े अंकों वाली तारीखों को मैं यात्रा नहीं करता।

(ड.) क्या आप मित्र बनाना पसन्द करते हैं? इत्यादि

प्रश्नावली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इसमें व्यक्तित्व के किसी लक्षणविशेष से संबद्ध पूछे गए प्रश्न उस लक्षण के दो चरम बिंदुओं में विस्तृत या फैले हुए होते हैं और व्यक्ति उनका उत्तर देते समय इन दोनों चरम बिंदुओं के बीच किसी बिंदु पर अपना स्थान स्पष्ट करता है। जैसे मान लें, जीवन में सभी जगह कठिनाइयाँ अनुभव करना और जीवन में कहीं भी कोई कठिनाई न देखना-ये दो चरम बिंदु हैं। अब जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अनुभव होने वाली कठिनाइयों से संबद्ध अनेक प्रश्नों की एक सूची बनाई जाएगी और व्यक्ति से यह पूछा जाएगा कि वह इनमें से कितनी कठिनाईयों को अपने जीवन में महसूस करता है। प्रश्नावली में जिन कठिनाइयों का उल्लेख किया जाएगा वह व्यक्ति पर ही मुख्य रूप से निर्भर करेगा-परिस्थितियों की आकस्मिकताओं पर कम। व्यक्ति द्वारा दिए गए उत्तरों से यदि यह पता चलता है कि वह बहुत अधिक कठिनाइयाँ अनुभव करता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वातावरण की विभिन्न परिस्थितियों के साथ उसका अभियोजन ठीक नहीं है।

प्रश्नावली को उपयोग में लाने से पूर्व उसकी विश्वसनीयता, सार्थकता, वस्तुनिष्ठता एवं प्रामाणिकता की जाँच कर ली जाती है और इन कसौटियों पर प्रश्नावली जब खरी उतरती है तब उसका उपयोग व्यक्तित्व की परख के लिए किया जाता है।

व्यक्तित्व के इस मापक द्वारा सामान्य रूप से सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व के संबंध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यहाँ साक्षात्कार विधि की तरह हैलो-एफेक्ट, अर्थात साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति के पूर्वाग्रह या रूढ़ियुक्त विचारों का प्रभाव नहीं पड़ता। अतः, इसकी सत्यता की जाँच अन्य लोग भी जब चाहें कर सकते है। इस मापक का उपयोग सर्वप्रथम प्रथम-विश्वयुद्ध के जमाने में सैनिकों के संवेगात्मक असंतुलन की जाँच के लिए किया गया था और आज भी बड़ी सफलता के साथ किया जा रहा है।

किंतु, प्रश्नावली तैयार करना एक कठिन कार्य है। इसमें काफी सावधानी एवं कुशलता की जरूरत पड़ती है। अतः, यह आवश्यक है कि प्रश्नावली तैयार करने वाला व्यक्ति, इस कार्य में पूर्ण कुशल हो तथा इसकी विश्वसनीयता और सार्थकता की जाँच अच्छी तरह कर ली जाए।

3.5.3.2 आविष्कारिका-

व्यक्तित्व की परख के लिए मनोवैज्ञानिकों ने प्रमाणीकृत आविष्कारिकाओं का भी निर्माण किया है। आविष्कारिकाएँ भी प्रश्नावली की ही तरह होती हैं।

19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में गाल्टन ने एक आविष्कारिका बनाई थी, किंतु इसके आधुनिक रूप का प्रारंभ सबसे पहले वुडवर्थ (1918) ने किया था। इनके द्वारा निर्मित आविष्कारिका पर्सनल डाटा शीट के नाम से जाना

जाता है। इनके बाद तो एक बाढ़ जैसी आ गई और सैकड़ों आविष्कारिकाओं का निर्माण होने लगा। ऐसी प्रामाणिक आविष्कारिकाओं में कुछ प्रमुख आविष्कारिकाएँ निम्नलिखित हैं-

(क) मिन्नेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनाल्टी इन्वेंट्री या एम0एम0पी0आई0 (1943)

(ख) एडवर्ड्स पर्सनल प्रेफरेन्स शिड्यूल या ई0पी0पी0एस0 (1954)

(ग) 16 पर्सनाल्टी फैक्टर टेस्ट या 16 पी0एफ0 (1950)

(घ) ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंडजे स्टडी ऑफ वैल्यूज (1951)

(ड.) बेल्स एडजस्टमेंट इन्वेट्री (1934)

(च) आइजेक एक्स्ट्रावर्जन-न्यूरोटिसिज्म स्केल (1956) इत्यादि।

आइए, अब इन आविष्कारिकाओं के बारे में जानें-

1. मिन्नेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनाल्टी इन्वेंट्री-

यह एक महत्वपूर्ण आविष्कारिका है जिसे एस.एम.पी.आई. के नाम से भी जाना जाता है। इसका उपयोग नैदानिक उद्देश्यों में बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है।

इस आविष्कारिका का निर्माण हैथावे एवं मैक किन्ले ने 1943 ई0 में किया। इसके दो रूप हैं- (क) वैयक्तिक अथवा कार्ड रूप, एवं (ख) ग्रुप फॉर्म।

इस आविष्कारिका में कुल 550 पद हैं। वैयक्तिक फॉर्म के प्रत्येक पद अलग-अलग कार्डो पर लिखे हुए हैं और व्यक्ति को प्रत्येक कथन-पद का उत्तर तीन विकल्पों- 'सही' 'गलत' और 'कह नहीं सकता' में से किसी एक उत्तर को चुनकर देना होता है। ग्रूप फॉर्म के सभी पद एक पुस्तिका में छपे होते हैं तथा उनके उत्तर एक अलग उत्तर पत्र में देना होता है। इस आविष्कारिका के पदों में कुछ कथन सामान्य स्वरूप के हैं और कुछ का संबंध ऐसे विषयों से है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत स्वभाव से संबंध रखते हैं, जैसे-मैं पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर हूँ, प्रातःकाल में टहलने निकलने में कठिनाई का अनुभव करता हूँ; लोग हमारे बारे में बातें करते हैं; में बच्चों के बीच रहना पसंद करता हूँ, इत्यादि। इनमें कुछ कथनों को बार-बार दुहराया गया है, जिससे यह पता चल सके कि व्यक्ति ध्यानपूर्वक उत्तर दे रहा है या नहीं। कुछ लोग जान-बूझकर अपने बारे में अच्छा उत्तर देना चाहते हैं। इसे पकड़ने की भी व्यवस्था इस आविष्कारिका में है।

इस आविष्कारिका का निर्माण नैदानिक कसौटियों पर हुआ है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व की 10 विमाओं को जाँचने की व्यवस्था है। इस प्रकार, इसकी 10 मापनियाँ हैं। प्रत्येक मापनी पर एक अंक होता है, जिसे टी स्कोर में बदल देते हैं। किसी भी मापनी पर 70 से अधिक अंक पाने वाले को व्यक्तित्व के उस गुण के संदर्भ में असामान्य माना जाता है। इसके 10 खंड निम्नलिखित हैं-

1. रोगभ्रम
2. विषाद
3. उन्माद

4. मनोविकारी विचलन
5. पौरूष-नारीत्व
6. व्यामोह
7. मनोदौर्बल्य
8. मनोविदलिता
9. अल्पोन्माद
10. सामाजिक अंतःमुखता

उपर्युक्त व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के लक्षण-

1. रोगभ्रम - स्वास्थ्य के संबंध में अतिरंजित चिंता एवं साधारण शारीरिक व्याधियों के संबंध में बढ़ा-चढ़ाकर निराशा के भाव व्यक्त करना।
2. विषाद- अपने को अनुपयोगी समझना, नैराश्यभाव, किसी प्रकार की आशा न रखना।
3. उन्माद- बिना किसी शारीरिक आधार के लकवा, सिरदर्द आदि रोगों के विभिन्न लक्षण।
4. मनोविकारी विचलन- असामाजिक एवं अनैतिक आचरण।
5. पौरूष-नारीत्व- पुरूष एवं नारीसुलभ अभिरूचियों की माप, खासकर पुरूषों में नारी मूल्यों एवं संवेगात्मक अभिव्यक्तियों की माप।
6. व्यामोह- दूसरों के उद्देश्यों को अति संदेह की दृष्टि से देखना, खासकर यह विश्वास रखना कि दूसरे लोग सदा उसके खिलाफ कोई-न-कोई साजिश करते रहते हैं।
7. मनोदौर्बल्य-अविवेकपूर्ण विचारों का बार-बार आना अथवा किसी निरर्थक क्रिया को बार-बार करना।
8. मनोविदलिता- अपनी ही दुनिया में रहना, विभ्रम एवं उटपटांग व्यवहारों की प्रचुरता।
9. अल्पोन्माद- बिना किसी स्पष्ट कारण के उत्तेजित या उत्साहित होना।
10. सामाजिक अंतर्मुखता- दूसरे व्यक्तियों से मिलने-जुलने में संकोचशील रहना तथा सामाजिक संपर्क से दूर रहना।

प्रामाणिक आधारों पर यह एक अत्यंत ही सार्थक एवं विश्वसनीय यंत्र प्रमाणित हुआ है। डैल्सट्रौम (1969) के अनुसार चिंता, शत्रुता, विभ्रम, अकारण भय, आत्महत्या की प्रवृत्ति आदि के मूल्यांकन के लिए एम. एम. पी. आई. एक कुशल जाँच की विधि है तथा इसके द्वारा मनोस्नायु विकृति एवं मनोविकृति रोगों से पीड़ित रोगियों की पहचान बड़ी कुशलतापूर्वक होती है।

2. एडवर्डस् पर्सनल प्रेफरेस शिड्यूल-

व्यक्त्वि की माप के लिए एडवर्ड (1954) ने भी एक आविष्कारिका का निर्माण किया है जो कुछ महत्वपूर्ण प्रेरणाओं, जैसे-उपलब्धि, विनय या सम्मान, प्रदर्शन, क्रम-व्यवस्था, पालन-पोषण, धैर्य आक्रमणशीलता आदि की जांच हेतु महत्वपूर्ण है।

दूसरी आविष्कारिकाओं के विपरीत एडवर्ड ने ई.पी.पी.एस. में पक्षपात-प्रवृत्ति की संभावना को दूर करने का प्रयास किया। अर्थात, इन्होंने इस आविष्कारिका के निर्माण में विशेष ध्यान यह रखा कि व्यक्ति जांच के क्रम में जानबूझकर ऐसी प्रतिक्रिया या उत्तर व्यक्त न करे, जिसे वह सामाजिक रूप से वांछित समझता हो। इसीलिए, इन्होनें आविष्कारिका के विभिन्न पदों को जोड़ा रूप में रखा। प्रत्येक जोड़ा के दोनों पद समान रूप से वांछित माने गए हैं तथा व्यक्ति को उनमें से किसी एक का चयन करने के लिए बाध्य किया जाता है। आविष्कारिका में इस तरह के 225 जोड़े पद रखे गए हैं।

हालांकि सार्थकता की दृष्टि से यह आविष्कारिका पूर्ण सार्थक जांच प्रमाणित नहीं हो सकी है, फिर भी परामर्शदायी, परिस्थितियों में यह सर्वाधिक उपयोगी जांच सिद्ध हुई है। अतएव, जिस प्रकार एम.एम.जी.आई. मानसिक चिकित्सालयों के लिए एक अत्यनत उपयोगी जांच है, उसी प्रकार ई.पी.पी.एस. परामर्शदायी परिस्थितियों में व्यक्तियों के बारे में भविष्यवाणी एवं मार्गदर्शन की दृष्टि से एक उपयोगी व्यक्तित्व परख की विधि है।

3. सोलह पर्सनॉल्टी फैक्टर टेस्ट -

केटल (1950) ने व्यक्तित्व की माप के लिए कथनों के रूप में 187 पदों से युक्त एक आविष्कारिका का निर्माण किया है जिसे 16 पी.एफ. भी कहते हैं। इनका उत्तर हां, कभी-कभी और नहीं में से जो व्यक्ति के साथ लागू होता है, उसका निर्णय की उत्तर देना होता है। अत्यन्त जटिल कारण-विश्लेषण के आधार पर इन्होंने व्यक्तिव शीलगुणों के 16 घटक माना है और प्रत्येक घटक के लिए 10 स 13 पद रखे गए हें। प्रत्येक घटक को द्विधुवीय विमा के रूप में माना गया है। ये शील गुण निम्नलिखित हैं -

संयमी-निर्गमी
कम बुद्धि -अधिक बुद्धि
स्थिर अवेगी-अस्थिर आवेगी
विनीत-आग्रही
संयत-प्रसन्नचित्त
कार्यसाधक-अच्छे विचार का/कर्तव्यनिष्ठ
संकोची-साहसी
कोमल-कठोर
विश्वासी-संदेही
व्यावहारिक-कल्पनाशील
स्पष्टवादी-चतुर
आत्मशाश्वत-आशंकित
रूढ़िवादी-प्रयोगवादी

परावलंबी-स्वावलंबी

अनुशासनहीन-नियंत्रित

शांत-क्षुब्द

प्रत्येक शीलगुण के लिए अंक प्रदान किए जाते हैं, और फिर इन अंकों को दस (10) मानक अंकों, जिसे स्टेन भी कहते हैं, के विभिन्न बिन्दुओं पर रखकर व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है। उपुर्यक्त 16 शीलगुणों को एक निरन्तर रेखा पर क्रमशः सजाकर इसके दाहिने और बांएं छोरों के बीच स्टेन के 10 बिन्दुओं को रखा जाता है तथा प्रत्येक शीलगुण पर व्यक्ति के अंकों के आधार पर उसका स्थान दिखाया जाता है। इससे व्यक्ति के सम्बन्ध में एक रूपरेखा-चित्र मिलता है, जिससे विभिन्न शीलगुणों पर व्यक्ति कितना ऊँचा या नीचा है, इसकी झलक प्राप्त होती है।

मनोमितिकी सिद्धान्तों के अनुसार, यह एक अत्यन्त विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक आविष्कारिका है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व गुणों को अच्छी तरह मापा जाता है।

लेकिन, इस आविष्कारिका से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करने हेतु जटिल सांख्यिकी विधियों का उपयोग करना होता है, जो एक कठिन कार्य है। अतः, इस कार्य के लिए अत्यन्त ही कुशल एवं प्रशिक्षित व्यक्ति का होना अनिवार्य है।

4. ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंडजे मापनी -

कागज-पेन्सिल जांच में यह भी एक ख्याति प्राप्त मापनी है, जिसके द्वारा व्यक्ति के मुख्य मूल्यों एवं अभिरूचियों, जैसे-सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्य मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनीतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य की जांच की जाती है।

इस जांच के दो भाग हैं। पहले भाग में विभिन्न मूल्यों से सम्बद्ध कुछ कथनों की एक श्रृंखला है, जिनका उत्तर हां या नहीं में देना होता है। उदाहरण के लिए सैद्धान्तिक मूल्य से सम्बद्ध एक कथन निम्नाकिंत रूप में हो सकता है -

वैज्ञानिक अनुसंधानों का मूल उद्देश्य विशुद्ध सत्य की खोज होनी चाहिए न कि उसका व्यावहारिक उपयोग।

यदि व्यक्ति इस कथन से सहमत है तो उसका उत्तर हां होगा और यदि असहमत है तो नहीं। सहमति व्यक्त करने पर व्यक्ति के सैद्धान्तिक मूल्य एवं अभिरूचि के लिए ऊँचे अंक दिए जाऐंगे।

जांच के दूसरे भाग में विभिन्न कथनों के चार-चार वैकल्पिक सहमतिसूचक वर्णनात्मक कथन है, जिन्हें व्यक्ति अपनी सहमति के क्रमानुसार उनके सामने क्रमशः 1, 2, 3, 4 व्यक्त करता है।

उदाहरण के लिए, नीचे दिए गए नमूना को देखें -

क्या आप सोचते हैं कि एक अच्छी सरकार का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए-

क. गरीबों, रोगियों और बूढ़ों को अधिक सहायता देना?

ख. निर्माणकार्य एवं व्यापार?

ग. अपनी नीतियों एवं कूटनीतियों में अधिक नैतिक आदर्शों को उपस्थित करना?

घ. राष्ट्रों के बीच प्रतिष्ठा एवं आदर का स्थान कायम करना?

यह परीक्षण अत्यन्त ही उपयोगी है और मनोमितिक दृष्टिकोण से एक सफल एवं सार्थक परीक्षण माना जाता हैं परन्तु, इस परीक्षण के उपयोग में बहुत अधिक सावधानी बरतने की जरूरत पड़ती है।

इस परीक्षण का उपयोग व्यक्ति के व्यक्तित्व-सम्बन्धी अनुसंधान-कार्य, परामर्श, चयन आदि क्षेत्रों में अत्यन्त ही लाभप्रद प्रमाणित हुआ है।

5. बेल एडजस्टमेंट इन्वेन्ट्री-

बेल (1934) ने इस परीक्षण को बनाया है। इस आविष्कारिका से व्यक्ति के अभियोजन-सम्बन्ध व्यक्तित्व-विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें पारिवारिक अभियोजन, स्वास्थ्य अभियोजन, सामाजिक अभियोजन, संवेगात्मक अभियोजन और व्यावसायिक अभियोजन से सम्बद्ध पद है, जिनका उत्तर व्यक्ति हाँ या 'नहीं' श्रेणियों में देता है।

इस जांच द्वारा प्रत्येक क्षेत्र के साथ अभियोजन का अलग-अलग अध्ययन संभव नहीं हैं इस जांच की वस्तुनिष्ठता भी कम है। फिर भी, चूंकि इसका उपयोग सरल है, इसलिए व्यावसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में इस आविष्कारिका का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। डा. मोहसिन एवं डा. हुसैन ने इस आविष्कारिका का हिन्दी रूपान्तर कर प्रमाणित किया है, जिसका उपयोग भारतवर्ष के हिन्दी भाषी व्यक्तियों के अभियोजन-सम्बन्धी गुणों की जांच के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है।

6. आइजेंक व्यक्तित्व आविष्कारिका -

आइजेंक (1956) ने मॉडस्ले अस्पताल में मनोस्नायु विकृति और अन्तःमुखता-बहिर्मुखता के द्विधुरवीय शीलगुण को मापने हेतु एक आविष्कारिका बनाई। इस आविष्कारिका का निर्माण अस्पताल मेंभर्ती होने वाले रोगियों की जांच-पड़ताल के लिए किया गया था। बाद में मनोवैज्ञानिकों ने देखा कि इस आविष्कारिका का उपयोग सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने हेतु भी सरलतापूर्वक और आसानी से किया जा सकता है। इस आविष्कारिका में कुल 48 पद हैं, जिसमें 24 अंतर्मुखी व्यक्तित्व से सम्बद्ध है और शेष 24 पद बहिर्मुखी व्यक्तित्व से सम्बद्ध है।

यह आविष्कारिका मॉड्स्ले पर्सनॉल्टी इन्वेंट्री या एम.पी.आई. के नाम से प्रचलित है।

आइजेक एवं आइजेक (1963) ने एम.पी.आई. को संशोधित कर एक नई आविष्कारिका का निर्माण किया, जिसे आइजेंक पर्सनॉल्टी इन्वेंट्री या ई.पी.आई कहते हैं। इस परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व के दो विमाओं अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता तथा मनोस्नायुविकृति या संवेगात्मक स्थिरता की जांच की जाती है।

ई.पी.आई. के दो सामान्तर रूप हैं। इस प्रकार, क्रमशः दोनों रूपों का उपयोग कर पुनः जांच विधि द्वारा सार्थकता की जांच आसानी से सम्भव है।

इस परीक्षण में कुल 57 प्रश्न हैं जिनमें 24 से मनोस्नायुविकृति की जांच होती है, तथा 24 से अन्तर्मुखता - बहिर्मुखता की जांच होती है। इनके अतिरिक्त 9 प्रश्न लाई स्केल के हैं। लाई स्केल क अंकों द्वारा व्यक्ति के झूठ

बोलने की विशेषता की परख करने के साथ-ही-साथ उपर्युक्त दोनों स्केल पर व्यक्ति के उत्तरों की भी जांच हो जाती है।

यह आविष्कारिका अत्यन्त सरल है तथा व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण विमाओं-अन्तर्मुखता -बहिर्मुखता एवं मनोस्नायुविकृति के लक्षणों की जांच के लिए उपर्युक्त परीक्षण है। इसका उपयोग सामूहिक परिस्थिति में आसानी से किया जा सकता है। विभिन्न अध्ययनों से इस परीक्षण की विश्वसनीयता एवं सार्थकता अच्छी तरह प्रमाणित हुई है।

भारत में बने व्यक्तित्व-परीक्षण

भारतवर्ष के विभिन्न भागों के मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी व्यक्तित्व की माप के लिए अनेक परीक्षण बनाए गए हैं। भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्मित परीक्षणों में अधिकांश या तो अंग्रेजी भाषा में बने परीक्षणों के हिन्दी रूपान्तर हैं या फिर उन्हीं के अनुरूप हिन्दी भाषा में व्यक्तित्व-परीक्षण प्रमाणीकृत किए गए हैं।

भारतवर्ष में अभियोजन क्षमता को मापने वाली अनेक आविष्कारिकाओं का निर्माण हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं में हुआ हैं इस सम्बन्ध में प्राथमिक कार्य कलकत्ता, लखनऊ और बनारस विश्वविद्यालयों में कार्यरत मनोविज्ञान विभाग के प्राध्यापकों द्वारा हुए। उदाहरण के लिए, कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो.एस.के. बोस ने मनोविज्ञान विभाग के तत्वाधान में एक परीक्षण बनाया है। डा.एच.एस. अस्थाना ने लखनऊ विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के तत्वाधान में अभियोजन-आविष्कारिका (1959) का एक संशोधित रूप बनाया। बनारस विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के तत्वावधान में भी एम.एस.एल. सक्सेना (1955) ने 'व्यक्तित्व-परख प्रश्नावली' (1955) का निर्माण किया। विहार में पटना विश्वविद्यालय, मनोविज्ञान विभाग के तत्कालीन प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डा. एस.एम. मोहसिन एवं डा. समसाद हुसैन ने बेल एडजस्टमेंट इन्वेंट्री का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित किया। इनके अतिरिक्त डॉ. ए.के.पी. सिन्हा एवं उनके सहयोगी ने मिलकर एक एडजस्टमेंट इन्वेंट्री बनाया है।

उपर्युक्त आविष्कारिकाओं के अलावा एस. जलोटा (1965) का मॉड्स्ले पर्सनॉल्टी इन्वेन्ट्री का हिन्दी अभ्यानुकूलित रूप भी एक सर्वाधिक प्रचलित भारतीय व्यक्तित्व परीक्षण है। मित्रेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनॉल्टी इन्वेन्ट्री का भी हिन्दी रूपान्तर हुआ है, जिसका श्रेय बीर सिंह को जाता है। इन्हें इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए बनारस विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टरेट की उपाधि भी प्रदान की गई है। इसी तरह ए.के. ज्ञान एवं आर.पी. साहा ने 16 नर्सनॉल्टी फैक्टर का हिन्दी रूपान्तर किया है। के. कपूर ने भी न्यूरोटिसिज्म प्रश्नावली के हिन्दी रूपान्तर का उपयोग कर व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है।

उपर्युक्त परीक्षणों के अतिरिक्त भारत में अभिरूचि, अभिवृत्ति, मनोवृत्ति एवं व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों आदि की परख के लिए और भी अनेक परीक्षण बने हैं तथा आज भी भारतीय वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

व्यक्तित्व की परख के लिए आजकल कागज-पेन्सिल जांच के रूप में आविष्कारिकाओं का उपयोग सबसे अधिक किया जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि आविष्कारिकाएं व्यक्तित्व के गुणों की माप परिमाणात्मक ढंग से करती हैं तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण सें ये प्रमाणीकृत होती हैं। सामान्यतः, सभी आविष्कारिकाएं मनोमितिक

दृष्टिकोण से सार्थक, विश्वसनीय, वस्तुनिष्ठ एवं मितव्ययी होती हैं तथा इनके द्वारा वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनों परिस्थितियों में व्यक्तित्व की जांच सुविधापूर्वक की जा सकती है।

उपर्युक्त गुणों के बावजूद आज भी इस विधि की कुछ कठिनाइयां विद्यमान हैं, जो निम्नलिखित हैं।

क. आविष्कारिकाओं की मुख्य त्रुटि इनकी सार्थकता के सम्बन्ध में है। आज भी यह संदेह बना हुआ है कि क्या आविष्कारिकाएं वास्तव में व्यक्तित्व की उन्हीं विशेषताओं को मापती है जिनके लिए वे बनाई गई हैं। इस संदेह का प्रधान कारण यह है कि किसी भी जांच को पूर्णरूपेण सार्थक बनाना एक अत्यन्त दुरूह कार्य है।

पर, यह इस विधि की एक कठिनाई है-दोष नहीं। यदि आविष्कारिका तैयार करने वाला व्यक्ति दक्ष हो तो वह इस कठिनाई को दूर कर सार्थक आविष्कारिका तैयार कर सकता है।

ख. इस विधि के सम्बन्ध में दूसरी त्रुटि यह बताई जाती है कि आविष्कारिकाओं द्वारा व्यक्ति के सोचने-विचारने और व्यवहार की प्रवृत्ति का तो पता चलता है, किन्तु इन प्रवृत्तियों को उत्पन्न करने वाले प्रेरणात्मक तत्वों का पता नहीं चलता। उदाहरण के लिए, मान लें दो व्यक्ति हैं जो आत्महत्या की प्रवृत्ति रखते हैं। पर, इनमें एक व्यक्ति आर्थिक मजबूरियों के कारण इस प्रवृत्ति का शिकार है तो दूसरा अपनी पत्नी के साथ सामंजस्य में विकास होने के कारण। अतः, आविष्कारिका द्वारा जांच करने पर दोनों का व्यक्तित्व एक जैसा ही मालूम होगा, पर इनके प्रेरकों में भिन्नता के आधार पर इनके व्यक्तित्वों को एक जैसा मानना गलता होगा।

ग. इसका तीसरा दोष यह है कि आविष्कारिकाओं का उपयोग केवल साक्षर व्यक्तियों पर ही संभव है, निरक्षरों पर इसका उपयोग उचित रूप से नहीं किया जा सकता है। कभी-कभी तो साक्षरों पर भी इसका उपयोग कठिनाई उत्पन्न करता है। साक्षरों के संदर्भ में इस बात की संभावना रहती है कि व्यक्ति आविष्कारिका के किसी प्रश्न विशेष का वह अर्थ नहीं समझे जो अर्थ उन प्रश्नों में निहित रहता है।

आविष्कारिकाओं के उपयोग के सम्बन्ध में ऊपर जिन दोषों की चर्चा की गयी है, वे वस्तुतः उनकी कठिनाइयां हैं, जिन्हें दूर कर यदि आविष्कारिकाओं को बनाया जाए तो आविष्कारिकाआं द्वारा व्यक्तित्व की परख अच्छी तरह की जा सकती है।

3.5.3.3 श्रेणीगत मापनियां -

दूसरों को देखकर अथवा उनके व्यवहारों का अवलोकन कर उनके बारे में अपना एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण या विचार बना लेना स्वाभाविक बात है। इस स्वाभाविक गुण के कारण ही हम अपने दैनिक जीवन में अपने परिचितों के बारे में एक निजी दृष्टिकोण रखते हैं तथा उसी दृष्टिकोण के आधार पर हम उनके व्यक्तित्व-सम्बन्धी कुछ लक्षणों को विभिन्न मात्राओं में स्थित कर प्रकट करते हैं। जैसे-हम कहते हैं अमुक व्यक्ति बहुत अधिक संकोची स्वभाव का है, अमुक व्यक्ति डरपोक नहीं है, अमुक लड़का बहुत साहसी है इत्यादि। स्पष्ट है कि यहां संकोचशील होना, डरपोक होना, साहसी होना आदि व्यक्तित्व-सम्बन्धी गुण हैं तथा हम निजी दृष्टिकोण, आधार पर उनमें इन गुणों की प्रचुरता के अनुसार बहुत अधिक या बिल्कुल नहीं श्रेणियों में उन्हें स्थित सझमते हैं। व्यक्तित्व की परख हेतु श्रेणीगत मापनियों या रेटिंग स्केल्स का विकास भी कुछ इसी तरह से श्रेणीगत मूल्यांकन के आधार पर हुआ है।

यह तो स्पष्ट ही है कि व्यक्तित्व की विशेषताएं निरन्तर चर हुआ करती हैं, जिसके एक छोर पर उस विशेषता का पूर्ण अभाव और दूसरे छोर पर विशेषता की अधिकतम मात्रा होती है, तथा प्रत्येक व्यक्ति में ये विशेषताएं इन्हीं दो श्रेणियों के बीच किसी बिन्दु या चरण पर स्थित रहती है। अतः, किसी व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण कर उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं को वैज्ञानिक तरीकों से निरन्तर मापनी के न्यूनतम से अधिकतम के बीच के किसी बिन्दु या चरण पर श्रेणीगत निर्धारण किया जाता है।

व्यक्तित्व गुणों के श्रेणीगत निर्धारण के उद्देश्य से ही मनोवैज्ञानिकों ने मनोमितिक विधियों का उपयोग कर श्रेणीगत मापनी का विकास किया है।

श्रेणीगत मापनी बनाने के लिए किसी व्यक्ति के व्यवहार का एक या अधिक निरीक्षक स्वाभाविक या जांच परिस्थिति में निरीक्षण करते हैं (साधारणतः, एक से अधिक निरीक्षक एक साथ काम करते हैं) तथा उनके व्यवहार का अवलोकन कर उनके व्यक्तित्व सम्बन्धी लक्षण को उनकी मात्रा के अनुसार श्रेणीगत मापनी के विभिन्न बिन्दुओं या चरणों पर श्रेणीगत करते हैं। जब एक से अधिक व्यक्तित्व पारखी एक ही व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन कर अपने-अपने ढंग से किसी विशेषता का श्रेणीगत निर्धारण करते हैं, तब उनका औसत निकाल लिया जाता है और वही औसत मूल्य उनके व्यक्तित्व विशेषता की मात्रा का सूचक होता है। श्रेणीगत निर्धारण प्रायः 5 बिन्दु की श्रेणियों में किया जाता है।

श्रेणीगत मापनी के प्रकार -

क. सापेक्षित श्रेणीगत मापनी-

जब किसी एक विशेषता के आधार पर कई व्यक्तियों का मूल्यांकन करना होता है तब सापेक्षिक श्रेणीगत मापनी का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, योग्यता क्रमानुसार विधि इस तरह की मापनी का एक विशिष्ट उदाहरण है। इस विधि में निर्णायक व्यक्तियों ाके उनमें किसी विशेषता की मात्रा के अनुसार क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि विभिन्न श्रेणियों में स्थित करता है। इस तरह से श्रेणीगत करने से दूसरे व्यक्तियों की तुलना में किसी व्यक्ति का क्रम में कौन-सा स्थान है इसका पता चलता है।

श्रेणीगत निर्धारण की इस प्रणाली में एक व्यावहारिक कठिनाई यह हे कि श्रेणी निर्धारण की पूरी अवधि में निर्णायक के लिए व्यक्तियों की संपूर्ण सूची को याद रखना आवश्यक हो जाता ह। इस कठिनाई को कुछ हद तक तक दूर किया जा सकता है, यदि विभिन्न व्यक्तियों के नामों को कार्डो पर लिखकर उन्हें क्रमशः अलग-अलग वर्गों, जैसे-उत्तम, मध्यम एवं खराब वर्गो में वर्गीकरण कर अलग-अलग खानों में रख दिया जाए। इसके बाद प्रत्येक उपवर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को अंकों के क्रम के अनुसार सजा दिया जाए। इस तरह से क्रम-व्यवस्था करने पर उत्तम समूह के सबसे कम अंक प्राप्त करने वाले का स्थान, मध्यम समूह के सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले के ठीक ऊपर होगा, और मध्यम वर्ग समूह के सबसे कम अंक वाले का स्थान खराब समूह के सर्वाधिक अंक पाने के ठीक ऊपर होगा तथा खराब समूह के सबसे कम प्राप्तांक वाले का स्थान सूची के सबसे नीचे के स्थान पर

होगा। इस प्रकार, विभिन्न वर्ग श्रेणी के व्यक्तियों को पुनर्व्यवस्थित क्रम में सजाने पर क्रम-व्यवस्था अथवा श्रेणीगत निर्धारण का काम पूरा हो जायेगा।

ख. निरपेक्ष श्रेणीगत मापनी-

निरपेक्ष श्रेणीगत मापनी में निर्णायक प्रत्येक व्यक्ति के हर एक गुण या विशेषता के लिए अंक प्रदान करता है और उस समूह विशेष के लिए अलग से 'स्थापित प्रतिमान' के साथ तुलना करता है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति को 7 या 5 श्रेणियों के बिन्दुओं पर उसकी स्वच्छता या ऐसी ही किसी अन्य विशेषता या गुण का श्रेणीगत निर्धारण कर किसी स्थानीय प्रमाण या आदर्श के साथ तुलना कर उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता है। परन्तु, इस तरह के श्रेणी निर्धारण-प्रक्रिया में दो तरह की त्रुटियों की संभावना रहती है।

पहली त्रुटि यह हो सकती ळै कि कोई निर्णायक किसी व्यक्ति के गुण विशेष के लिए बहुत अधिक अंक प्रदान कर सकता है, तो कोई बहुत कम या औसत।

दूसरी त्रुटि की संभावना निर्णायक के निर्णय में हेर-फेर यानी अस्थिरता के कारण हो सकती है। एक ही निर्णायक एक समय में किसी व्यक्ति को बहुत ईमानदार की श्रेणी में रखता है, तो दूसरे क्षण उसे साधारण ईमानदार की श्रेणी में रख सकता है, तो दूसरे क्षण उसे साधारण ईमानदार की श्रेणी में रख सकता है।

निरपेक्ष श्रेणीगत मापनी भी तीन अलग-अलग रूपों के हाते हैं-

वर्णनात्मक विशेषण मापनी

रेखीय मापनी

बाध्य चयन मापनी

वर्णनात्मक विशेष मापनी -

व्यक्तित्व पारखी व्यक्तित्व के गुणों के वर्णन करने वाले विशेषणों अथवा मुहावरों या कथनों की एक सूची बनाता है, जिसकी बाएं हाशिए में रिक्त स्थान अथवा बॉक्स बना रहता है। निर्णायक के अनुसार किसी व्यक्ति में जो विशेषण जितनी मात्रा में जिस श्रेणी के अनुरूप प्रतीत होता है, उपयुक्त बॉक्स में एक टिक का निशान लगाकर प्रकट करता है। निर्णायक के अनुसार किसी व्यक्ति में जिस विशेषण का अभाव मालूम पड़ता है उसके सामने वह कोई निशान नहीं लगाता। इस तरह की मापनी को स्पष्ट करने हेतु एक नमूना आगे दिया जा रहा है।

चेक कॉलम विशेषण

I IIII

सक्रिय एवं निष्क्रिय
सक्रिय पर दुर्बल
मधुरभाषी एवं हसमुख
अध्यवसायी एवं कुशल
साहसी एवं मिलनसार

उपर्युक्त ढंग की मापनी की कुछ सीमाएं भी हैं - एक कठिनाई तो विशेषणों के चुनाव करने से सम्बन्धित है। किस विशेषण को रखा जाए तथा किसे नहीं-इसका निर्णय करना प्रायः मुश्किल होता है। साथ ही, मापनी द्वारा कुल अंक प्राप्त करने हेतु विभिन्न पदों का वेटेड स्कोर यानी महत्ता अंक कैसे निर्धारित किया जाए, जिसमें किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सही-सही जानकारी प्राप्त हो सके, यह भी एक कठिन कार्य है। इसके लिए मापनी बनाने वाले व्यक्ति का कुशल एवं दक्ष होना जरूरी है। तीसरी कठिनाई सार्थकता से सम्बद्ध है। संभवतः, इन्हीं त्रुटियों के कारण इस तरह की मापनी का उपयोग हित अधिक प्रचलन में नहीं है।
रेखीय मापनी-श्रेणीगत मूल्यांकन का सबसे प्रचलित रूप रेखीय मापनी है। इसमें गुण विशेष का नाम एक पेज पर लिखा रहता है और उसके ठीक नीचे एक रेखा पृष्ठ की बाईं ओर से दाईं ओर तक खिंची रहती है और उस रेखा के नीचे कुछ मुहावरे या ऐसे वाक्य लिखे होते हैं जो व्यक्ति के उस गुण को प्रकट करते हैं अथवा उसका वर्णन करते हैं। इस तरह रेखा के बांए छोर के नीचे उक्त गुण के अति प्रशंसनीय, दाएं छोर के नीचे निंदनीय एवं बीच में औसत परिमाणसूचक कथन या मुहावरे लिखे जा सकते हैं। निर्णायक किसी व्यक्ति में उस गुण को जिस कथन के अनुरूप समझता है, रेखा के उसी स्थान पर एक निशान लगाकर उसका मूल्यांकन करता है, अर्थात उसे उस श्रेणी में स्थित करता है। इस तरह की मापनी में प्रायः 10 से 30 गुण रखे जाते हैं। मापनी के इस रूप को अच्छी तरह समझने के लिए नीचे दिए गए नमूने को देखें।

विद्यार्थी वर्ग-कार्य कितनी अच्छी तरह करता है, यह सुनिश्चित करें।				
सर्वोत्तम कार्य करता है	मामूली गलतियां होती है	साधारण	कार्य में अच्छा नहीं है	बहुत खराब

उपयुक्त नमूने में जिस विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जाता है, उसके नाम, वर्ग, पता आदि परिचयात्मक विवरणों के लिए भी स्थान निर्दिष्ट रहते हैं तथा इसी तरह से अन्य विशेषताओं, जैसे-उपस्थिति, अनुशासन, आज्ञाकारिता आदि गुणों का भी मूल्यांकन किया जा सकता है।
रेखीय मापनी का एक दूसरा प्रारूप भी निम्नलिखित प्रकार से बनाया जा सकता है।

गुण	रक्त रेखाऐं	वर्णनात्मक कथन
शिक्षण योग्यता	-	असाधारण रूप से तेजऔसत से
	-	ऊपरसामान्य
	-	सीखने का यत्न करता हैप्रायः
	-	समझने में भूलें करता है
	-	खराब
	-	बहुत खराब
	-	

रेखीय मापनी की एक विशेषता यह है कि निर्णायक के लिए व्यक्ति के किसी गुण विशेष के तीक्ष्ण भेदों का भी मूल्यांकन करना संभव होता है तथा कुल अंक प्राप्त करना भी आसान होता है। किन्तु, वर्णनात्मक विशेषण की ही त्रुटियों की तरह इस विधि से तैयार की जाने वाली मापनियों में भी वे सभी त्रुटियां या कठिनाईयां पाई जाती हैं। इसलिए, इस तरह की मापनियों का उपयोग भी बहुत अधिक प्रचलन में नहीं है।

बाध्य-चयन मापनी-श्रेणीगत मापनी का एक आधुनिक रूप बाध्य-चयन है। इसके उपयोग से यह लाभ है कि अन्य दोनों रूपों वाली मापनियों में निर्णायक से लिनिएंसी भूल होने की संभावना अत्यधिक रहती है। अर्थात, निर्णायक व्यक्ति के विभिन्न व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का मूल्यांकन करते समय उसके व्यक्तित्व के किसी गुण-विशेष के सम्बन्ध में जान-बूझकर अति या न्यून मात्रा मं होने का निर्णय देने की गलती कर देता हैं पर, बाध्य-चयन मापनी में इसकी संभावना कम हो जाती है। इस मापनी में व्यक्तित्व-सम्बन्धी प्रत्येक गुण के दो या चार (उससे अधिक भी) वर्णानात्मक कथन होते हैं, जिनमें आधे व्यक्ति पक्ष के और शेष आधे विपक्ष के होते हैं। निर्णायक उनमें से एक, जो उस व्यक्ति के साथ लागू होता है और एक, जो उसके साथ लागू नहीं होता है - दोनों का निर्णय करता है। इसे स्पष्ट करने के लिए आगे के उदाहरण को देखें -

नीचे भ्रातृभाव के गुण के सम्बन्ध में कुछ कथन है –

पूर्णरूपेण लागू होता है	बिल्कुल लागू नहीं होता	
		(क) भाइयों के साथ अच्छी तरह मेल-जोल रखता है। (ख) किसी भी कार्य करने की चेष्टा में अपनी योग्यता पर ही भरोसा करता है। (ग) भाईयों के साथ रहने में केवल आनन्द का अनुभव करता है (घ) भाईयों के साथ किसी विषय पर बातचीत में उसका प्रभाव दुर्बल है।

ऊपर के उदाहरण में निर्णायक को उस एक वर्णनात्मक कथन का चुनाव करना पड़ता है जो किसी व्यक्ति में भ्रातृभाव के गुण का सही-सही वर्णन करता है। साथ ही, उसे एक ऐसे कथन का भी चुनाव करना होता हे जो उस व्यक्ति में भ्रातृभाव के अभाव का सही-सही वर्णन करता है।

रेटिंग स्केल में रेटर के खोखले प्रभाव या हैलो इफेक्ट से रेटिंग प्रभावित होते देखा गया हैं फिर भी यदि रेटर (निर्णायक) कुशल एवं दक्ष हो और वस्तुपरक ढंग से व्यक्तित्व का मूल्यांकन करे तो इस विधि से भी व्यक्तित्व की जांच हो सकती हैं।

3.6 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय-

व्यक्तित्व का मापन कैसे किया जाय, यह प्रारंभ से ही मनोवैज्ञानिकों के बीच विवाद का विषय रहा है। इस विवाद के पीछे व्यक्तित्व के सम्प्रत्यय एवं परिभाषा के बीच मनोवैज्ञानिकों का उससे रहना है। व्यक्तित्व जैसे गूढ़ विषय को स्पष्ट करने में जहाँ 'प्रकार' एवं 'शीलगुण' दृष्टिकोण ने विवाद पैदा किया, वहीं सम्मिलित परिभाषाओं से भी बात नहीं बनी और आज भी स्पष्ट रूप से कहना मुश्किल है कि; वास्तव में व्यक्तित्व क्या हैं?

ब्लौक (1993) ने व्यक्तित्व के अध्ययन हेतु आंकड़ों के चार स्रोतों की चर्चा की है-जीवन अभिलेख आंकड़ा, प्रेक्षक आंकड़ा, परीक्षण आंकड़ा तथा आत्म-रिपोर्ट आंकड़ा। इन्हें क्रमशः एल-आंकड़ा, ओ-आंकड़ा,, एस-आंकड़ा तथा टी-आंकड़ा के रूप में भी जाना जाता है। आंकड़ों के स्वरूप से मापन के तरीके जुड़े होते है, अतः आंकड़ों के स्वरूप को लेकर उत्पन्न विवाद मापन पद्धतियों के विवाद बन गयी है।

कुछ मनोवैज्ञानिक एस-आंकड़ों को इसलिए अस्वीकृत कर देते हैं क्योंकि अपने बारे में स्वयं बतलाने में व्यक्ति न केवल झूठ बोलता है बल्कि कुछ अचेतन कारकों के चलते उसे विकृत भी कर देता है। दूसरी ओर, ऑलपोर्ट, केली सरीखे मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अगर किसी व्यक्ति के बारे में सही एवं यथार्थ ढंग से जानना है तो सबसे उत्तम तरीका यही है कि उसके बारे में दूसरों से पूछकर ज्ञान हासिल किया जाय (ओ-आंकड़ा) यानी, प्रेक्षक द्वारा रेटिंग कराया जाय। जॉन एवं रॉबिन्स (1994) तथा केन्नी (1994) ने भी प्रेक्षक के रेटिंग में प्रेक्षकों के आत्मगत कारकों का प्रभाव देखा और खारिज करने की बात की। ऐसे मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व मापन में किसी परिभाषित प्रयोगात्मक अवस्था में व्यवहार के वस्तुनिष्ठ मापन पर बल देते हैं (टी-आंकड़ा)। हालांकि इस तरह के आंकड़े के विरूद्ध कृत्रिम परिस्थितियों के कुप्रभाव की बात कही गई है जो स्वाभाविक परिस्थितियों के व्यवहार से भिन्न होते हैं।

व्यक्तित्व मापन के क्षेत्र में मूल विवाद नियमान्वेषी मापन तंत्र एवं भावमूलक मापन तंत्र की महत्ता को लेकर भी रहा है क्योंकि नियमान्वेषी मापन तंत्र मूलतः व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों एवं उनके अन्तःसम्बन्धों के वस्तुगत अध्ययन पर बल देता है तथा व्यक्तित्व की व्याख्या व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में करना है।

दूसरी ओर, भावमूलक मापन तंत्र व्यक्ति के भावों, विचारों, प्रेरणाओं, आवश्यकताओं एवं अचेतन की गहराइयों में दबे प्रेरक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व का मापन एवं उसकी व्याख्या पर बल देता है। इस मापन तंत्र के केन्द्र पर 'व्यक्ति' होता है, न कि उसका सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश। यानी, नियमान्वेषी मापन तंत्र जहाँ सामान्य

व्यक्ति से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है वहीं भावमूलक मापन तंत्र असामान्य व्यक्तियों से प्राप्त नैदानिक आंकड़ों पर।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन एक प्रक्षेपी मापनी नहीं है -

 (अ) टी.ए.टी. (ब) रोर्शा टेस्ट

 (स) श्रेणीगत मापनी (द) शब्द साहचर्य

2. व्यक्ति के जीवन की बीती घटनाओं पर आधारित सूचनाओं को कहते हैं -

 (अ) एल. आंकड़ा (ब) ओ-आंकड़ा

 (स) टी-आंकड़ा (द) एस-आंकड़ा

3.7 सार-संक्षेप-

1. व्यक्तित्व मापन से तात्पर्य व्यक्तित्व के शीलगुणों का पता लगाकर यह निर्धारित करना है कि किसी सीमा तक ये शीलगुण संगठित या असंगठित हैं।
2. व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी निम्नलिखित महत्वपूर्ण दृष्टिकोण हैं-समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण, शीलगुण दृष्टिकोण तथा प्रक्षेपी जाँच का दृष्टिकोण।
3. व्यक्तित्व परीक्षण की विधियों को मूलतः तीन वर्गो में बांटा गया है-व्यवहार अध्ययन की विधियां, नैदानिक विधियां तथा मनोभितिक विधियां।

व्यवहार का अध्ययन मूलतः दो परिस्थितियों में किया जाता है-स्वाभाविक परिस्थिति एवं जांच परिस्थिति।

नैदानिक विधियों के अन्तर्गत निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया जाता है-साक्षात्कार विधि, व्यक्ति-इतिहास विधि तथा प्रक्षेपण विधियां। प्रक्षेपण विधियों में टी.ए.टी., रोर्शा टेस्ट, सिम्बल एरेंजमेंट टेस्ट, शब्द साहचर्य, वाक्य-पूर्ति परीक्षण आदि का इस्तेमाल किया जाता है।

मनोमितिक विधियों में महत्वपूर्ण हैं-प्रश्नावली, आविष्कारिका तथा श्रेणीगत मापनियां

3.8 पारिभाषिक शब्दावली-

साक्षात्कार: आमने-सामने का परस्पर वार्तालाप।

प्रक्षेपण: अपने मनोभावों एवं विचारों को दूसरों पर आरोपित करना।

एल-आंकड़ा: व्यक्तित्व अध्ययन हेतु प्राप्त वैसा आंकड़ा या सूचना जो व्यक्ति के जीवन की बीती घटनाओं या उसके जीवन इतिहास से प्राप्त होता है।

ओ-आंकड़ा: व्यक्तित्व अध्ययन हेतु प्राप्त वैसा आंकड़ा जो का सूचनाओं से प्राप्त होता है जिन्हें व्यक्ति के व्यवहारों का प्रेक्षण कुछ विशेष व्यक्तियों द्वारा करके प्राप्त किया जाता है।

एस-आंकड़ा: वैसा आंकड़ा या सूचना जिसे व्यक्ति स्वयं अपने बारे में बताता है।

टी-आंकड़ा: वैसा आंकड़ा जो व्यक्ति के बारे में प्रयोगात्मक विधियों या मानकीकृत परीक्षण से प्राप्त होता है।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1. स 2. अ

3.10 संदर्भ-ग्रन्थ सूची:

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.

5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.

6 Eysenck – The scientific study of personality

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न:

1. व्यक्तित्व मापन से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों का वर्णन करें।
2. व्यक्तित्व मापन की नैदानिक विधियां कौन-कौन सी हैं? साक्षात्कार विधि के गुण-दोषों पर प्रकाश डालें।
3. प्रक्षेपण विधि से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व मापन में एर्शा परीक्षण के महत्व पर प्रकाश डालें।
4. टिप्पणी लिखें-

(क) व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय

(ख) व्यक्तित्व आविष्कारिका

(ग) प्रश्नावली

(घ) श्रेणीगत मापनियां

इकाई- 4 उपनिषद्, अभिधम्म एवं सांख्य में व्यक्तित्व की व्याख्या(Explanation of Personality in Upanishad, Abhi-dhamma and the Sankhya)

संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 उपनिषद् में व्यक्तित्व की व्याख्या

4.3.1 उपनिषद् क्या है ?

4.3.2 उपनिषद् में व्यक्तित्व

4.4 सांख्य में व्यक्तित्व की व्याख्या

4.4.1 सांख्य क्या है?

4.4.2 सांख्य के अनुसार व्यक्तित्व

4.5 अभिधम्ममें व्यक्तित्व की व्याख्या

4.5.1 अभिधम्म क्या है?

4.5.2 अभिधम्म में व्यक्तित्व

4.5.3 अभिधम्म में व्यक्तित्व के प्रकार

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत में शिक्षा की शुरुआत पूर्व वैदिक काल में हुई थी। यह प्रणाली गुरुकुलों के माध्यम से व्यक्तित्व विकास को महत्व देने पर केन्द्रितथी।एक केंद्र जो अभ्यास, प्रकृति, उपयुक्त वातावरण, महान व्यक्ति के जीवन, चरित्र और आदर्शों पर आधारित सही आचरण और शिक्षणपर बोध प्रदान करता है। वैदिक काल में शिक्षा, आत्म-साक्षात्कार और आत्म-सम्मान के माध्यम से शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का विकास करती थी और इसका अंतिम लक्ष्य आत्म- बोध का निर्माण करना था।

आज तक आपने व्यक्तित्व के जितने भी सिद्धांतो का अध्ययन किया है वे सभी सिद्धांत पश्चिम- केन्द्रित जैसे – यूरो- अमेरिकी मानसिकता में विकसित हुए हैं इसलिए इन सिद्धांतो को पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धांत भी कहा जाता है।इन सिद्धांतो के अतिरिक्त कुछ सिद्धांत ऐसे भी है जिनका विकास पूर्वी देशों जैसे – भारत, चीन तथा जापान आदि में हुआ और इन सिद्धांतो को पूर्वी व्यक्तित्व का सिद्धांत कहा गया। इस तरह के सिद्धांत का समावेश एशिया महाद्वीप में व्याप्त प्राचीन तथा दार्शनिक ग्रंथों में प्राप्त होता है।

भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्तित्व सिद्धांतों का विकास उपनिषद्, सांख्य एवम् अन्य दार्शनिक ग्रंथों ने विस्तृत रूप से किया है।भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्तित्व को 'जीवात्मा' कह कर संबोधित किया गया है। 'जीवात्मा' शब्द व्यक्तित्व केमनोदैहिक संरचना मात्र से संबद्ध न होकर उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक पहलू से भी सम्बंधित होता है। भारतीय दर्शन प्रणाली के अनुसार हर व्यक्ति के भीतर जीवात्मा का वास होता है। जो व्यक्ति में होने वाले सभी मनोदैहिक परिवर्तनों के दौरान भी अपनी मौलिक अवस्था में बना होता है। इस कारण व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आध्यात्मिक आत्म – अभिव्यक्ति के एक उपयुक्त चक्रीय के स्वरुप में कार्य करता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप

- उपनिषद् को जान पाएंगे।
- उपनिषद् में व्यक्तित्व के वर्णन को समझ सकेंगे।
- सांख्य दर्शन को समझ सकेंगे।
- सांख्य में व्यक्तित्व को किस प्रकार से दर्शाया गया है यह जान पाएंगे।
- बौद्ध दर्शन एवम् अभिधम्म को समझ सकेंगे।

- अभिधम्म में व्यक्तित्व को समझ सकेंगे।

4.3 उपनिषद् में व्यक्तित्व की व्याख्या

पिछले पृष्ठ में आपने जाना कि भारतीय दर्शन परम्परा के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने जाने वाले उपनिषद् ग्रंथ का सामान्य परिचय क्या था। इस इकाई के अतिरिक्त भी आप अन्य स्रोतों से भारतीय उपनिषद् परम्परा को जान कर अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकते है। अब आप जानेंगे कि उपनिषद् परम्परा क्या है और इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या किस प्रकार की गई है।

4.3.1 उपनिषद् क्या है ?

उपनिषद् हिन्दू धर्म के महत्त्वपूर्ण श्रुति सम्मत धर्मग्रन्थ हैं। ये वैदिक वाङ्मय के अभिन्न भाग हैं। ये संस्कृत में लिखे गये हैं। इनकी संख्या लगभग 108 है, किन्तु मुख्य उपनिषद् 13 हैं। हर एक उपनिषद् किसी न किसी वेद से जुड़ा हुआ है। इनमें परमेश्वर, परमात्मा – ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्ण वर्णन दिया गया है।

उपनिषदों में कर्मकाण्ड को 'अवर' कहकर ज्ञान को इसलिए महत्व दिया गया कि ज्ञान स्थूल (जगत और पदार्थ) से सूक्ष्म (मन और आत्मा) की ओर ले जाता है। ब्रह्म, जीव और जगत का ज्ञान पाना उपनिषदों की मूल शिक्षा है। भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र , उपनिषदों के साथ मिलकर वेदान्त की 'प्रस्थानत्रयी ' कहलाते हैं। ब्रह्मसूत्र और गीता कुछ सीमा तक उपनिषदों पर आधारित हैं। भारत की समग्र दार्शनिक चिन्तनधारा का मूल स्रोत उपनिषद-साहित्य ही है। इनसे दर्शन की जो विभिन्न धाराएं निकली हैं, उनमें 'वेदान्त दर्शन' का अद्वैत सम्प्रदाय प्रमुख है। उपनिषदों के तत्त्वज्ञान और कर्तव्यशास्त्र का प्रभाव भारतीय दर्शन के अतिरिक्त धर्म, संस्कृति और संस्कृति पर भी परिलक्षित होता है। उपनिषदों का महत्त्व उनकी रोचक प्रतिपादन शैली के कारण भी है। कई सुन्दर आख्यान और रूपकउपनिषदों में प्राप्त होते हैं।

उपनिषद् भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर है। उपनिषद् ही समस्त भारतीय दर्शनों के मूल स्रोत हैं, चाहे वो वेदान्त हो या सांख्य । उपनिषदों को स्वयं भी 'वेदान्त' कहा गया है। १७वीं सदी में दारा शिकोह ने अनेक उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद कराया। 19 वीं सदी में जर्मन तत्त्ववेता शोपेनहावर ने इन ग्रन्थों में जो रुचि दिखलाकर इनके अनुवाद किए वह सर्वविदित और माननीय हैं। विश्व के कई दार्शनिक उपनिषदों को सबसे महत्वपूर्ण ज्ञानकोश मानते हैं।

उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के मूल आधार हैं, भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के स्रोत हैं। वे ब्रह्मविद्या हैं। विभिन्न मानवीय आध्यात्मिक जिज्ञासाओं एवम् शंकाओं के ऋषियों द्वारा खोजे गए उत्तर हैं। वे चिन्तनशील ऋषियों की ज्ञानचर्चाओं का सार हैं। वे कवि-हृदय ऋषियों की काव्यमय आध्यात्मिक रचनाएँ हैं, अज्ञात की

खोज के प्रयास हैं, वर्णनातीत परमशक्ति को शब्दों में प्रस्तुत करने के प्रयास हैं और उस निराकार, निर्विकार, असीम, अपार को अन्तरदृष्टि से समझने और परिभाषित करने की अदम्य आकांक्षा के लेखबद्ध विवरण हैं।

4.3.2 उपनिषद् में व्यक्तित्व

उपनिषद, मनोवैज्ञानिक सामग्री का भंडार हैं।वेदों और उपनिषदों में मन की प्रकृति और उसके कार्यों और विभिन्न मनोवैज्ञानिक घटनाओं-सामान्य, असामान्य, रोगात्मक, अपसामान्य और आध्यात्मिक की व्याख्या की गई है।प्राचीन दार्शनिक परंपरा के अनुसार मुख्य विषय स्वयं, आत्मा, मानव स्वभाव, मानव अस्तित्व और मानव अनुभव के आसपास केंद्रित हैं।

वैदिक साहित्य में व्यक्तित्व के सिद्धान्तों की व्याख्या मिलती है। इसमें व्यक्तित्व को एक जटिल संरचना के रूप में माना गया है। जहाँ हृदय तथा मस्तिष्क को मन में सम्मिलित समझा गया। इसमें व्यक्तित्व के अन्य महत्वपूर्ण अंश के रूप में आत्मा जिसे वैयक्तिक आत्मन भी कहा गया, प्राण जिसे वैयक्तिक जीवन बल कहा गया, आदि को रखा गया। उपनिषद् जो वेद का सम्पादित एवम् पुनर्गठित प्रारूप है इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या वैदिक के समान ही है किन्तु इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या अधिक उत्तम दार्शनिक भाषा में प्रस्तुत की गई है।उपनिषद् में आत्मन को 'ब्रह्म' के तुल्य माना गया है। भोजन अर्थात अन्नम को जीवन, आत्मन तथा व्यक्तित्व का सारतत्व कहा गया है। यह वाक्, स्पर्श, रंग, स्वाद एवं गंध से परे होता है। इसलिए इसका ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष वर्णन अथवा अनुभव नहीं किया जा सकता है। साथ ही साथ इसका प्रत्यक्षण 'मानस' (जो आतंरिक अंग होता है) से भी नहीं हो पाता है। क्योंकि इसमें दुःख, सुख, दैन्य नामक कोई अनुभव नहीं होता है। इनके अनुसार आत्मा एक आधारभूत सत्य है जो समय, स्थान तथा मृत्यु के बंधन से मुक्त होता है। परन्तु आत्मा का अनुभव मनन या चिंतन द्वारा किया जा सकता है।

उपनिषद् में व्यक्तित्व का केन्द्र जीवात्मा होता है। व्यक्तित्व की संरचना के विभिन्न मूलभूत तत्व उस केंद्र के चारों तरफ आवरण का निर्माण करते हैं। आवरण के विभिन्न स्तर चेतन या 'पुरुष' के विभिन्न अनुवर्ती अवस्थाओं (Succeeding stage) के प्रति उत्तरदायी होते हैं। चेतन या पुरुष के इन विभिन्न अवस्थाओं को 'कोष' कहा गया है। उपनिषद् चिंतकों द्वारा चेतन या 'पुरुष' के विश्लेषण के बाद 'पुरुष' के पाँच आवरण (Sheaths or Koshas) की पहचान की गई है। उपनिषद् में व्यक्तित्व के सैद्धांतिक पहलुओं पर चर्चा पंचकोश सिद्धांत के अंतर्गत की गई है।

पंचकोश सिद्धांत: पांच गुना समग्र आत्म-विकास के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है।

तालिका 1 : पंच कोष (जीवन की कोशिका-इकाई) मानव व्यक्तित्व के पांच कोष हैं

कोश का नाम	**पोषित**	**कार्य**
अन्नमय	भोजन	शारीरिक
प्राणमय:	जैव-ऊर्जा	मनोवैज्ञानिक
मनमय:	शिक्षा	मानसिक
विजनमय:	अहंकार	बौद्धिक
आनंदमय:	भावनाएँ	आध्यात्मिक

अन्नमय कोष – इसमें दैहिक शरीर (Physical Body) तथा ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense Organs) सम्मिलित होती हैं। यह आत्मन (Self) का बाह्य आवरण या जैव- दैहिक आवरण होता है और अन्य सूक्ष्म तहों या आवरणों के लिए एक अल्पकालिक पर्दे का काम करता है। इसमें पाँच कर्मेन्द्रिय (Organs) अर्थात् संभाषण तंत्र, हाथ, पैर, उत्सर्जन अंग एवम् जनन अंग सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense Organs) अर्थात् आँख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा भी सम्मिलित होते हैं।

प्राणमय कोष – व्यक्ति के जीवन को बनाए रखने वाले पाँच जैव बल (Vital Force) अर्थात् वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा आकाश इसमें सम्मिलित होते हैं। इसलिए इसे जैव आवरण (Vital Sheath) भी कहते हैं।

मनोमय कोष – जैव आवरण के बाद आत्मन की यह तीसरी तह होती है जिसे मानसिक आवरण (Mental Sheath) भी कहा जाता है। मन व्यक्तित्व का एक मुख्य अंग होता है जो आकारहीन एवम् स्थानहीन होता है। यह अनुभूतियों को प्राप्त करने वाला होता है साथ ही साथ यह अनुभूतियों को संकलित करने का भी कार्य करता है।

विज्ञानमय कोष – आत्मन का यह बौद्धिक आवरण (Intellectual Sheath) होता है और इसका सम्बन्ध बुद्धि से होता है। इसके द्वारा विभेदनात्मक कार्य किये जाते हैं। मन, बुद्धि एवम् अहंकार या अहम्- भाव (Ego-Sense) मानव व्यक्तित्व के तीन मानसिक तत्व है। जिस इच्छाशक्ति द्वारा स्वार्थ सिद्धि करने वाला कार्य किया जाता है, उसे अहंकार कहा जाता है।

आनंदमय कोष – यह आत्मन या जीवात्मा का आनंदमय या सुखद आवरण है और इसे व्यक्तित्व की अंतिम पराकाष्ठा कहा जाता है।

उपनिषद्कारों ने मानव अनुभूतियों या चेतना की चार अवस्थाओं का भी वर्णन किया है जिसमें जीवात्मा के स्वरुप को समझने में समुचित सहायता मिलती है। इन चिंतकों के अनुसार 'चेतन', शरीर या मन में सम्मिलित

नहीं होता है बल्कि यह आत्मन में निहित होता है। चेतन में इस प्रकार की शक्ति होती है जिससे यह वैयक्तिक स्तर पर सभी दैहिक एवम् मानसिक क्रियाओं को तथा ब्रह्माण्डीय स्तर (Cosmic Level) पर बाह्य ब्रह्माण्ड (External Universe) को उज्जवलित करता है।

उपनिषद्कारों द्वारा चेतना के निम्नांकित चार स्तर या अवस्थाएं बतलाए गए हैं जिनमें जीवात्मा के स्वरूप को समझने में समुचित सहायता मिलती है।

जाग्रतावस्था- इस अवस्था में 'चेतन' बाह्य वस्तुओं की पहचान करता है तथा इसमें ज्ञानेन्द्रियाँ मन के सहित सक्रिय हो उठती हैं। मन बाह्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य उद्दीपकों के विषय में सूचना प्राप्त करता है तथा उसे संकलित करता है। इस अवस्था में जीवात्मा 'विश्व' कहलाता है और वह बाह्य इन्द्रियों द्वारा सांसारिक विषयों का भोग करता है।

स्वप्नावस्था- इस अवस्था में व्यक्ति को सूक्ष्म आतंरिक वस्तुओं का ज्ञान होता है या मन द्वारा प्रत्यक्ष संज्ञान होता है। इस अवस्था में ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य दुनिया से सूचनाओं को ग्रहण नहीं करती है फिर भी मन सक्रिय रहता है तथा जागृतावस्था से प्राप्त अनुभूतियों पर कार्य करते रहता है। इस अवस्था में चेतन अंशतः सोया तथा अंशतः जाग्रत होता है तथा इनकी अनुभूतियाँ बाह्य वस्तुओं के स्थान पर गत अनुभूतियों द्वारा अधिक अनुबंधित होती है। इस अवस्था में पुरुष अन्नमय कोष से स्वतंत्र हो जाता है। यहाँ जीवात्मा को तेजस कहा जाता है। वह आतंरिक वस्तुओं को सूक्ष्म रूप से जानता है तथा उसका भोग करता है।

गहरी निद्रावस्था- इस अवस्था में सभी अनुभूतियाँ आंतरिक आत्मन तथा सार्विक आत्मन दोनों से ही मिल जाती है। ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय नहीं रहती है परन्तु आत्मन अपनी शक्ति से प्रत्यक्षण कर पाता है। यह परमानन्द की अवस्था होती है जहाँ न तो कोई इच्छा होती है और न ही कोई दुविधा होती है। यह अवस्था व्यक्ति के सतही चेतन को बिना किसी चेतन के ही ज्ञात होती है। इस अवस्था में पुरुष प्राणमय एवं मनोमय स्तरों से स्वतंत्र हो जाता है। अब पुरुष अपनी मौलिक अवस्था अर्थात परमानन्द अवस्था में प्रवेश कर जाता है। इस अवस्था में जीवात्मा को 'प्रज्ञा' कहा जाता है जो शुद्ध चित्त के रूप में मौजूद रहता है।

तुरिया अवस्था- यह पूर्ण एवं अपरिवर्तित अवस्था होती है। इसे सतत पहचान की अवस्था भी कहते हैं। यह सभी तरह के परिवर्तनों के बीच भी चलते रहता है। इसका न कोई आदि होता है न कोई अंत। वास्तव में यह आत्म -अनुभूति की अवस्था होती है। इस अवस्था में व्यक्ति का व्यक्तित्व सभी तरह की सीमाओं एवं इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और व्यक्ति सभी तरह के दुष्कर्मों एवं अन्य सामान्य प्रभावों से स्वतंत्र हो जाता है। इस अवस्था में जीवात्मा को 'आत्मा' कहा जाता है।

उपरोक्त चारों अवस्थाओं का सारतत्व यह है कि उपनिषद् के चिंतकों के अनुसार आत्मन शरीर या जागृतावस्था या स्वप्नावस्था के विभिन्न मानसिक अवस्थाओं के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता है। इतना ही नहीं, वे सार्वत्रिक चेतना की सत्यता को ही सभी तरह की वैयक्तिक चेतनाओं का आधार मानते हैं और साथ ही साथ वे यह भी स्वीकार करते हैं कि गहरी निद्रावस्था जो सभी तरह की अनुभूतियों से परे होती है, में भी यह चलते रहता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उपनिषद् के अनुसार मानव व्यक्तित्व का सारतत्व जीवात्मा होता है जो सूक्ष्म एवं ठोस शारीरिक अवस्थाओं के संयोग से, दुखद एवं सुखद अनुभूतियों को अनुभव करता है। इसका वास्तविक रूप पाँच आवरणों जिससे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है, ढका रहता है। आत्मन अंशतः मानसिक आवरण में अहम् के रूप में अभिव्यक्त होता है परन्तु बिना अहम् की दुनियाँ में पाँच चीज अर्थात पदार्थ, जीवन, चेतन, बुद्धि एवं परमानन्द भी पाए जाते हैं। इसमें से प्रथम दो का सम्बन्ध दैहिक आत्मन, अगले दो का सम्बन्ध मानसिक आत्मन तथा अंतिम का सम्बन्ध आध्यात्मिक आत्मन से होता है। धीरे-धीरे जीवात्मा निष्काम आत्मज्ञान को अनुभूत करके शुद्ध चेतन में विलीन हो जाता है।

4.4 सांख्यमें व्यक्तित्व की व्याख्या

सांख्य में व्यक्तित्व को किस तरह से दर्शाया गया है यह जानने से पहले हमे यह जानना आवश्यक है, सांख्य किसे कहते है?

4.4.1 सांख्य क्या है?

भारतीय दर्शन के छः प्रकारों में से **सांख्य** (सांख्य) भी एक है जो प्राचीनकाल में अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रचलित हुआ था। यह अद्वैत सिद्धांत से सर्वथा विपरीत मान्यताएँ रखने वाला दर्शन है। इसकी स्थापना करने वाले मूल ऋषि कपिल माने जाते हैं। 'सांख्य' का शाब्दिक अर्थ है - 'संख्या सम्बंधी' या विश्लेषण। इसकी सबसे प्रमुख धारणा सृष्टि के 'प्रकृति एवम् पुरुष' के अन्तरसंबंध से निर्मित होने की है, यहाँ प्रकृति (यानि पंचमहाभूतों से बनी) जड़ है और पुरुष (यानि जीवात्मा) चेतन। योग शास्त्रों के ऊर्जा स्रोत (ईडा – पिंगला), शाक्तो के शिव -शक्ति के सिद्धांत इसके समानान्तर दीखते हैं।

किसी समय भारतीय संस्कृति में सांख्य दर्शन का स्थान अत्यन्त ऊँचा था। देश के उदात्त मस्तिष्क सांख्य की विचार पद्धति से सोचते थे। महाभारतकार ने यहाँ तक कहा है कि इस लोक में जो भी ज्ञान है वह सांख्य से आया है। (*ज्ञानं च लोके यदिहास्ति किञ्चित् साङ्ख्यागतं तच्च महन्महात्मन्* (शांति पर्व 301.109))। वस्तुतः महाभारत में दार्शनिक विचारों की जो पृष्ठभूमि है, उसमें सांख्यशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। शान्ति पर्व

के कई स्थलों पर सांख्य दर्शन के विचारों का अत्यन्त काव्यमय और रोचक ढंग से उल्लेख किया गया है। सांख्य दर्शन का प्रभाव गीता में प्रतिपादित दार्शनिक पृष्ठभूमि पर पर्याप्त रूप से विद्यमान है।

इसकी लोकप्रियता का कारण एक यह अवश्य रहा है कि इस दर्शन ने जीवन में दिखाई पड़ने वाले वैषम्य का समाधान त्रिगुणात्मक प्रकृति की सर्वकारण रूप में प्रतिष्ठा करके बड़े सुंदर ढंग से किया। सांख्याचार्यों के इस प्रकृति-कारण-वाद का महान गुण यह है कि पृथक्-पृथक् धर्म वाले सत्व, रजस तथा तमस तत्वों के आधार पर जगत् की विषमता का किया गया समाधान बड़ा बुद्धिगम्य प्रतीत होता है। किसी लौकिक समस्या को ईश्वर का नियम न मानकर इन प्रकृतियोंके तालमेल बिगड़ने और जीवों के पुरुषार्थ न करने को कारण बताया गया है। यानि, सांख्य दर्शन की सबसे बड़ी महानता यह है कि इसमें सृष्टि की उत्पत्ति भगवान के द्वारा नहीं मानी गयी है बल्कि इसे एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में समझा गया है और माना गया है कि सृष्टि अनेक - अनेक अवस्थाओं (phases) से होकर गुजरने के बाद अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई है। कपिलाचार्य को कई अनीश्वरवादी मानते हैं पर 'भगवद्गीता' और सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रंथों में इस धारणा का निषेध किया गया है।

4.4.2 सांख्य के अनुसार व्यक्तित्व

सांख्य शाखा द्वारा व्यक्तित्व की एक तात्विक व्याख्या उपस्थित की गयी है। सांख्य सिद्धांत के अनुसार मानव व्यक्तित्व 'पुरुष' तथा प्रकृति दोनों की अन्तः क्रिया का परिणाम होता है जबकि जीव अर्थात आनुभविक आत्मन इन दोनों के मिलने से बनता है। 'पुरुष' से सम्बंधित दैहिक एवं मानसिक जीव 'प्रकृति' की ही अभिव्यक्ति होता है परन्तु 'पुरुष' के बिना प्राणी जीवनहीन हो जाता है। प्रकृति को जड़ कहा गया है क्योंकि वह मूलतः जड़ पदार्थ है। जड़ होने के कारण 'प्रकृति' में चेतना का आभाव पाया जाता है। चेतना का आभाव होने के बावजूद प्रकृति सक्रिय है। प्रकृति में क्रियाशीलता निरंतर दीख पड़ती है क्योंकि उसमें गति अन्तर्भूत होती है। 'पुरुष' चेतन होता है। इसे अधिकांशतः भारतीय दार्शनिकों ने 'आत्मा' कहा है।

सांख्य तंत्र में व्यक्तित्व के सम्पूर्ण मनोदैहिक एवं आध्यात्मिक विमा का विश्लेषण 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' के स्वभाव तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों पर निर्भर करता है। सांख्य सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति के मनोदैहिक शरीर गठन का निर्माण सम्पूर्ण या बाह्य शरीर तथा सूक्ष्म शरीर जो मानसिक अंगों का वाहकहोता है, से बना होता है। ये मानसिक अंग व्यक्ति के लिए इसलिए काफी महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इनसे व्यक्ति का आतंरिक जीवन का निर्धारण होता है। इस स्कूल में बाह्य अंगों को आतंरिक अंगों का प्रमुख साधन माना गया है। बाह्य अंगों द्वारा बाहर के सभी तरह के उद्दीपकों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है लेकिन उनपर विशेष कार्य आतंरिक अंगों द्वारा ही होता है। इस तरह के आतंरिक तथा बाह्य अंग एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करते हैं।

सांख्य सिद्धांत में व्यक्तित्व के त्रयोदश अंग बतलाए गए हैं। इनमें दस बाह्य अंग हैं अर्थात पाँच प्रत्यक्षण के अंग है, पाँच कार्य करने के अंग है तथा तीन आतंरिक अंग है। प्रत्यक्षण के पाँच अंगों को ज्ञानेन्द्रिय तथा कार्य के पाँच

अंगों को कर्मेन्द्रिय कहा जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होता है तथा पाँच कर्मेन्द्रियों द्वारा व्यक्ति को इन उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करने तथा समझने में विशेष सहायता प्राप्त होती है। इन मनोदैहिक अंगों के अतिरिक्त व्यक्ति में ठोस दैहिक विशेषताएँ होती है जिनके पाँच तत्त्व होते हैं - आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी। व्यक्ति के तीन आतंरिक अंगों के नाम इस प्रकार है - मन, अहंकार तथा बुद्धि। मन द्वारा चिंतन का कार्य होता है, अहंकार से व्यक्ति में आत्म - चेतना का नियंत्रण होता है तथा बुद्धि ज्ञान शक्ति का अंग होता है।बाह्य अंग वस्तुओं के साथ सीधे संपर्क में आते हैं परन्तु बाह्य अंगों की प्रतिक्रिया के माध्यम से ही आतंरिक अंग उन्हें समझ पाते हैं। उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान की 'मन' द्वारा जाँच की जाती है, 'अहंकार' द्वारा उसके महत्त्व का निर्धारण किया जाता है तथा बुद्धि द्वारा उसकी उपयोगिता की जाँच की जाती है। सभी ज्ञानेन्द्रियाँ 'मन', 'अहंकार' तथा 'बुद्धि' के लिए ही कार्य करती हैं परन्तु बुद्धि तत्व 'पुरुष' के अनुभव एवं सुख के लिए कार्य करता है। बुद्धि 'पुरुष' एवं 'प्रकृति' के सूक्ष्म अंतर को तो पता लगाता ही है साथ ही साथ इसे सभी तरह की गत अनुभूतियों एवं स्मृति का संग्रह गृह होता है। इस तरह से यह कहा जा सकता है कि बाह्य ज्ञानेन्द्रिय व्यक्ति को अनिर्धार्य तथ्य प्रदान करती हैं, 'मन' उसे निर्धार्य में बदल देता है तथा बुद्धि इसे निश्चित ज्ञान में बदल देती है।

'जीवात्मा' में स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों गुण होते हैं। स्थूल गुण को व्यक्ति अपने माता - पिता से प्राप्त करता है तथा मृत्यु के बाद वह समाप्त हो जाता है। सूक्ष्म गुण अपनी चेतन अवस्था में दिन - प्रतिदिन की क्रियाओं के रूप में कार्य करते हैं परन्तु अपने गहरे अर्द्धचेतन रूप में इसमें सिर्फ वर्तमान चेतनही नहीं होता है बल्कि अनगिनत गत अनुभूतियाँ भी संचित होती हैं। इसे 'संस्कार' कहा जाता है। 'संस्कार' बुद्धि में संचित रहता है तथा सूक्ष्म वस्तु को एक जीवन से दूसरी जीवन में स्थानांतरण करते रहता है।

सांख्य सिद्धांत में व्यक्तित्व के स्वरुप को समझने के लिए गुण के संप्रत्यय को भी महत्वपूर्ण बतलाया गया है। 'गुण' को 'प्रकृति' का तत्व या द्रव्य माना गया है। गुण प्रकृति की सत्ता का निर्माण करते हैं। गुणों के आभाव में प्रकृति की कल्पना असंभव है। सांख्य सिद्धांत में तीन तरह के गुणों का वर्णन किया गया है जिनसे व्यक्ति की चित्तप्रकृति का निर्धारण होता है। वे तीन गुण निम्नांकित हैं।

सत्व	रजस	तमस
प्रीति आनंद प्रकाश रोशनी	अप्रीति असहमति प्रव्रत्ति गतिविधि	विसिदा निराशा नियम संयम

सत्त्व- सत्व गुण "आध्यात्मिक गुण" है। जब सत्व गुण प्रबल होता है, तो व्यक्ति में अच्छा और देखभाल करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। मन और इंद्रियों की एक दृढ़ स्थिरता होती है। जब सत्त्व का प्रसार होता है, तो

व्यक्ति के माध्यम से ज्ञान का प्रकाश चमकता है। सात्विक बुद्धि वांछनीय और अवांछनीय, कर्तव्यपरायण और अकर्तव्यपरायण के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से समझती है। जब सत्त्व प्रधान होता है तो व्यक्ति कर्तव्य के रूप में अपना कार्य करता है। शांत समझ के साथ कोई भी कार्य किया जाता है और व्यक्ति संदेह से मुक्त होता है। जब सत्त्व प्रधान होता है तो व्यक्ति दैवीय और आध्यात्मिक मूल्यों का वहन करता है।

शक्ति, गुरुओं का सम्मान, अहिंसा, ध्यान, दया, मौन, आत्मसंयम और चरित्र की पवित्रता सात्विक गुण की प्रेरक शक्ति है। सात्विक गुण की एक सीमा यह है कि यह व्यक्ति को सुख और ज्ञान के मोह में बांधता है। सत्व गुण अपने साथ अच्छाई की समस्या भी लेकर आता है।

तमस- तमस गुण "भौतिक गुण" है। तमस आशा और भ्रम से उत्पन्न होता है। तमस अस्पष्टता, आलस्य, कल्पना और दृढ़ता पैदा करता है। तमस गुण प्रधान लोगों के लक्षण सतर्क, आशंकित और प्रतिशोधी होते हैं। तामसिक गुण मोहभंग और निंदक का भी संकेत देता है। जब तामसिक गुण प्रबल होता है, तो व्यक्ति को सुख की प्राप्ति होती है जो आत्म-भ्रम और गलतफहमी में उत्पन्न और समाप्त होती है। तमस गुण की सकारात्मक अभिव्यक्ति बहुत मेहनत करने की इच्छा है। इन विशेषताओं की सीमाओं में से एक है संपत्ति और आत्म-केंद्रित प्रवृत्तियों के प्रति लगाव।

रजस- रजस गुण "सक्रिय गुण" है। रजस गुण को वासना और इच्छा को जन्म देने वाला माना जाता है, यह लोभ, गतिविधि, कार्यों के उपक्रम, बेचैनी और इच्छा का कारण बनता है। रजस प्रधान व्यक्ति आसक्ति से भरा होता है, कर्म के फल की लालसा से भरा होता है। स्वार्थ के प्रभुत्व के कारण बुद्धि सही-गलत का विकृत चित्र देती है। रजस प्रधान व्यक्ति द्वारा त्याग और वैराग्य को बढ़ावा नहीं दिया जाता है। उत्साह, रुचि और गतिविधि इस गुण के कुछ गुण हैं।

सत्त्व, तमस तथा रजस गुण स्थिर गुण न होकर सतत आपस में अंत:क्रिया करते हुए परिवर्तनशील दिखते है। इन तीनों में से कोई एक व्यक्तित्व में प्रबल हो सकता है और इस प्रबलता का परिणाम यह होता है कि उस व्यक्ति में विशेष तरह का व्यवहार तथा चरित्र का निर्माण होता है। यद्यपि मौलिक रूप से ये तीनों गुण एक – दूसरे से अलग एवम् भिन्न होते है, वे एक साथ अंत:क्रिया करते है तथा व्यक्तित्व पर उनका प्रभाव अचेतन रूप से पड़ता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि सांख्य शाखा द्वारा व्यक्तित्व का प्रतिपादित सिद्धांत एक वास्तविक एवम् वस्तुनिष्ठ सिद्धांत है। इसमें व्यक्तित्व के एक दैहिक आधार की पहचान की गयी है तथा इसमें वैयक्तिक विभिन्नता को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है।

4.5 अभिधम्ममें व्यक्तित्व की व्याख्या

अभिधम्म में व्यक्तित्व को किस तरह से दर्शाया गया है यह जानने से पहले हमे यह जानना आवश्यक है, अभिधम्म क्या है?

4.5.1 अभिधम्म क्या है?

बुद्ध के निर्वाण के बाद उनके शिष्यों ने उनके उपदिष्ट 'धर्म' और 'विनय' का संग्रह कर लिया। अट्ठकथा की एक परम्परा से पता चलता है कि 'धर्म' से दीर्घनिकाय आदि चार निकायग्रन्थ समझे जाते थे; और धम्मपद सुत्तनिपात आदि छोटे-छोटे ग्रंथों का एक अलग संग्रह बना दिया गया, जिसे 'अभिधर्म' (अतिरिक्त धर्म) कहते थे। जब धम्मसंगणि जैसे विशिष्ट ग्रंथों का भी समावेश इसी संग्रह में हुआ (जो अतिरिक्त छोटे ग्रंथों से अत्यंत भिन्न प्रकार के थे), तब उनका अपना एक स्वतंत्र पिटक- 'अभिधर्मपिटक' बना दिया गया और उन अतिरिक्त छोटे ग्रंथों के संग्रह का 'खुद्दक निकाय' के नाम से पाँचवाँ निकाय बना।

'अभिधम्मपिटक' में सात ग्रंथ हैं-

धम्मसंगणि, विभंग, जातुकथा, पुग्गलपंत्ति, कथावत्थु, यमक और पट्ठान।

विद्वानों में इनकी रचनाकाल के विषय में मतभेद है। प्रारंभिक समय में स्वयं भिक्षुसंघ में इस पर विवाद चलता था कि क्या अभिधम्मपिटक बुद्धवचन है।

पाँचवें ग्रंथ कथावत्थु की रचना अशोक के गुरु ‘मोगालिपुत्त तिस्स’ ने की, जिसमें उन्होंने संघ के अंतर्गत उत्पन्न हो गई मिथ्या धारणाओं का निराकण किया। बाद के आचार्यों ने इसे 'अभिधम्मपिटक' में संगृहीत कर इसे बुद्धवचन का गौरव प्रदान किया।

शेष छह ग्रंथों में प्रतिपादन विषय समान हैं। पहले ग्रंथ धम्मसंगणि में अभिधर्म के सारे मूलभूत सिद्धांतों का संकलन कर दिया गया है। अन्य ग्रंथों में विभिन्न शैलियों से उन्हीं का स्पष्टीकरण किया गया है।

4.5.2 अभिधम्म में व्यक्तित्व

बौद्ध धर्म ने व्यक्तित्व प्रकारों (पाली: पुगला-पन्नत्ती), व्यक्तित्व लक्षणों और अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसूया) का एक जटिल मनोविज्ञान विकसित किया है।यह ज्यादातर बौद्ध अभिधर्म साहित्य में विकसित किया गया था और इसकी प्रमुख चिंता शैक्षणिक और सामाजिक उद्देश्यों के लिए विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की पहचान करना था।कहा जाता है कि बुद्ध ने प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व और मानसिक विकास के स्तर के आधार पर विभिन्न शिक्षाओं को कुशलता से सिखाया था।व्यक्तित्व मनोविज्ञान का विकास अभिधार्मिकों के लिए महत्वपूर्ण था जिन्होंने बौद्ध शिक्षाओं और अभ्यास को प्रत्येक व्यक्तित्व प्रकार के अनुकूल बनाने की मांग की ताकि लोगों को

उनके मानसिक दोषों से शुद्ध करके निर्वाण के लिए बेहतर तरीके से तैयार किया जा सके। व्यक्ति का बौद्ध दृष्टिकोण आत्म-शिक्षा से घिरा हुआ है, जिसमें कहा गया है कि किसी व्यक्ति के लिए कोई अपरिवर्तनीय कोर नहीं है, कोई आत्मा (आत्मन) या अहंकार नहीं है।

अभिधम्म सिद्धांत में व्यक्तित्व का तुल्य शब्द 'अट्टा' या आत्मन होता है। आत्मन स्थाई नहीं होता है। सचमुच में यह अवैयक्तिक प्रक्रियाओं का योग होता है। इन्ही प्रक्रियाओं के सम्मिश्रण से व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। वास्तव में आत्मन शारीरिक अंगों, विचारों, संवेदनाओं, इच्छाओं तथा स्मृतियों आदि का योग होता है। मन में एक ऐसी शक्ति है होती है जो सतत निरंतरता प्रदान करती है वह शक्ति है 'भाव'। हमारी चेतना का प्रत्येक अनुक्रमिक क्षण बीते हुए क्षण द्वारा निर्धारित होता है और इसके द्वारा फिर आने वाले क्षण का निर्धारण होता है। 'भाव', चेतन के वर्तमान क्षण तथा आने वाले क्षण के बीच सम्बन्ध जोड़ता है। व्यक्ति आत्मन की पहचान उसके विचारों, स्मृतियों या प्रत्यक्षण द्वारा करता है हालाँकि ये सभी क्रियायें उस सतत प्रवाह के ही भाग होते है। अभिधम्म यह मानता है कि मानव व्यक्तित्व एक नदी की भांति होता है जिसका एक सतत रूप होता है, जिसकी एक विशिष्ट पहचान होती है। इस नदी के प्रवाह की प्रत्येक बूंद क्षण -क्षण परिवर्तित होते रहती है। शायद यही कारण है कि कोई भी वर्त्तमान क्षण पहले बीते क्षण से भिन्न होता है। इस दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि कर्ता कार्य से अलग नहीं होता तथा प्रत्यक्षक प्रत्यक्षण से भिन्न नहीं होता है और चेतना से परे कोई चेतन वस्तु नहीं है।

बौद्ध- मत में व्यक्तित्व के अध्ययन का संबद्ध अचेतन या अहम् जैसे संप्रत्ययो से न होकर घटनाओं के क्रम से होता है। सबसे मौलिक घटना मानसिक अवस्था तथा संवेदी वस्तु के बीच का सम्बन्ध होता है। जैसे- किसी सुन्दर दृश्य(संवेदी वस्तु) को देखकर विशेष इच्छा का भाव (मानसिक अवस्था) का उत्पन्न होना एक घटना का उदाहरण है। व्यक्ति की मानसिक अवस्थायें एक क्षण से दूसरे क्षण सतत परिवर्तित होते रहती है और इस तरह के सतत परिवर्तित होने वाली मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन करने के लिये अंतनिरीक्षण विधि का उपयोग किया जाता है जिसमें व्यक्ति स्वयं इन मानसिक अवस्थाओं का एक क्रमबद्ध प्रेक्षण करता है। अभिधम्म में न केवल मानसिक अवस्थाओं को ही एक क्षण से दूसरे क्षण परिवर्तित होते कहा गया है बल्कि संवेदी वस्तुओं को भी एक क्षण से दूसरे क्षण परिवर्तित होते देखा गया है। जैसे - एक व्यक्ति जब किसी वस्तु पर (जैसे मेज पर रखा गुलदस्ता) पर ध्यान देता है तो उसके चेतन में न केवल वह गुलदस्ता ही अपितु इर्द -गिर्द की अन्य वस्तुओं जैसे - पुस्तक, टेबल लैम्प आदि पर भी ध्यान चला जाता है। इसके अतिरिक्त इन संवेदी वस्तुओं के साथ विभिन्न प्रकार के चिंतन एवं स्मृतियाँ भी मिल जाती है।

अभिधम्म में पाँच सामान्य इन्द्रियों के अतिरिक्त एक छठी इन्द्रिय भी होती है जिसे 'चिंतन' कहा गया है। जिस तरह से आवाज या दृश्य मानसिक अवस्था की क्रिया हो सकती है ठीक उसी तरह से 'चिंतन' भी मानसिक अवस्था की एक क्रिया हो सकती है। प्रत्येक मानसिक अवस्था में विशेषताओं का गुच्छ या समुच्चय पाया जाता

है जिसे मानसिक कारक कहा जाता है। अभिधम्म सिद्धांत के अनुसार ऐसे मानसिक कारकों की 53 श्रेणियाँ होती है। किसी एक मानसिक अवस्था में इन मानसिक कारकों का एक उपसेट होता है। प्रत्येक मानसिक अवस्था का विशेष गुण का निर्धारण उन कारकों के माध्यम से होता है जिनसे मिलकर वह मानसिक अवस्था बनी होती है। पश्चिमी मनोविज्ञान के सामान ही अभिधम्म सिद्धांतवादियों का मत है कि मानसिक अवस्था गत मनोवैज्ञानिक क्षण के अतिरिक्त अंशतः जैविक तथा परिस्थितिजन्य कारकों से भी प्रभावित होता है फिर प्रत्येक मानसिक अवस्था अगली मानसिक अवस्था में आने वाले कारकों का निर्धारण करते है।

मानसिक कारकों की कुंजी कर्म है जिसे पाली भाषा में काम कहा जाता है। अभिधम्म में 'काम' एक तकनीकी पद है क्योंकि प्रत्येक काम मानसिक अवस्था से प्रभावित होता है। अन्य पूर्वी मनोविज्ञान के समान अभिधम्म में भी कोई भी व्यवहार नैतिक रूप से तटस्थ होता है। इससे नैतिक स्वरुप का निर्धारण उस व्यवहार को करने वाले व्यक्ति की अभिप्रेरणा पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति द्वारा किया गया ऐसा कार्य जिसमें मानसिक कारकों का एक नकारात्मक मिश्रण होता है (जैसे -जब व्यक्ति कोई कार्य बुरे भाव से करता है) पाप है, भले ही प्रेक्षक को वह कार्य बुरा न दिखे।

अभिधम्म सिद्धांत में सभी मानसिक कारकों को दो भागों में बांटा गया है- कुशल कारक तथा अकुशल कारक। कुशल कारक में उन प्रत्यक्षणात्मक, संज्ञानात्मक तथा भावात्मक मानसिक कारकों को रखा गया है जो शुद्ध, स्वस्थ्य एवम् हितकर होते है। उसी तरह से अकुशल कारक में उन प्रत्यक्षणात्मक, संज्ञानात्मक तथा भावात्मक मानसिक कारकों को रखा गया है जो अशुद्ध, अस्वस्थकर एवम् अहितकर होते है। किसी भी कारक को 'कुशल' या 'अकुशल' की श्रेणी में रखने का निर्णय इस कसौटी पर किया जाता है कि वह कारक मनन के दौरान ध्यान एकाग्रचित करने में मदद करता है या बाधा पहुचाता है। यदि वह कारक मदद करता है, तो उस कारक को कुशल कारक कहते है और यदि बाधा पहुचाता है तो उसे अकुशल कारक की श्रेणी में रखते है। इन कुशल या अकुशल कारकों के अलावा प्रत्येक मानसिक अवस्था में सात तटस्थ कारक भी पाये जाते है जो निम्नांकित है –

i. **सम्प्रत्यक्षण-** इसे पाली भाषा में फास्सा कहा जाता है। इसमें व्यक्ति को वस्तु का मात्र ज्ञान होता है।
ii. **प्रत्यक्षण**– इसे पाली भाषा में सान्ना कहा जाता है कि जिसमें वस्तु की प्रथम जानकारी यह होती है कि वह वस्तु किस इन्द्रिय से संबद्ध है।
iii. **संकल्पशक्ति-** इसे पाली भाषा में 'केटाना' कहा जाता है जिसमें वस्तु के पहले प्रत्यक्षण के प्रति एक अनुबंधित प्रतिक्रिया होती है।
iv. **भाव-** इसे पाली भाषा में 'वेदना' कहा गया है। वस्तु द्वारा उत्पन्न संवेदन को भाव कहा जाता है।
v. **एक केन्द्रीयता-** इसे पाली भाषा में 'एकाग्गता' कहा जाता है जिसमें व्यक्ति किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करता है।

vi. **स्वत: ध्यान-** इसे पाली भाषा में 'मनसिकारा' कहा जाता है जिसमें वस्तु के आकर्षण के कारण व्यक्ति का ध्यान अनैच्छिक रूप से उसकी तरफ चला जाता है।

vii. **मानसिक उर्जा-** इसे पाली भाषा में 'जिभितीन्द्रिय' कहा जाता है जिसके कारण उपर्युक्त छह कारक आपस में संगठित होते है तथा उन्हें यह ओजश्विता प्रदान करता है।

ये सभी सात कारक चेतना को एक मौलिक ढाँचा प्रदान करते है जिसमें कुशल तथा अकुशल दोनों कारक सम्मिलित होते है। अब हम लोग यहाँ पर कुशल तथा अकुशल दोनों तरह के कारकों पर सविस्तार प्रकाश डालेंगे।

कुशल कारक- अभिधम्म सिद्धांत के अनुसार कुशल कारक द्वारा अकुशल कारक का प्रतिरोध किया जाता है। जब व्यक्ति की मानसिक अवस्था में कुशल कारक या स्वस्थ्य कारक मौजूद रहते है, तो अकुशल कारक या अस्वस्थ्य कारकों को दबा देते है और तब उन अकुशल कारकों का प्रभाव व्यक्ति की मानसिक अवस्था पर नहीं पड़ता है।

सूझ- सबसे कुशल कारक सूझ है जिसे पाली भाषा में 'पान्ना' कहा जाता है। सूझ से यहाँ तात्पर्य किसी चीज या वस्तु को उसके वास्तविक रूप में स्पष्ट प्रत्यक्षण से होता है। सूझ एक ऐसा कुशल कारक है जो व्यामोह जैसे अकुशल कारक को दबा कर रखता है। सूझ का विपरीत कारक व्यामोह है। दोनों कारक परस्पर विरोधी है। इसलिए एक ही मानसिक अवस्था में दोनों नहीं रह सकते है। जब स्पष्टता होगी, व्यामोह नहीं हो सकता और ठीक उसके विपरीत जब व्यामोह होगा, तो स्पष्टता नहीं होगी।

सतर्कता- सूझ से ही सम्बंधित एक दूसरा महत्वपूर्ण कुशल कारक है सतर्कता। जिसे पाली भाषा में 'साति' कहा गया है। सतर्कता से तात्पर्य किसी वस्तु के सतत स्पष्ट बोध से होता है। इससे व्यक्ति के मन में स्पष्टता में वृद्धि होती है। इसे सूझ का एक सहयोगी कारक माना जाता है। यदि किसी मानसिक अवस्था में सूझ के साथ सतर्कता उपस्थित रहती है तो अन्य सम्बंधित कुशल कारक भी व्यक्ति में मौजूद रहते है। अभिधम्म सिद्धांत के अनुसार, यदि यह दो कुशल कारक व्यक्ति में मौजूद रहते है तो अधिकतर अकुशल कारक अपने आप दबे हुए होते है।

सलज्जता- सलज्जता जिसे पाली भाषा में 'हिरी' कहा जाता है। सलज्जता जैसे कुशल कारक की उत्पत्ति तब होती है जब व्यक्ति कोई बुरा कार्य करने की बात मन में लाता है। सलज्जता औचित्य से सम्बंधित कुशल कारक है। औचित्य से यहाँ मतलब सही निर्णय करने की मनोवृति से होता है।सलज्जता निर्लज्जापन जैसे अकुशल कारक का प्रतिरोध होता है।

विवेक- कुशल कारक विवेक को पाली भाषा में 'ओटाप्पा' नाम से जाना जाता है। कुछ कुशल कारक का स्वरुप ऐसा होता है कि उसकी उत्पत्ति होने के लिए कुछ विशेष परिस्थिति का होना अनिवार्य होता है जैसे - विवेक। विवेक एक ऐसा संज्ञानात्मक कुशल कारक है जो निष्ठुरपन जैसे अकुशल कारक का प्रतिरोध करता है।

विश्वास- कुशल कारक विश्वास को पाली भाषा में 'सद्धा' नाम से जाना जाता है। विश्वास से तात्पर्य सही प्रत्यक्षण पर आधारित निश्चितता से होता है।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण कुशल कारक है - अनाशक्ति जिसे पाली भाषा में 'अलोभा', रूचि जिसे पाली भाषा में 'अदोषा', अपक्षपात जिसे पाली भाषा में 'तत्रमाज्झाता' तथा शांति या आत्मसंयम जिसे पाली भाषा में 'पस्सधि' कहा जाता है। ये चारों कुशल कारक ऐसे है जो व्यक्ति में शारीरिक एवं मानसिक शांति उत्पन्न करते है और इनकी उत्पत्ति तब होती है जब व्यक्ति में आसक्ति के भाव की कमी हो जाती है। अभिधम्म सिद्धांत में इस बात पर विशेष रूप से बल डाला गया है कि इन चारो कुशल कारकों के होने से व्यक्ति में कुछ अकुशल कारक जैसे - लालच, कृपणता, ईर्ष्या तथा विमुखता का प्रतिरोध होता है और वे दब जाते है।

अभिधम्म की एक मान्यता यह है कि मन और शरीर दोनों ही एक -दूसरे से अन्तर्सम्बन्ध होते है। प्रत्येक कारक इन दोनों को प्रभावित करते है और कुछ ऐसे कुशल कारकों की भी पहचान की गयी है जिनका मनोवैज्ञानिक एवं दैहिक प्रभाव बिलकुल ही स्पष्ट होते है। इनमें प्रफुल्लता, नमनशीलता, समायोजनशीलता तथा प्रवीणता प्रमुख है। जब ये सभी कुशल कारक किसी मानसिक अवस्था में होते है, तो व्यक्ति अपने कौशल के शीर्ष पर होता है। ये सब कुशल कारक कुछ अकुशल कारकों अर्थात संकुचन तथा उदासीनता का विरोध करते है। ये दोनों अकुशल कारक व्यक्ति में उस समय उदय होते है जब व्यक्ति विषाद की स्थिति में होता है। ये चारों कुशल कारक व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक रूप से परिवर्तनशील अवस्थाओं के साथ समायोजित करने में मदद करता है।

अकुशल कारक- अकुशल कारकों में तीन श्रेणियाँ है। कुछ कारक प्रत्यक्षणात्मक, कुछ संज्ञानात्मक तथा कुछ भावात्मक होते है। प्रत्यक्षणात्मक कारकों में मुख्य है -

व्यामोह- व्यामोह अर्थात मोह या गलत विचार या जिसे पाली भाषा में 'डिट्ठी' कहा जाता है। व्यामोह एक प्रधान अकुशल कारक है। व्यामोह एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति का मन ऐसा आच्छादित रहता है कि वह ज्ञान की वस्तुओं का गलत प्रत्यक्षण करता है। इस तरह से अभिधम्म में व्यामोह को एक ऐसी मौलिक अज्ञानता के रूप में लिया जाता है जो मानव दुखों की जड़ है। व्यामोह से व्यक्ति में गलत विचार या डिट्ठी का जन्म होता है। इस तरह के विचार के उत्पन्न होने पर व्यक्ति किसी चीज को गलत श्रेणी में रख देता है। इन दोनों कारकों की प्रधानता हमें मशहूर मानसिक रोग स्थिर -व्यामोह में देखने को मिलता है।

प्रत्यक्षणात्मक कारक के अतिरिक्त कुछ संज्ञानात्मक कारक भी है जिन्हें अकुशल कारक के रूप में पहचान की गयी है। इनमें प्रधान है **असमंजस-** असमंजस जिसे पाली भाषा में 'विसिकिच्चा' कहा जाता है। असमंजस की स्थिति में व्यक्ति में निर्णय करने की या सही निर्णय करने की अक्षमता पायी जाती है। इस मानसिक कारक की प्रबलता होने पर व्यक्ति का मन शक से भर जाता है और वह कोई भी निर्णय सही ढंग से नहीं ले पाता है।

निर्लज्जपन- निर्लज्जपन जिसे पाली भाषा में 'अहिरिका' कहा जाता है। निर्लज्जपना मानसिक कारक की प्रबलता होने पर व्यक्ति दूसरों की राय या मत को तथा अपने अन्तः स्वीकृत मानकों को अस्वीकार कर देता है। इस कारक के प्रबल होने पर व्यक्ति दुर्व्यवहार खुले रूप से करता है।

निष्ठुरपन- निष्ठुरपन जिसे पाली भाषा में 'अनोत्ताप्पा' कहा गया है। इस अकुशल कारक की अधिकता होने पर व्यक्ति को दूसरों की भावनाओं की कोई परवाह नहीं होती तथा वह बुरे कार्य करने में कोई संकोच नहीं करता है।

अहंभाव- अहंभाव जिसे पाली भाषा में 'मना' कहा गया है। अहंभाव मानसिक कारक में व्यक्ति हर वस्तु का प्रत्यक्षण इस ढंग से करता है कि मानो उससे अपनी आवश्यकता की पूर्ति होती है।

जब ये तीन मानसिक कारक अर्थात निर्लज्जपन, निष्ठुरपन तथा स्वार्थीपन या अहंभाव किसी एक क्षण में आपस में मिल जाते है तो इससे व्यक्ति निश्चित रूप से कई तरह के बुरे कार्य को बेहिचक करने में समर्थ हो जाता है।

उक्त अकुशल कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य अकुशल कारक ऐसे है जिनका स्वरुप भावात्मक है। इनमे प्रमुख है - घबड़ाहट, चिंता, लालच, कृपणता, ईर्ष्या, विमुखता, संकुचन, उदासीनता। घबड़ाहट तथा चिंता दो ऐसे मानसिक कारक है जिनसे कई तरह के मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। लालच, कृपणता तथा ईर्ष्या में व्यक्ति में किसी वस्तु के प्रति उसे ग्रहण करने की आसक्ति पायी जाती है। विमुखता में आसक्ति का नकारात्मक पहलू देखने को मिलता है। सभी नकारात्मक मानसिक अवस्थाओं में लालच तथा विमुखता पायी जाती है तथा वे हमेशा व्यामोह के साथ संयोजित हो जाते है। संकुचन तथा उदासीनता दो ऐसे अकुशल मानसिक कारक है जिनसे मानसिक अवस्थाओं में दृढ़ आलोच उत्पन्न होता है। जब ऐसे कारकों की प्रबलता व्यक्ति में बढ़ जाती है, तो उसका मन एवं शरीर दोनों में आलसीपन की ओर उन्मुखता बढ़ जाती है।

अभिधम्म सिद्धांत में ऐसे तो कुशल या स्वस्थकर मानसिक कारक तथा अकुशल या अस्वस्थकर मानसिक कारक दोनों ही परस्पर एक -दूसरे का विरोध करते है अर्थात एक की उपस्थिति दूसरे को दबा देती है। परन्तु कुशल तथा अकुशल कारकों में एक - से - एक का सम्बन्ध नहीं होता है। कुछ ऐसे हालात होते है जिसमे एक ही कुशल कारक कई अकुशल कारकों को अकेले ही दबा देता है। उदाहरणस्वरूप, अनासक्ति अकेले ही कई अकुशल कारकों अर्थात लालच, कृपणता, ईर्ष्या तथा विमुखता सभी को दबा देता है। उसी तरह जब व्यामोह जैसा अकुशल कारक मानसिक अवस्था में उपस्थित रहता है, तब किसी भी कुशल कारक का उत्पन्न होना संभव नहीं हो पाता है।

अभिधम्म सिद्धांत में 'काम ' ही वह अवस्था है जो यह निर्धारित करता है कि वह कुशल या अकुशल मानसिक दशा का अनुभव करेगा। किस तरह के कारकों का संयोग अमुक मानसिक दशा में तैयार होगा, यह जैविक, परिस्थितिजन्य तथा मन के गत अवस्थाओं से प्राप्त अनुभूतियों पर निर्भर करता है। मानसिककारकों का कोई भी सेट चाहे धनात्मक हो या ऋणात्मक, एक समूह में ही व्यक्ति के मन में पनपते है । जब व्यक्ति के मानसिक दशा में विशेष कारक या कारकों का विशेष सेट प्राय: उत्पन्न होता है, तो यह फिर व्यक्तित्व शीलगुण में बदल जाता है जिससे फिर विशेष प्रकार के व्यक्तित्वों का निर्माण होता है ।

4.5.3 अभिधम्म में व्यक्तित्व के प्रकार –

अभिधम्म सिद्धांत में व्यक्तित्व प्रकार का आधार मानसिक कारकों की विभिन्न शक्तियाँ होती है । अगर व्यक्ति का मन आदतन किसी विशेष मानसिक कारक या मानसिक कारकों के सेट से प्रबलित होता है, तो उससे व्यक्ति के व्यक्तित्व में अभिप्रेरण तथा व्यवहार प्रभावित होता है । इन मानसिक कारकों के पैटर्न के अनोखेपन से विशेष व्यक्तित्व प्रकार का निर्माण होता है । व्यक्तित्व का सबसे सामान्य प्रकार वह होता है जिसमें व्यामोह की प्रबलता कम होती है; जिसमें विमुखता की प्रबलता होती है, वह कामुक प्रकार का व्यक्ति होता है । जिस व्यक्ति में सूझ एवम् सतर्कता की प्रबलता होती है, वह बुद्धिमान व्यक्तित्व का व्यक्ति होता है । अभिधम्म सिद्धांत में मानव अभिप्रेरण का स्रोत मानसिक कारकों तथा उसका व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण है । व्यक्ति अपनी विशेष मानसिक दशा या अवस्था के कारण ही कोई एक विशेष कार्य करना चाहता है तथा कोई अन्य विशेष कार्य का परित्याग करता है ।सचमुच में उसकी मानसिक अवस्था में ही प्रत्येक कार्य का निर्देशन करता है । जैसे व्यक्ति का मन लालच से प्रबलित होता है, तो यह उसके लिये एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरण हो जायेगा और वह उसी के अनुरूप व्यवहार भी करेगा और वह अपने लालच से संबद्ध वस्तुओं को पाने का भरसक प्रयास भी करेगा । उसी तरह से यदि उसकी मानसिक अवस्था में अहंभाव की प्रबलता होती है, तो व्यक्ति सिर्फ अपने अहम को प्रफुल्लित करने वाले कार्य करेगा । इन सब का अर्थ यह निकलता है कि प्रत्येक व्यक्तित्व प्रकार एक अभिप्रेरणात्मक प्रकार भी होता है ।

अभिधम्म नियमावली जिसे "विशुद्धिमग्गा" कहा जाता है तथा जिसका निर्माण पाँचवी शताब्दी में हुआ था, में भी कुछ व्यक्तित्व प्रकारों का वर्णन है। इन व्यक्तित्व प्रकारों के वर्णन में जो सबसे बड़ी विशेषता दर्शायी गयी है, वह यह है कि इसमें व्यक्तित्व प्रकारों का मूल्यांकन का आधार इस बात का सघन प्रेक्षण होता है कि व्यक्ति व्यवहार करने के लिए किस तरह खड़ा होता है तथा आगे बढ़ता है। जैसे - एक घृणित व्यक्ति जब चलेगा, तो वह अपना पैर घसीट - घसीट कर चलेगा तथा धोखा देने वाला व्यक्ति तेजी से चलेगा, आदि।"विशुद्धिमग्गा" के लेखक इस नियमावली में इस बात पर जोर दिया है कि जीवन का प्रत्येक विवरण उसके चरित्र को समझने का एक महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है। इसी के आधार पर इस नियमावली में निम्नांकित तीन प्रमुख व्यक्तित्व प्रकारों का वर्णन मिलता है –

i. **संवेदी व्यक्तित्व प्रकार-** इस प्रकार का व्यक्ति सुन्दर, नम्र तथा बोलने में भद्रता का परिचय देने वाला होता है। ऐसे व्यक्ति अपना कार्य कलात्मक, क्रमबद्ध एवं निष्ठापूर्वक तरीके से करते है। वे साफ़ -सुथरा एवं जरुरत के हिसाब से पोशाक पहनते है। वह बिस्तर पर सोने से पहले उसे काफी ठीक - ठाक कर लेते है तथा सोते समय काम छटपटाहट दिखाते है। खाने में वे मुलायम तथा मीठा भोजन पसंद करते है। यह धीरे - धीरे तथा थोड़ा - थोड़ा करके खाते है तथा उसे ठीक ढंग से चबा - चबाकर खाते है ताकि खाने का अधिक से अधिक मजा लिया जाए। कोई भी सुन्दर वस्तु का दीदार भरपूर करते है तथा उसके गुणों से वे काफी प्रभावित होते है। इन सब के बावजूद भी इस तरह के व्यक्तित्व में कुछ नकारात्मक गन भी पाए जाते है। ये आडम्बरी, धूर्त या कपटिपूर्ण, असंतुष्ट, हीन तथा कामुक होते है।

ii. **घृणित व्यक्तित्व प्रकार-** इस तरह के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति शुष्क प्रकृति के होते है। ऐसे व्यक्ति के सोने का कमरा तथा बिस्तर जैसे -तैसे रहता है तथा सोते समय ये अपने शरीर को तना हुआ रखते है। जब इन्हें नींद से कभी उठाया जाता है, तो वे क्रोधित हो उठते है। ऐसे लोगों का कार्य करने का ढंग लापरवाहीयुक्त होता है। इनके पहनावा भी ढंग का नहीं होता है। खाने में वे ऐसा भोजन पसंद करते है जिसका स्वाद खट्टा तथा तीखा होता है। वे उस भोजन को भी जल्दी - जल्दी खा लेते है जिनका स्वाद उन्हें बहुत पसंद नहीं होता है। वस्तुओं की सुंदरता पर इनका ध्यान नहीं जाता है तथा वस्तु के गुण पर ध्यान कम तथा उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म अवगुण पर ध्यान जल्दी जाता है। मोटे तौर पर देखा जाए तो ऐसे लोग क्रोध, अकृतघ्न, ईर्ष्यालु, तुच्छ तथा बुराइयों से युक्त होते है।

iii. **धोखेबाज व्यक्तित्व प्रकार-** ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति प्रायः आलसी एवं उदासीन होते है। इनका ध्यान अपने काम से आसानी से विचलित हो जाता है तथा इन्हें अपने कार्यों के लिए पश्चताप भी अधिक होता है। ऐसे लोग जिद्दी तथा अड़ियल होते है। सोने की आदत भी बुरी होती है। ये हाथ -पैर फैला कर सोते है, सोने का बिस्तर काफी अस्त -व्यस्त रहता है तथा नींद से उठने पर उनकी तरह - तरह की शिकायतें भी होते है। एक कार्यकर्ता के रूप में ये अयोग्य एवं गड़बड़ होते है। इनकी पोशाक काफी ढीली -ढाली होती है और उनके व्यक्तित्व को भद्दा बना देती है। ये भोजन करने में कोई सावधानी नहीं बरतते है तथा जो कुछ भी उन्हें खाने को मिल जाता है, उसे खाने लगते है। वे इस बात का कोई सही मूल्यांकन नहीं कर पाते है कि क्या कोई वस्तु सचमुच में सुन्दर है या नहीं। उन्हें जो कुछ भी अन्य व्यक्तियों द्वारा कहा जाता है, उसमें आसानी से विश्वास कर लेते है और उसी के अनुरूप वे उसकी प्रशंसा या निंदा करते है।

“विशुद्धिमग्गा” में प्रत्येक व्यक्तित्व के प्रकार के लिए अलग -अलग ढंग के उपचार की बात कही गयी है। इस तरह से इस व्यक्तित्व प्रकार का मानसिक स्वास्थ्य से भी गहरा सम्बन्ध बतलाया गया है।

स्वस्थ व्यक्तित्व एवं मानसिक विकृति- अभिधम्म सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक मानसिक अवस्था में पाये जाने वाले मानसिक कारक एक क्षण से दूसरे क्षण परिवर्तित होते रहते है। इस सिद्धांत में स्वस्थकर या कुशल कारकों की अनुपस्थिति तथा अस्वस्थकर या अकुशल कारकों की उपस्थिति ही मानसिक विकृति कहलाता है। मानसिक रोग का प्रत्येक प्रकार की उत्पत्ति तब होती है जब अकुशल कारकों की उपस्थिति मन में बढ़ जाती है। प्रत्येक अकुशल कारक से एक विशेष प्रकार की मानसिक विकृति की उत्पत्ति होती है। जैसे - विमुखता जैसे अकुशल कारक की उपस्थिति से व्यक्ति में दुर्भीति उत्पन्न होता है तथा घबड़ाहट एवं चिंता जैसे अकुशल कारक से स्नायुविकृति की उत्पत्ति होती है।

अभिधम्म सिद्धांत में मानसिक स्वस्थ की कसौटी भी सरल है - व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक वातावरण में जब कुशल कारक उपस्थित तथा अकुशल कारक अनुपस्थित होते है, तो इस अवस्था को मानसिक स्वास्थ्य कहा जाता है। इस सिद्धांत की यह भी मान्यता है कि स्वस्थ्यकार या कुशल कारक न केवल अकुशल कारकों को दबाता है बल्कि धनात्मक भावात्मक कारकों के लिए एक ऐसा मानसिक वातावरण तैयार करता है जो अकुशल कारकों की उपस्थिति में प्रफुल्लित नहीं हो सकता है। स्नेहमयी दयालुता तथा परोपकारी ख़ुशी दो ऐसे ही धनात्मक भावात्मक कारक के उदाहरण है।

अभिधम्म सिद्धांत के अनुसार एक सामान्य व्यक्तित्व की मानसिक अवस्थाओं में कुशल या स्वस्थकर कारक तथा अकुशल या अस्वस्थकर कारक दोनों का मिश्रण पाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ क्षण में पूर्णत: कुशल कारक तथा कुछ क्षण में पूर्णत: अकुशल कारक की प्रबलता पायी जाती है। बहुत कम ऐसे लोग होते है जो सिर्फ स्वस्थ मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करते है और इस अर्थ में हम लोगों में से अधिकतर लोग अस्वस्थकर अकुशल भी होते है। अभिधम्म सिद्धांत के अनुसार मनोवैज्ञानिक विकास का मुख्य लक्ष्य स्वस्थ्य मानसिक अवस्था को बढ़ावा देना तथा अस्वस्थ्य मानसिक अवस्था को कम करना होता है। जब व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य के शीर्ष पर होता है, तो व्यक्ति के मन में कोई अस्वस्थयकर कारक की उत्पत्ति नहीं हो पाती है। निश्चित रूप से यह एक आदर्श लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति ठीक से नहीं कर पाता है।

मनन : स्वस्थ्य व्यक्तित्व का मार्ग- सिर्फ स्वस्थ्य मानसिक अवस्था तथा अस्वस्थ्य मानसिक अवस्था की पहचान कर लेने से ही एक स्वास्थ्य व्यक्तित्व का मार्ग प्रसस्त नहीं हो जाता है। अभिधम्म सिद्धांत में एक स्वास्थ्य व्यक्तित्व की प्राप्ति के लिये एक विशेष विधि जिसे मनन कहा गया है, की अनुशंसा की गयी है। मनन की दो विधि बतलायी गयी है जिनका वर्णन निम्नांकित है -

a. एकाग्रता मनन
b. सतर्कता मनन

एकाग्रता मनन- मनन की इस विधि में व्यक्ति अपने ध्यान को एक वस्तु या एक बिंदु पर एकाग्रचित्त करता है। जब व्यक्ति कुशल कारक पर ध्यान एकाग्रचित्त करता है, तो इससे उसमें गहरी एकाग्रता उत्पन्न होती है। जैसे - जैसे एकाग्रता की गहराई बढ़ती है, मन स्थिर होते जाता है और अकुशल कारक जैसे - घबड़ाहट, ध्यान भंगता आदि में कमी हो जाती है। इस प्रक्रिया से धीरे - धीरे एक ऐसा क्षण आता है, जब एकाग्रता बहुत तेजी से आने लगाती है और मन सिर्फ कुशल कारकों द्वारा ही प्रभावित होने लगता है और जो व्यक्ति के ध्यान को वांछित वस्तु पर बनाये रखता है। ऐसे कुशल कारकों में प्रयुक्त ध्यान तथा अविछिन्न ध्यान, हर्षोन्माद का भाव, शक्ति, धीरज या धृति। इन स्वास्थ्य कारकों में विकारा तथा विटाक्का दो ऐसे कारक है जो व्यक्ति के ध्यान को सतत किसी एक वस्तु केंद्रित करने में काफी मदद करता है। किन्तु इस अवस्था में इन पाँचो कारकों की शक्ति में उतार - चढ़ाव होता है। परन्तु जब व्यक्ति एक बिंदु एकाग्रता बनाये रखता है, तो उस उतार - चढ़ाव में कमी आ जाती है और फिर ध्यान में स्थिरता आ जाती है और मननकर्त्ता को सामान्य चेतना, पूर्ण अलगाव या विरक्ति का अनुभव होता है। चेतन की इस परिवर्तित अवस्था को पाली भाषा में झाना कहा गया है।

सतर्कता मनन- सतर्कता मनन में मननकर्ता चेतना के प्रवाह को नियमित करने का प्रयास नहीं करता है। इस तरह के मनन की आरंभिक अवस्था में व्यक्ति मन के किसी एक वस्तु पर एकाग्रचित्त न करके सभी तरह की वस्तुओं एवं मानसिक अनुभूतियों पर अपना ध्यान देता है। वह प्रत्येक मानसिक घटना या मानसिक अनुभूति पर इस ढंग से ध्यान देता है मानो वह प्रथम बार उसके सामने हो। वह इन सभी तरह की अनुभूतियों पर सामान रूप से ध्यान देता है तथा वह इनमें से किसी को भी अधिक महत्वपूर्ण समझकर अन्य से अलग नहीं करता है। मननकर्ता के लिये यह आरंभिक अवस्था काफी कठिनाईयुक्त होती है क्योंकि बहुत सारे विचार तथा मानसिक अनुभूतियाँ व्यक्ति के सामने आती है और चूँकि उन सबों पर उन्हें ध्यान देना होता है, इसलिये सतर्कता मनन खतरे में पड़ जाता है। सचमुच में सतर्कता मनन वहाँ पर सर्वाधिक प्रभावी होता है जब मननकर्ता की एकाग्रता इतनी अधिक होती है कि उसका मन सभी प्रत्यक्षण एवं चिन्तनों को आलेख कर पाता है परन्तु इतनी अधिक नहीं होती कि ऐसी संज्ञानात्मक प्रक्रिया रुक जाए।

अराहत: स्वास्थ्य व्यक्तित्व का आदर्श प्रकार-'अराहत' का शाब्दिक अर्थ है जो प्रशंसनीय हो। इस अर्थ में तब 'अराहत' से अर्थ एक ऐसे व्यक्तित्व से होता है जिसकी सम्पूर्ण प्रशंसा हो सके। अभिधम्म सिद्धांत में 'अराहत' व्यक्तित्व की तस्वीर कुछ इस तरह है जैसे हम पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धांत अर्थात मैस्लो तथा रोजर्स के सिद्धांत में आत्म -सिद्ध व्यक्तित्व का पाते है। 'अराहत' व्यक्तित्व के शीलगुण ऐसे होते है जो स्थाई तौर पर परिवर्तित होते है तथा वे सभी अभिरुचियाँ, अभिप्रेरण क्रियाएँ, चिंतन, प्रत्यक्षण जो पहले अकुशल कारकों के प्रभाव में होता है, पूर्णतः समाप्त हो जाते है। वान युंग के अनुसार अराहत व्यक्तित्व विशेषकर के स्वप्न अर्थात अतीन्द्रियदर्शी स्वप्न अधिक देखते है। अतीन्द्रियदर्शी स्वप्न उन सपनों को कहा जाता है, जिनमें भविष्य में होने

वाली घटनाओं का एक सही -सही पूर्वानुमान होता है। जोहानस्सन (Johansson 1970) ने अपनी प्रसिद्द पुस्तक "दी साइकोलॉजी ऑफ निर्वाण" में 'अराहत' व्यक्तित्व के कुछ गुणों का वर्णन किया है जो निम्न है। अराहत व्यक्तित्व में निम्न गुणों की अधिकता पायी जाती है –

- ऐसे लोगों में स्नेह, दयालुता तथा सहानुभूति का भाव तीव्र होता है।
- ऐसे लोगों का प्रत्यक्षण तीक्ष्ण एवं सही होता है।
- ऐसे लोग दूसरों के प्रति कोई पक्षपात नहीं करते है।
- ऐसे लोग सभी परिस्थितियों में धीरज बनाये रखते है।
- ऐसे लोग कोई भी कार्य या कौशल शांतभाव से करते है।
- ऐसे लोग मनउबाऊ परिस्थितियों में भी शांत एवं मानसिक सतर्कता बनाये रखते है।
- ऐसे लोग अपने विचारों की खुली अभिव्यक्ति करते है तथा अपनी आवश्यकताओं के प्रति अनुक्रियाशील होते है।

अराहत व्यक्तित्व में निम्न गुणों की अनुपस्थिति होती है -

- ऐसे लोगो में संवेदी इच्छाओं के प्रति लोलुप्तता नहीं होती है।
- ऐसे लोगो में दर, चिंता, विद्वेष आदि नहीं होता है।
- ऐसे लोगो में हठधर्मिता की कमी होती है।
- ऐसे लोग दुःख - दर्द, निंदा, घाटा, अपयश या बदनामी के प्रति संवेदनशीलता नहीं दिखाते है।
- ऐसे लोगो में क्रोध व कामुकता की कमी होती है।
- ऐसे लोगो में दूसरों से अनुमोदन की आवश्यकता, प्रशंसा, सुख - दुःख का अनुभव नहीं होता है।
- ऐसे लोगो में में अतिआवश्यक चीजों को छोड़कर कुछ और पाने की आवश्यकता भी नहीं है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अभिधम्म व्यक्तित्व सिद्धांत में अराहत व्यक्तित्व की प्राप्ति एक अंतिम लक्ष्य होता है क्योंकि इसे स्वास्थ्यकर व्यक्तित्व का एक आदर्श प्रकार माना गया है। यद्यपि इस अराहत व्यक्तित्व की समानता पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धांतो खासकर मैस्लो एवं रोजर्स के आत्म - सिद्ध व्यक्तित्व से है, फिर भी इस तरह के व्यक्तित्व की व्याख्या हमें पश्चिमी सिद्धांतों में नहीं मिलती है।

4.6 सारांश

उपनिषद् में व्यक्तित्व का केंद्र जीवात्मा माना गया है। इसमें चेतना को पुरुष कहा गया है जिसके पाँच आवरण या कोष बताये गए है - अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष तथा आनंदमय कोष। इतना ही

नहीं इसमें चेतना के चार स्तर भी बताये गए है। सांख्य सिद्धांत में व्यक्तित्व की एक तात्विक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस सिद्धांत में मानव व्यक्तित्व को 'पुरुष' तथा 'प्रकृति' दोनों की अन्तः क्रिया का परिणाम बताया गया है। अभिधम्म सिद्धांत गौतम बुद्ध के उपदेश एवं शिक्षण पर आधारित है। इस सिद्धांत में सम्पूर्ण व्यक्तित्व के आदर्श प्रकार का वर्णन मिलता है जिनमें मन के कार्यों में व्यक्तित्व का अध्ययन का सम्बन्ध अचेतन या अहम जैसे सम्प्रत्ययों से न होकर घटनाओं के क्रम से होता है। इसमें प्रत्येक मानसिक अवस्था में विशेषताओं का गुच्छ या समुच्चय पाया जाता है जिसे मानसिक कारक कहा गया है। जिन्हें दो भागों में अर्थात कुशल कारक तथा अकुशल कारक में बाँटा गया है। मनन की दो विधियाँ अर्थात एकाग्रता मनन तथा सतर्कता मनन द्वारा मानसिक अवस्था से अकुशल कारकों को ख़त्म करके कुशल कारकों की प्रवीणता को बढ़ाया जाता है। इससे अंत में एक स्वस्थकर व्यक्तित्व का विकास होता है जिसे अराहत कहा जाता है।

4.7 शब्दावली

कर्मेन्द्रिय- Organs or Actions
संभाषण तंत्र- Vocal System
उत्सर्जन अंग- Excretory System
बाह्य ब्रह्माण्ड- External Universe

4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निम्न में से क्या सात्विक क्रिया की प्रेरक शक्ति नहीं है?
   a) अहिंसा
   b) ध्यान
   c) आलस्य
   d) दया

2. तमस आशा व भ्रम से उत्पन्न होता है। (सत्य /असत्य)

उत्तर -: 1. ग 2. असत्य

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

https://en.wikipedia.org/wiki/Abhidharma
http://dspace.hmlibrary.ac.in:8080/jspui/bitstream/123456789/1290/10/10_CHAPTER_2.pdf
डॉ.अरुण कुमार सिंह एवम् डॉ. आशीष कुमार 'व्यक्तित्व का मनोविज्ञान'.

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1) उपनिषद् के अनुसार एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व की व्याख्या प्रस्तुत करें।
2) सांख्य सिद्धांत के अनुसार व्यक्तित्व की व्याख्या किस तरह से की गयी है ?
3) अभिधम्मसिद्धांत अनुसार व्यक्तित्व की संरचना एवं प्रकार की व्याख्या करें।
4) 'अराहत' से आप क्या समझते है? अराहत व्यक्तित्व के प्रमुख गुणों का वर्णन करें।

इकाई –5 योग (आसन व प्राणायाम) द्वारा व्यक्तिव का विकास

(DEVELOPMENT OF PERSONALITY THROUGH YOGA (ASANA & PRANAYAMA)

इकाई संरचना

5.1 परिचय

5.2 उद्देश्य

5.3 योग की अवधारणा:

5.4 योग और व्यक्तित्व विकास के आयाम

5.5 व्यक्तित्व विकास के लिए योगाभ्यास

5.5.1 आसन

5.5.2 प्राणायाम

5.6 सारांश

5.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1परिचय

आधुनिक युग में उत्तम व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का बहुत महत्व है| अधिकांश लोग पसंद करते हैं वह सभी के साथ समायोजित होने में सफल रहता है उनके जीवन में सफलता खुशियां और सामाजिक स्वीकृति जब चाहे तब मिलती रहती है ऐसे गुण और विशेषताएं जो भी व्यक्ति चाहे अर्जित कर सकता है यह भी तब संभव है जब वह इसके लिए अगर मन से सतत प्रयास करें| आज किशोरावस्था से युवावस्था तक के व्यक्तियों में अपने व्यक्तित्व को उन्नत करने की बहुत चाहत है|प्रत्येक आयु वर्ग के स्त्री पुरुष अपने व्यक्तित्व को बेहतर बनाना पसंद करते हैं और वे इस दिशा में प्रयास भी करते हैं|

आज के युग में प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है सामाजिक और पारिवारिक जीवन जटिल हो रहा है| सभी लोग यह मानते हैं कि अच्छा और प्रभावशाली व्यक्तित्व होने पर वह व्यक्ति अनेक उपलब्धियां प्राप्त कर सकता है, उसकी उपलब्धियों के पीछे उसके व्यक्तित्व का बहुत बड़ा हाथ रहता है| लोग यह भी विश्वास करते हैं कि आज उनका जो व्यक्तित्व है उसको बदला जा सकता है उन्नत किया जा सकता है अतः लोग आज टीवी अखबार या पत्रिकाओं के माध्यम से उन तरीकों की खोज करते रहते हैं जिनके द्वारा व्यक्तित्व को बदला और उन्नत किया जा सकता है|इस संबंध में वह अपने परिचितों और मित्रों से भी विचार-विमर्श करता है कुछ लोग व्यक्तित्व को जन्मजात उपहार या ईश्वरी उपहार भी मांगते हैं ऐसे व्यक्ति व्यक्तित्व के परिवर्तन और उत्कृष्ट होने में अपेक्षाकृत कम विश्वास करते हैं

व्यक्तित्व का विकास एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। व्यक्तित्व जन्म से ही विकसित होना शुरू हो जाता है, किशोरावस्था के दौरान लेकिन यह बहुत महत्व रखता है, जब व्यक्तित्व का पुनर्गठन होता है|व्यक्तित्व एक बहुत ही सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग रोज़मर्रा की ज़िंदगी में किया जाता है यह हमें बताता है कि व्यक्ति किस प्रकार का है। हम लोग जानते कि प्रत्येक व्यक्ति आम तौर पर अधिकांश स्थिति में एक जैसा व्यवहार करता है।इस संगति के उदाहरण देखे जा सकते हैं-एक व्यक्ति जो आम तौर पर मिलनसार रहता है या वह व्यक्ति जो अधिकांश स्थितियों में दयालु या सहायक होता है । इस तरह का एक सुसंगत पैटर्न व्यवहार को व्यक्तित्व कहा जाता है। इसे व्यवहार का कुल योग कहा जा सकता है जिसमें दृष्टिकोण, भावनाएं, विचार आदतें और लक्षण शामिल हैं| व्यवहार का यह पैटर्न एक व्यक्ति के लिए विशेषता है।

व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम हैं। पहलू हमारे व्यवहार के यह आयाम शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक रूप से संबंधित हैं। इन आयामों के विकास के लिएयोग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

- योग के महत्त्व को समझ पायेंगे|
- व्यक्तित्व विकास में योग की भूमिका को समझ पायेंगे|
- व्यक्तित्व विकास में आसन की भूमिका को समझ पायेंगे|
- व्यक्तित्व विकास में प्राणायाम की भूमिका को समझ पायेंगे|

5.3 योग की अवधारणा:

योग की अवधारणा को ठीक प्रकार से समझने के लिये योग के शाब्दिक अर्थ का विश्लेषण करना आवश्यक है। महर्षि पाणिनि कृत संस्कृत व्याकरण में गणपाठ में तीन युक्त धातू है और तीनों ही धातुओं से योग शब्द का निष्पन्न होता है, किन्तु इसके अर्थ में भिन्नता है।हम एक-एक करके इन तीनों धातुओं से बने योगशब्द के अर्थ पर विचारकरते हैं-

1. दिवादिगणीय युज् धातु
2. रूधादिगणीय युज् धातु
3. चुरादिगणीय युज् धतु

1. **दिवादिगणीय युज् धातू-** दिवादिगणीय युज् धातु से निष्पन्न योग शब्द समाधि अर्थमें प्रयुक्त होता है; '' युज् समाधौ''प्रायः सभी विद्वान योग का तात्पर्य समाधि से ही लेते है। अन्य अर्थ गौण एवं लौकिक माने जाते है। यम-नियम, आसन-प्राणायामादि योगाभ्यासों के द्वारा समाधि की स्थिति को प्राप्त करके आत्मस्वरूप में स्थित होने का नाम ही योग है। इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुये महर्षि व्यास ने कहा है-'' योगः समाधि''अर्थात- ''योग का अर्थ समाधि है।''
2. **रूधादिगणीय युज् धातु-** रूधादिगणीय युज् धातु से निष्पन्न योग शब्द का अर्थ है- जुड़ना या मिलना अर्थात्-एकत्व की प्राप्ति- ''युजिर योगे'' यहाँ जुड़ने का तात्पर्य आत्मा और परमात्मा के जुड़ने से लिया जाता है और इस सन्दर्भ में योग का अर्थ है कि आत्मा एवं परमात्मा का मिलन ही योग है। किन्तु योग शब्द का यह अर्थ लेने पर एक विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है कि क्या आत्मा एवं परमात्मा अथवा जीव एवं ब्रह्म एक दूसरे से पृथक-पृथक रहते है और क्या योग साधना के द्वारा ही दोनों में संयोग होता है? वास्तव में देखा जाये तो योग शब्द का यह अर्थ उपयुक्त नहीं है, क्योंकि आत्मा तो परमात्मा का ही एक अंश है और यह कभी भी परमात्मा से अलग नहीं होती। अब आप सोच रहे होंगे कि फिर जुड़ना से योग शब्द का आखिर क्या अभिप्राय है? संयोग अर्थ में योग शब्द का आशय यह है कि जब साधक का चित्त शुद्ध हो जाता है अर्थात् जब जन्म-जन्मान्तर के कर्म संस्कार नष्ट हो जाते हैं तब उस स्थिति में जीवात्मा को परमात्मा के साथ जुड़ाव की अनुभूति होती है और अन्ततः वह आत्मा भी परमात्मस्वरूप हो जाती है; इसी स्थिति को आत्मा एवं परमात्मा का मिलन कहा गया है। इसी सन्दर्भ में योगदर्शन के प्रणेता महान् अध्यात्मवेत्ता महर्षि पतंजलि ने कहा है- '' योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'' (पातंजल योग सूत्र/समाधिवाद/2)अर्थात- '' चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध ही योग है।'' चित्तवृत्तियों के निरोध का परिणाम क्या होता है, इसको स्पष्ट करते हुये वे आगे कहते हैं- '' तदा दुरष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम्'' (पातंजल योग सूत्र/समाधिवाद/3) अर्थात-''तब (चित्त की वृत्तियों का निरोध होने पर)द्रष्टा आत्मस्वरूप

में स्थित होजाता है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्मा एवं परमात्मा का संयोग तो शाश्वत है, किन्तु इसकी अनुभूति चित्तशुद्धि होने पर ही होती है।

3. **चुरादिगणीय युज् धातु-** पाठकों, चुरादिगणीय युज् धातु से निष्पन्न योग शब्द संयम अर्थ में प्रयुक्त होता है-'' युज् संयमने'' अर्थात- '' मन एवं इन्द्रियों का संयम ही योग है।'' मन तथा इन्द्रियों को वश में किये बिना योग साधना में प्रगति नहीं हो सकती।

अतः आत्मसाक्षात्कार के लिये समस्त इन्द्रियों को संयमित करना अत्यावश्यक है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर योग शब्द तीन अर्थो में प्रयुक्त होता है- समाधि, संयोग एवं संयम, किन्तु इन तीनों में समाधि अर्थ ही सर्वाधिक उपयुक्त है, अन्य अर्थ गौण हैं।

परिभाषायें- योग की परिभाषा महर्षि पतंजलि के अनुसार- '' योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' (पातंजल योग सूत्र/ 1/2) अर्थात- ''चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध ही योग है।''महर्षि व्यास के अनुसार- '' योगः समाधि स च सार्वभौमिश्चित्तस्य धर्मः।'' अर्थात- '' योग का अर्थ है- समाधि, जो चित्त का सार्वभौम धर्म है।''महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार-**'' संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मः परमात्मनो'' अर्थात- '' जीवात्मा एवं परमात्मा के मिलन का नाम योग है।''** (याज्ञवल्क्य स्मृति)

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार-**'' योगस्थः कुरू कर्माणि, संगंव्यक्त्वा धनन्जय।सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा, समत्वं योग उच्चते।।''** (श्रीमद्भागवद्गीता/2/48)

अर्थात- '' हे अर्जुन! तुम आसक्ति का परित्याग करके सफलता-असफलता में समान होकर योग में स्थित होकर कर्म करों, क्योंकि समत्व ही योग है।'' ''योगःकर्मसुकौशलम्'' (श्रीमद्भगवद्गीता/2/50)अर्थात-'' कर्मों में कुशलता का नाम ही योग है।' यहाँ कर्मों में कुशलता का अर्थ हैं-'' कर्मफल की कामना का परित्याग करके कर्म करना अर्थात्- निष्काम कर्म ही योग है।

व्यक्तित्त्व के बारे में आप पिछली इकाइयों में अध्ययन कर चुके हैं|

5.4 योग और व्यक्तित्व विकास के आयाम:

योगाभ्यास व्यक्तित्व विकास के सभी आयामों के लिए कारगर पाए गए हैं योग व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों के विकास को निम्न प्रकार प्रभावित करटा है -

- **योग और व्यक्तित्व का शारीरिक आयाम:**शारीरिक आयाम हमारे शरीर से संबंधित है। इसका अर्थ है कि हमारे शरीर के सभी अंग और प्रणालियों ठीक से विकसित और कार्य करना चाहिए। इसका तात्पर्य बिना किसी बीमारी के स्वस्थ शरीर से है। यौगिक अभ्यास जैसे आसन, प्राणायाम और बंध बच्चों का शारीरिक विकास में लाभकारी भूमिका निभाते हैं| आसनों और प्राणायाम की एक श्रृंखला है जो शरीर की कार्यप्रणाली को सुधारने में मदद करते हैं|

- **योगा और व्यक्तित्व विकास का संवेगात्मक आयाम:**योगाभ्यास हमारे अभिवृत्ति संवेग और भाव से संबंधित संवेगात्मक आयामों के विकास के लिए प्रभावी है|दो प्रकार के संवेग होते हैं उदाहरण के लिए प्यार और दयालुता धनात्मक संवेग हैं जबकि क्रोध और भय नकारात्मक संवेग हैं इसी तरह से हमारी अनुभव और अभिवृत्ति भी धनात्मक और नकारात्मक हो सकती है संवेगात्मक विकास के लिए धनात्मक अनुभव जैसे अभिवृत्ति और संवेग विकसित होने चाहिए और नकारात्मक संवेग नियंत्रित होने चाहिए जैसा कि नकारात्मक अभिवृद्धि और संवेग| व्यक्तित्व विकास के लिए मानसिक ब्लॉक के रूप में कार्य करते हैं| योगइन धनात्मक संवेगों के विकास के लिए महत्वपूर्ण कार्य करता है यह संवेगात्मक स्थिरता लाता है| योग का अभ्यास जैसे कि यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहारा और ध्यान संवेगों के प्रबंधन में सहायता करते हैं|उदाहरण के लिए अहिंसा के नियम हमें नकारात्मकता से बचाते हैं और प्यार और दयालुता की धनात्मक भावनाओं में वृद्धि करते हैं| इसी तरह यम और नियम के अन्य सिद्धांत व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में धनात्मक संवेग और अभिवृत्ति का विकास करने में हमारी मदद करते हैं|

योग एवं व्यक्तित्व के बौद्धिक आयाम

बौद्धिक विकास हमारे मानसिक योग्यताएं और प्रक्रियाओं जैसे सृजनात्मक चिंतन, स्मृति, प्रत्यक्षीकरण, निर्णय लेने की क्षमता, छवि निर्माण, सृजनात्मकता आदि के विकास से संबंधित है|आयाम का विकास बहुत महत्वपूर्ण है जैसा कि यह हमें नई चीजें सीखने, नया ज्ञान और दक्षता प्राप्त करने के योग्य बनाता है| योगाभ्यास जैसे आसन, प्राणायाम, धारणा एकाग्रता विकसित करने, स्मृति और बौद्धिक विकास में मदद करते हैं|

योग एवं व्यक्तित्व के सामाजिक आयाम

प्रारंभिक सामाजीकरण शैशवावस्था में व्यक्तित्व विकास के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में स्थान रखता है| माता-पिता और दादा-दादी के अनुमोदन और अस्वीकृति का जवाब देकर और उनके उदाहरणों का अनुकरण करके, बच्चा भाषा और अपने समाज के कई बुनियादी व्यवहार पैटर्न सीखता है।समाजीकरण की प्रक्रिया बचपन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जीवन भर चलती रहती है और बढ़ते बच्चे और किशोर को उस समाज के मानदंडों और नियमों के बारे में सिखाती है जिसमें वह रहता है। इस प्रक्रिया के कुछ प्रमुख तत्वों में दूसरों के लिए सम्मान, अन्य व्यक्तियों को ध्यान से सुनना, उनमें दिलचस्पी लेना, और अपने विचारों और भावनाओं को विनम्रता से, ईमानदारी से और स्पष्ट रूप से व्यक्त करना शामिल है ताकि आपको आसानी से सुना और समझा जा सके।यम के सिद्धांतों में ये प्रमुख तत्व शामिल हैं और ये बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये हमारे दोस्तों, माता-पिता, शिक्षकों और अन्य लोगों के साथ हमारे संबंधों को बेहतर बनाने में हमारी मदद करते हैं।

योग और व्यक्तित्व का आध्यात्मिक आयाम:यह आयाम मूल्यों के विकास व आत्म-साक्षात्कार से संबंधित है जो किसी की क्षमता को पहचानने और उन्हें अधिकतम स्तर तक विकसित करने से संबंधित है। इस आयाम का समुचित विकास व्यक्ति को अपनी वास्तविक पहचान का एहसास कराने में मदद करता है। आध्यात्मिक विकास के लिए यम, नियम, प्रत्याहार और ध्यान (ध्यान) सहायक होते हैं। यम और नियम हमारे नैतिक मूल्यों को विकसित करने में मदद करते हैं जबकि प्राणायाम और ध्यान हमें अपने सच्चे स्व को महसूस करने में मदद करते हैं। आत्मनिरीक्षण 'स्व' के विकास के लिए बहुत प्रभावी है।

5.5 व्यक्तित्व विकास के लिए योगाभ्यास :

अब हमकुछ योगाभ्यासों पर चर्चा करेंगे जो व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों के विकास में योगदान देतें है|

5.5 .1 आसन:

योग के एक महत्वपूर्ण अंग के रुप में योगासनों का उल्लेख आता है। योग से शरीर को स्वस्थ, लचीला एवं मन को एकाग्र बनाने के उद्देश्य से योगासनों का उपदेश योग के सभी प्रमुख ग्रन्थों में किया गया है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक योगासनों की महत्ता एवं उपादेयता का वर्ण सभी यौगिक ग्रन्थों में कियागया है। विशेष रुप में योग चिकित्सा में योगासन का प्रयोग एक अचूक शस्त्र के रुप में किया जाता है। योग के प्रमुख ग्रन्थ योग दर्शन में महर्षि पतंजलि आसन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - स्थिरसुखमासनम्।। (पा0 योगसूत्र 2/46) अर्थात स्थिरतापूर्वक एवं सुखपूर्वक किया गया अभ्यास आसन कहलाता है। योगासनों का सतत अर्थात निरन्तर अभ्यास करने से शरीर स्वस्थ, लचीला, हल्का एवं अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त बनता है। इसके साथ साथ योगासन मानसिक शान्ति प्राप्त करने के अपूर्व साधन हैं। योगासनों का अभ्यास करने से शरीर में दृढता एवम स्थिरता के साथ स्फूर्ति का संचार होता है। यौगिक ग्रन्थों में शारीरिक एवं मानसिक लाभ प्राप्त करने हेतु योगासनों का उल्लेख किया गया है। हम सभी जानते हैं कि आसन हमारे शारीरिक और मानसिक विकास के लिए फायदेमंद होते हैं अब, हम कुछ आसनों के बारे में चर्चा करेंगे|

ताड़ासन:संस्कृत में ताड़ा का अर्थ है 'ताड़ का पेड़'। इसे ताड़ासन कहते हैं क्योंकि इस आसन में विद्यार्थी पेड़ की तरह सीधा खड़ा होता है। इसलिए इसका नाम ताड़ासन रखा गया है|

Source: NCERT

ताड़ासन के चरण:

1. सीधे खड़े हो जायें, पैर एक साथ, हाथ जांघ की तरफ। पीठ सीधी रखें और सामने की ओर देखें।
2. बाजुओं को ऊपर की ओर फैलाएं, उन्हें सीधा रखें और ऊर्ध्वाधर स्थिति में हथेलियाँ के साथ एक दूसरे के समानांतर, अंदर की ओर।
3. धीरे-धीरे एड़ियों को जितना हो सके ऊपर उठाएं और पैर की उंगलियों पर खड़े हो जाएं। जितना हो सके शरीर को ऊपर की ओर तानें। 5-10 सेकंड के लिए इस स्थिति को बनाए रखना है।
4. वापस आने के लिए सबसे पहले एड़ियों को फर्श पर लाएं। धीरे से हाथों को जाँघोंकी तरफ से नीचे लाएँ और आराम करें।

लाभ:

- यह पूरे शरीर की मांसपेशियों को लंबवत खिंचाव देता है।
- यह जांघों, घुटनों और टखनों को मजबूत करता है।
- यह बच्चों की लंबाई बढ़ाने में मदद करता है।
- यह आसन व्यक्ति केआत्म-जागरूकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- यह आलस्य और सुस्ती को दूर करने में मदद करता है।

सीमायें: जिन लोगों को चक्कर आने की शिकायत है उन्हें इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

कटिचक्रासन:संस्कृत में कटि का अर्थ है 'कमर' और चक्र का अर्थ है 'पहिया'। इस आसन में कमर को दायीं और बायीं ओर घुमाया जाता है। बाजुओं के साथ-साथ कमर की हरकतें कुछ पहिया की तरह दिखती हैं। इसलिए इसे कटिचक्रासन कहा जाता है।

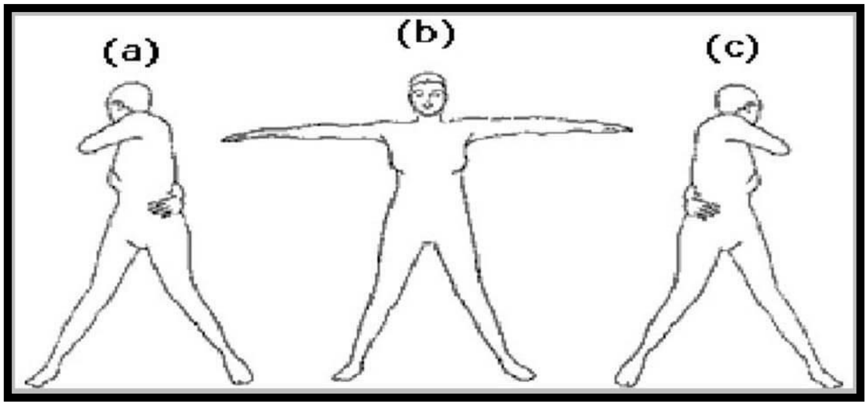

Source: https://vishwashantiyoga.com/kati-chakrasana

कटिचक्रासन के चरण:

1. पैरों के बीच 12 इंच की दूरी बनाकर जमीन पर सीधे खड़े हो जाएं।
2. अब बाजुओं को हथेलियों के कंधे के स्तर एक दूसरे का सामने रखते हुए शरीर के सामने फैलाकर रखें|
3. सांस भरते हुए बाजुओं को धीरे-धीरे अपने शरीर की दाहिनी ओर घुमाएं तरफ।
4. अपने शरीर को कमर से दाहिनी ओर मोड़ें और जहाँ तक संभव हो अपनी बाँहों को पीछे की ओर ले जाएँ।
5. दायीं ओर झूलते समय दाहिने हाथ को रखें सीधा और बायां हाथ मुड़ा हुआ।
6. अभ्यास को बाईं ओर घुमा–-कर भी दोहराएं।

लाभ:

- स्लिम बनाने में मदद करता है।
- यह कब्ज से राहत देता है और काठ का क्षेत्र (lumber region) मजबूत बनाता है।
- यह सांस की बीमारियों के लिए अच्छा है। इससे फेफड़ों का क्षय रोग रोका जा सकता है।
- यह कंधे, गर्दन, हाथ, पेट, पीठ और जांघ को मजबूत करता है।

सीमायें: रीढ़ की हड्डी में पुराने दर्द या चोट से पीड़ित होने पर इसका अभ्यास न करें|

सिंहासन:

संस्कृत में सिम्हा का अर्थ है 'शेर'। इस आसन में चेहरा खुला मुंह और जीभ ठुड्डी की ओर खिंचे हुए सिंह का भयंकर रूप जैसा दिखता है, इसलिए इसे सिंहासन कहते हैं|

Source: https://www.oklife.in/2016/06/blog-post.html

सिंहासनके चरण:

1. वज्रासन में हथेलियों को घुटनों पर रखकर बैठ जाएं।
2. घुटनों को अलग रखें।
3. दोनों एड़ियों को मूलाधार के नीचे ऊपर की ओर रखें।
4. उंगलियों को फैलाते हुए दोनों हथेलियों को संबंधित घुटनों पर रखें।
5. आगे की ओर झुकें और हथेलियों को फर्श पर घुटने के बीच रखें।
6. मुंह खोलें और जीभ को जितना संभव हो सके फैलायें और भौंहों के बीच केंद्र को देखें।
7. भौंहों का बीच दृष्टि को छोड़ें और अपनी आंखों को आराम दें।
8. हथेलियों को संबंधित घुटनों पर रखकर वज्रासन में आएं और आराम करें।

लाभ:

- यह चेहरे और गर्दन की मांसपेशियों के लिए फायदेमंद होता है।
- जीभ अधिक लोचदार और स्वस्थ हो जाती है।
- लार ग्रंथियां मजबूत हो जाती हैं।
- यह थायराइड के कामकाज को नियंत्रित करता है।

- यह सुस्ती और अवसाद को कम करने में मदद करता है|

सीमायें:पीठ दर्द, गठिया कूल्हे और घुटने, गले की समस्या और जबड़े में दर्द से पीड़ित होने पर इसका अभ्यास न करें।

मंडुकासन:

मंडुका एक संस्कृत शब्द है जिसका का अर्थ है 'मेंढक'। इस आसन में अंतिम आसन मेंढक के आकार जैसा दिखता है। इसलिए, इसका नाम मंडुकासन है।

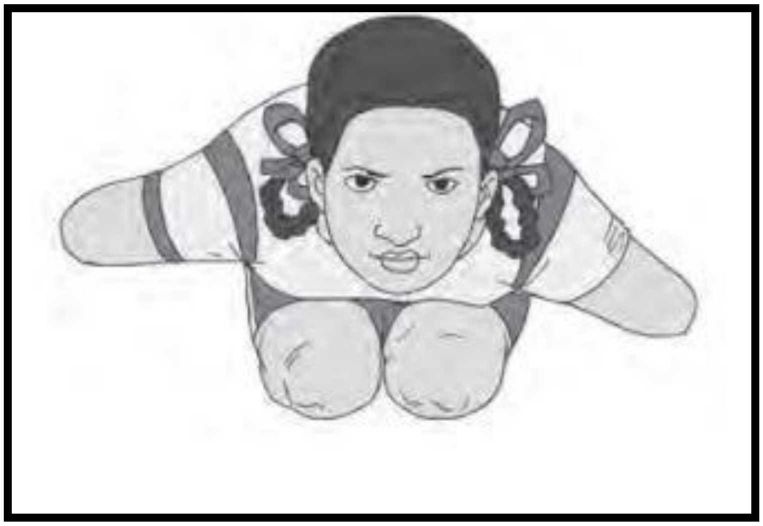

Source: NCERT

मंडुकासन के चरण:

1. वज्रासन में बैठें।
2. अंगूठों को अंदर की ओर से मुट्ठी बनाकर नाभि के पास रखें और नाभि क्षेत्र को दबाएं।
3. धीरे-धीरे सांस छोड़ें, कमर से आगे की ओर झुकें, छाती को नीचे करें, ताकि वह जांघों पर टिकी रहे।
4. सिर और गर्दन को ऊपर उठाकर सामने की ओर टकटकी लगाकर देखें।
5. 5-10 सेकंड के लिए आराम से स्थिति बनाए रखें।
6. आसन को छोड़ने के लिए ट्रंक उठाकर वापस बैठने की स्थिति में आ जाएं अपनी मुट्ठियों को नाभि क्षेत्र से हटाकर वज्रासन में बैठ जाएं।

लाभ:

- ये आसन भारी वजन पेट, जांघ या कूल्हे वाले लोगों के लिए फायदेमंद है।
- यह पेट से गैसों को खत्म करता है।

- यह कब्ज, मधुमेह और पाचन विकार से पीड़ित लोगों को लाभ पहुंचाता है।

सीमायें:स्लिप डिस्क, लम्बर स्पॉन्डिलाइटिस या रीढ़ की व किसी अन्य प्रमुख बीमारियों में पीड़ित व्यक्ति को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए|

उत्ताना-मंडूकासन: उत्ताना का अर्थ है 'सीधा' या 'फैला हुआ' और मंडुका का अर्थ है 'मेंढक'। इस आसन की अंतिम स्थिति में शरीर एक फैला हुआ या सीधा मेंढक जैसा दिखता है, इसलिए इसे उत्ताना-मंडूकासन कहा जाता है।

Source: NCERT

उत्ताना-मंडूकासन के चरण:

1. वज्रासन में बैठें।
2. दोनों घुटनों को इतना चौड़ा रखें कि दोनों पैरों के पंज एक दूसरे को स्पर्श करें। सिर, गर्दन और धड़ को सीधा रखा जाता है। आंखें बंद या खुली रखी जाती हैं|
3. बाजुओं को सिर के ऊपर उठाएं, मोड़ें और पीछे ले जाएं।
4. दायीं हथेली को बायें कंधे के नीचे और बायीं हथेली को दायें कंधे के नीचे रखें।
5. इस स्थिति को आराम से 5-10 सेकेंड तक बनाए रखें।
6. वापस आने के लिए हाथों को एक-एक करके हटा लें, घुटनों को आपस में मिला लें और वज्रासन में आ जाएं।

लाभ:

- यह कमर दर्द को कम करने में मदद करता है।
- यह छाती और पेट में रक्त परिसंचरण में सुधार करता है।
- यह पेट और कंधे की मांसपेशियों को टोन करता है।
- यह डायाफ्राम की गति में सुधार करके फेफड़ों की कार्यप्रणाली में सुधार करता है।

सीमायें:पुराने घुटने के दर्द और बवासीर से पीड़ित लोगों को इस आसन से बचना चाहिए।

कुक्कुटासन:

इसे कुक्कुटासन कहा जाता है क्योंकि यह आसन मुर्गा की मुद्रा का अनुकरण करता है। यह एक संतुलनकारी मुद्रा है, इसलिए इसका अभ्यास सावधानी से करना चाहिए। इस अभ्यास को करने से पहले, व्यक्ति के पास पद्मासन का पर्याप्त अभ्यास होना चाहिए।

Source: https://www.yogicwayoflife.com/kukkutasana-the-cockerel-pose/

कुक्कुटासनके चरण:

1. पद्मासन में बैठें। अपना हाथ साइड में रखें।
2. अब बाजुओं को पिंडलियों और जाँघों के बीच डालें जब तक हथेलियाँ फर्श पर न पहुँच जाएँ।
3. सांस भरते हुए शरीर को हवा में जितना हो सके ऊपर उठाएं। शरीर को हाथों पर संतुलित करें| गर्दन सिर को सीधा रखें।
4. सामान्य सांस के साथ 5-10 सेकंड के लिए आराम से स्थिति बनाए रखें।
5. आसन को छोड़ने के लिए सास नीचे करें और शरीर फर्श पर ले आएं। भुजाओं को बाहर निकालें और पद्मासन में बैठ जाएं।

लाभ:

- यह आसन कंधे, बाहों और कोहनी को मजबूत करने में मदद करता है
- यह आसन संतुलन और स्थिरता की भावना को विकसित करने में भी मदद करता है।
- यह शरीर को मजबूत बनाता है।
-

सीमायें:हृदय रोग या उच्च रक्त दबाव से पीड़ित लोगों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए|

अकर्ण धनुरासन:अकर्ण का अर्थ है 'कान' और धनुर का अर्थ है 'धनुष'। इस आसन में मुद्रा 'धनुष' की तरह दिखती है।इस आसन में हाथ को धनुष और तीर की तरह कान तक खींचा जाता है। इसलिए इसे अकर्ण धनुरासन कहा जाता है।

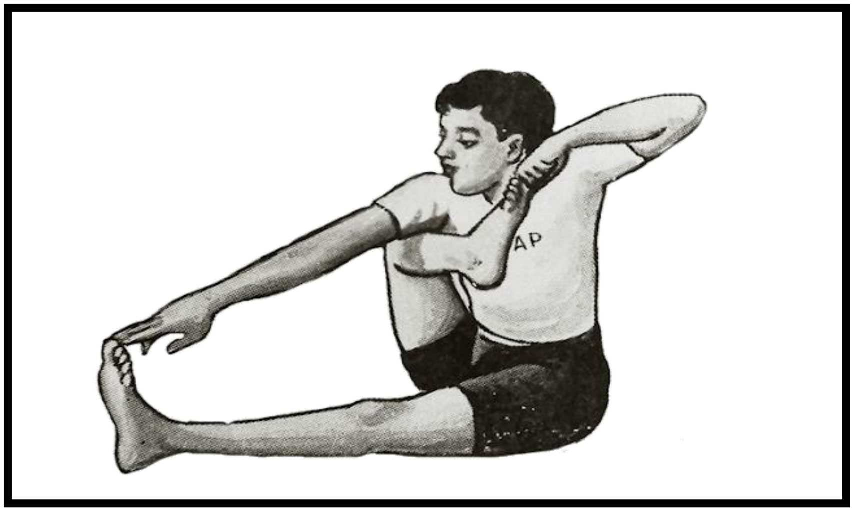

Source: https://amityogavart.blogspot.com

अकर्ण धनुरासनकेचरण:

1. बैठ जाएं और दोनों पैरों को सामने फैलाएं। दोनों हाथों को शरीर के बगल में रखें।
2. हथेलियां जमीन पर टिकी होनी चाहिए, उंगलियां एक साथ आगे की ओर इशारा करते हुए।
3. बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली और अंगूठे द्वारा दाहिने बड़े पैर के अंगूठे को पकड़ें।
4. दाहिने हाथ की तर्जनी और अंगूठे की सहायता से हुक बना लें। बाएं पैर के अंगूठे को पकड़ें।
5. दाहिने पैर को घुटने से मोड़ें। पैरों के पंजों को अगूंठे से इस प्रकार खींचे कि यह बाएं कान तक पहुंच जाए।
6. कुछ समय तक़रीबन 5 से 10 सेकेंड तक इसी स्थिति में रहें।
7. वापस आने के लिए दाहिने पैर को नीचे करें, हाथ को किनारे से छोड़ें और इसे रख दें। अब बाएं पैर को फर्श पर ले आएं। दाहिने हाथ को छोड़ दें और इसे शरीर के बगल में रख दें।(दूसरी तरफ से पैरों और हाथों की स्थिति बदलते हुए इसे करें।)

लाभ:

- यह आसन कब्ज और अपच में लाभकारी होता है।
- यह पेट की मांसपेशियों, पैर व बाहों की मांसपेशियों को मजबूत करता है।

- यह पैरों को लचीला बनाता है।

परिसीमन:रीढ़ की हड्डी की शिकायत से पीड़ित होने, कूल्हे के जोड़ों और कटिस्नायुशूल का विस्थापन पर इस अभ्यास को न करें।

मत्स्यासन

संस्कृत में मत्स्य का अर्थ है 'मछली'। इस आसन की अंतिम मुद्रा में, शरीर तैरती हुई मछली का आकार ले लेता है। मुड़े हुए पैर मछली की पूंछ से मिलते जुलते हैं, इसलिए इसे मत्स्यासन कहा जाता है। यह आसन किसी विशेषज्ञ की देखरेख में करना चाहिए।

Source: https://nexoye.com/matsyasana-fish-pose-benefits-steps-precautions

मत्स्यासनके चरण:

1. पद्मासन में बैठें।
2. कोहनियों के सहारे पीठ के बल लेट जाएं।
3. गर्दन और छाती को थोड़ा ऊपर उठाएं; पीठ धनुषाकार और जमीन से उठा होना चाहिए या।
4. सिर को पीछे की ओर मोड़ें और सिर फर्श पर लगाएं।
5. दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से हुक बनाएं; तथा बड़े पैर की उंगलियों को विपरीत हाथों के हुक से पकड़ें।
6. इस स्थिति को 10-15 सेकंड या जितनी देर तक बनाए रखें।
7. वापस आने के लिए, पैर की उंगलियों को छोड़ दें; ज़मीन पर हाथ रखें; हाथों के सहारे सिर ऊपर उठाएं। कोहनियों के सहारे बैठ जाएं।

लाभ:

- यह मस्तिष्क की रक्त की आपूर्ति में सुधार करता है।
- यह थायरॉयड ग्रंथि के कामकाज को नियंत्रित करता है और प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार करता है।
- यह पीठ दर्द और सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस को कम करता है।

- यह रक्त को पैरों से पेल्विक क्षेत्र की ओर मोड़ता है और पेट की मांसपेशियों के स्वर को बढ़ाने में मदद करता है।
- यह फेफड़ों और श्वसन विकारों में लाभकारी है।

सीमाएं:चक्कर आने की स्थिति, हृदय रोग, हर्निया, गठिया, घुटने और टखने और रीढ़ की समस्या में इस आसन के अभ्यास से बचें।

भुजंगासन:भुजंगासन में दो शब्द भुजंगा और आसन शामिल हैं। संस्कृत में,भुजंगा का अर्थ है नाग (सांप) और आसन का अर्थ है मुद्रा। इस आसन की अंतिम स्थिति में शरीर हुड वाले सांप के आकार जैसा दिखता है, इसलिए इस आसन को भुजंगासन कहा जाता है।

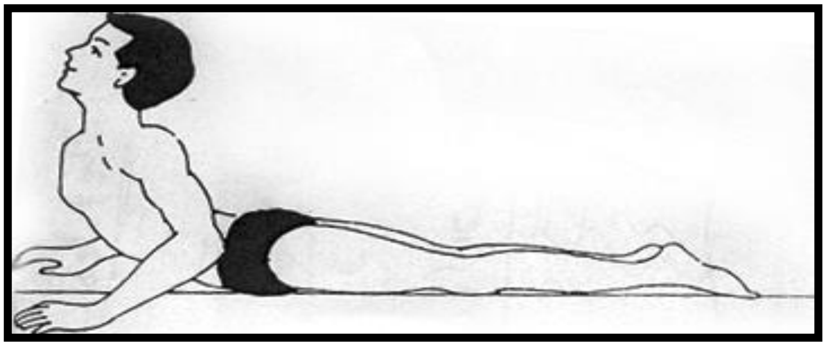

Source: https://www.achhikhabar.com/2019/02/20/yoga-asanas-in-hindi

भुजंगासनके चरण:

1. माथे को फर्श से छूते हुए जमीन पर झुकें; पैर एक साथ, हाथ जांघों के किनारे ।
2. हाथों को कोहनियों पर मोड़ें और हथेलियों को कंधों के बगल में,अंगूठे बगल के नीचे के, उंगलियों की नोक कंधे की रेखा को पार नहीं करते हुए।
3. सांस भरते हुए धीरे-धीरे सिर, गर्दन और कंधों को ऊपर उठाएं। कंधों को पीछे की ओर झुका होना चाहिए।
4. धड़ को नाभि क्षेत्र तक ऊपर उठाएं। ठुड्डी को जितना हो सके ऊपर उठाएं।
5. आंखों को ऊपर की ओर देखते रहना चाहिए।
6. 5-10 सेकंड के लिए या जब तक आराम से स्थिति बनाए रखें।
7. वापस आने के लिए नाभि क्षेत्र के ऊपरी हिस्से, छाती, कंधे, ठुड्डी और सिरको नीचे लाएं।
8. माथे को जमीन पर और हाथों को शरीर के साथ, हाथों को जाँघों के पास रखें। आराम करें।

लाभ:

- यह स्पाइनल कॉलम को प्रभावित करता है और इसे लचीला बनाता है।
- यह पाचन संबंधी शिकायतों का समाधान करता है।

- यह पेट के अंदर के दबाव को बढ़ाता है जिससे आंतरिक अंगों को लाभ होता है, विशेष रूप से यकृत और गुर्दे।
- यह तन और मन दोनों को आराम देता है।

सीमायें:हर्निया, पेप्टिक अल्सर, आंतों के तपेदिक से पीड़ित और तीव्र पेट दर्द वाले लोगों को इस अभ्यास से बचना चाहिए।

मकरासन:इसमुद्रा को मकरासन कहा जाता है क्योंकि इसमें शरीर मकर के आकार जैसा दिखता है, जिसका संस्कृत में अर्थ है 'मगरमच्छ'। मकरासन शरीर और दिमाग के लिए एक आराम है| यह आसन और तनाव कम करने के लिए बहुत फायदेमंद है।

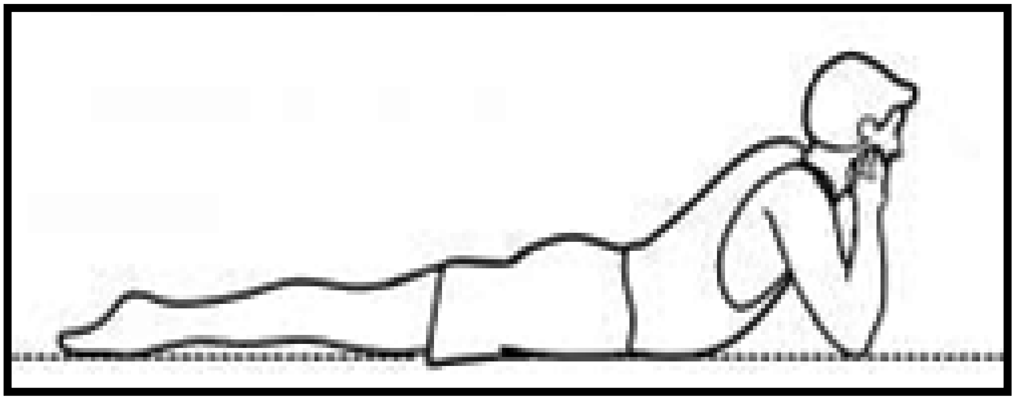

Source: https://helloswasthya.com/fitness/balance-flexibility/makarasana

मकरासन के चरण:

1. पेट के बल लेट जाएं।
2. पैरों को एड़ी अंदर रखते हुए आरामदायक दूरी पर रखें और पैर की उंगलियां बाहर की ओर ।
3. हाथों को कोहनियों पर मोड़ें और सिर के नीचे रखें।
4. सिर को बाजुओं के तकिये पर रखें, आँखें बंद करें और आराम करें|
5. वापस आने के लिए बाजुओं को शरीर और पैरों के साथ में लाएं।

लाभ:

- परंपरागत रूप से यह आराम की मुद्रा है।
- यह लगभग सभी मनोदैहिक विकारों में लाभकारी है।
- यह श्वसन अंगों के साथ-साथ पाचन अंग के लिए भी फायदेमंद है।

सीमायें:जिन्हें मोटापे और हृदय संबंधी समस्याओं की शिकायत है उनको इस अभ्यास से बचना चाहिए।

शलभासन:इस आसन का नाम टिड्डियों के नाम पर रखा गया है। संस्कृत में शलभा 'टिड्डी' को संदर्भित करता है और आसन का अर्थ है 'आसन'। इस आसन की अंतिम मुद्रा में शरीर टिड्डे जैसा दिखता है।

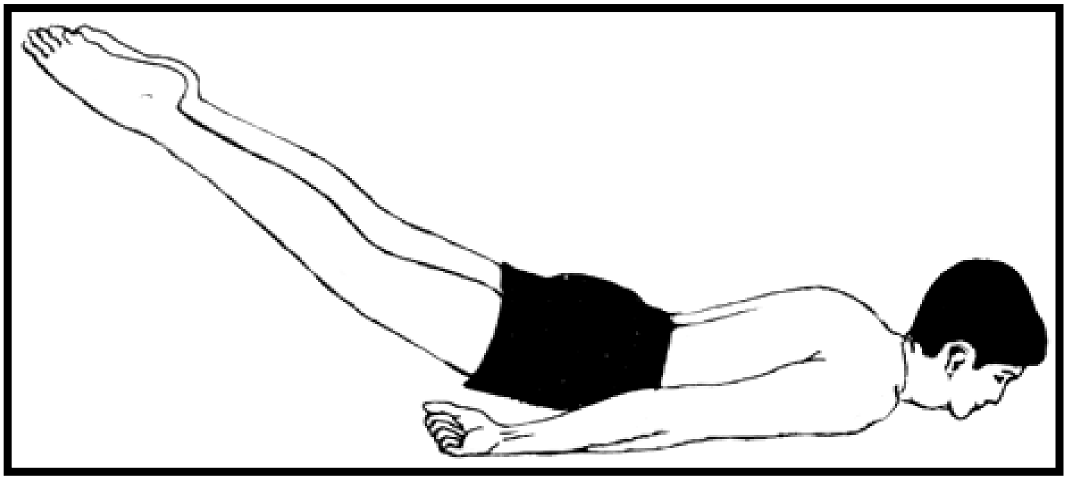

Source: Mishra, Gopal (2021) "तन-मनस्वस्थरखनेके10 उपयोगीयोगासन, www.achgabar.com

शलभासन के चरण:

1. पेट के बल लेट जाएं, पैर एक साथ, हाथ जांघों के किनारे, हथेलियाँ नीचे की ओर और एड़ी साथ में। छाती और माथा जमीन पर रखना चाहिए।
2. दोनों हथेलियों को जाँघों के नीचे रखें।
3. ठुड्डी को थोड़ा आगे की ओर खींचे और फर्श पर टिका दें।
4. सांस भरते हुए हथेलियों को जमीन पर दबाते हुए ऊपर उठाएं दोनों पैरों को जितना हो सके ऊपर की ओर उठाएं।
5. कुछ सेकंड के लिए सामान्य श्वास के साथ स्थिति बनाए रखें।
6. वापस आने के लिए पैरों को धीरे-धीरे नीचे फर्श पर ले आएं। हाथों को जाँघों से बाहर निकालें। पेट के बल लेट जाएं, पैर एक साथ, हाथ जांघों के किनारे और हथेलियां नीचे की ओर हों।

लाभ:

- शलभासन स्वायत्त तंत्रिका तंत्र विशेष रूप से पैरासिम्पेथेटिक सिस्टम को उत्तेजित करता है।
- यह पीठ के निचले हिस्से और श्रोणि अंगों को मजबूत करता है।
- यह हल्के साइटिका, पीठ दर्द और गैर-गंभीर स्लिप डिस्क की स्थिति में राहत देता है ।
- यह पैरों, जांघों, कूल्हों, नितंबों, पेट के निचले हिस्से, डायाफ्राम और कलाई के लिए एक अच्छा व्यायाम है।

- यह श्रोणि क्षेत्र में रक्त परिसंचरण में सुधार करता है।
- यह घुटनों के आसपास जांघों, कमर और पेट पर बनने वाली अत्यधिक चर्बी को कम करने में मदद करता है, जिससे शारीरिक बनावट और सकारात्मक शरीर की छवि में सुधार होता है।
- यह लीवर की कार्यप्रणाली को नियंत्रित करने में मदद करता है।
- यह रीढ़ की लोच और लचीलेपन को बढ़ाने के लिए फायदेमंद है।

सीमाएं:उच्च रक्तचाप, अस्थमा और हृदय रोग, कमजोर फेफड़े, हर्निया, पेप्टिक अल्सर और आंतों के क्षय रोग से पीड़ित लोगों को इस आसन के अभ्यास से बचना चाहिए।

धनुरासन: संस्कृत में धनुर का अर्थ है 'धनुष'। इसे धनुष मुद्रा कहा जाता है क्योंकि इस मुद्रा में शरीर एक धनुष के समान होता है जिसके साथ इसकी डोरी जुड़ी होती है। सूंड और जांघें धनुष का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकिहाथ और पैर तार की जगह लेते हैं

धनुरासनके चरण:

1. प्रवण स्थिति में लेट जाओ।
2. सांस छोड़ते हुए पैरों को धीरे-धीरे घुटनों के बल पीछे की ओर मोड़ें।
3. पंजों या टखनों को अपनी क्षमता के अनुसार हाथों से मजबूती से पकड़ें।
4. सांस भरते हुए जांघों, सिर और छाती को यथासंभव ऊपर उठाएं। खिंचाव करें और पैर की उंगलियों या टखनों को सिर की ओर लाएं। ऊपर की ओर देखें। 5-10 सेकंड के लिए आराम से स्थिति बनाए रखें।
5. वापस आने के लिए बाजुओं को छोड़ दें और उन्हें शरीर के बगल में रखें।। पैरों को सीधा करें। पैरों, सिर, कंधों और छाती को धीरे-धीरे फर्श पर लाएं और प्रारंभिक स्थिति में आराम करें।

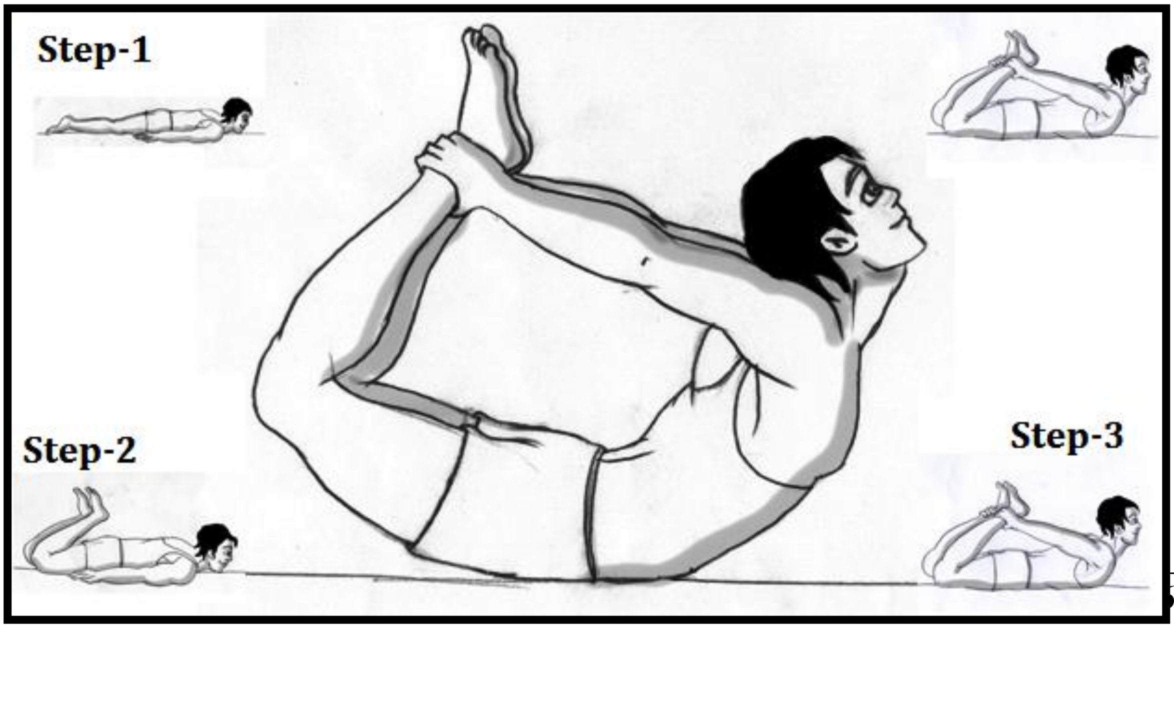

Source: ibid

लाभ:

- धनुरासन कंधों के जोड़ घुटनों, टखनों और पूरी रीढ़ की हड्डी के लिए एक अच्छा व्यायाम है।
- यह मधुमेह मेलिटस के प्रबंधन के लिए फायदेमंद है क्योंकि यह जिगर और अग्न्याशय की मालिश करता है।
- यह पेट, कमर और कूल्हों के आसपास की अतिरिक्त चर्बी को कम करने में मदद करता है।
- यह पीठ, हाथ, पैर, कंधे, गर्दन और पेट में स्नायुबंधन, मांसपेशियों और नसों को मजबूत करता है।
- यह थायराइड और अधिवृक्क ग्रंथियों को उत्तेजित और नियंत्रित करता है।
- यह पीठ दर्द को कम करने में मदद करता है।
- यह झुकी हुई पीठ और झुके हुए कंधों की स्थिति के लिए अच्छा है।

परिसीमन: उच्च रक्तचाप, हर्निया, पेप्टिक अल्सर, अपेंडिसाइटिस, कोलाइटिस स्लिप डिस्क, लम्बर स्पॉन्डिलाइटिस से पीड़ित व्यक्ति को यह आसन नहीं करना चाहिए।

सर्वांगासन: सर्वांगासन में तीन शब्द शामिल हैं: सर्व, अंग और आसन। संस्कृत में, सर्व का अर्थ है 'संपूर्ण' और अंग का अर्थ है 'शरीर के भाग' और आसन का अर्थ है 'आसन'। यह आसन सर्वांगासन कहलाता है, क्योंकि यह पूरे शरीर को प्रभावित करता है।

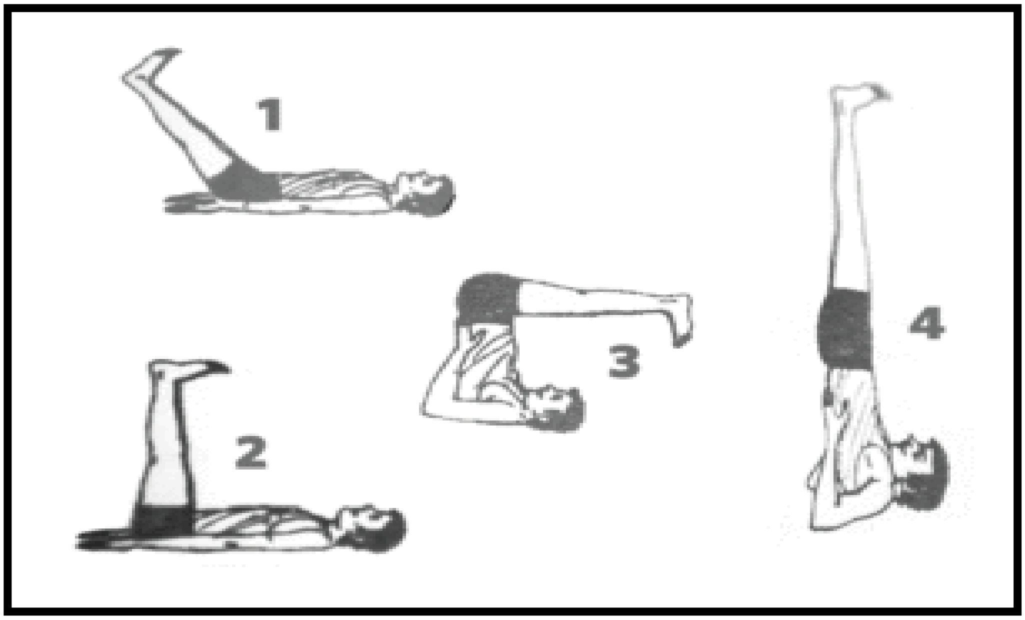

Source: ibid.

सर्वांगासनके चरण

1. हाथों को जाँघों के साथ पीठ के बल लेट जाएँ, हथेलियाँ ज़मीन पर टिकी हुई हों।
2. हाथों को नीचे की ओर धकेलते हुए धीरे-धीरे दोनों पैरों को 30डिग्री तक उठाएं। कुछ सेकंड के लिए इस स्थिति में रहें।
3. धीरे-धीरे, टांगों को 60 डिग्री तक और ऊपर उठाएं और कुछ सेकंड के लिए इस स्थिति को बनाए रखें।
4. पैरों को 90 डिग्री तक और ऊपर उठाएं और कुछ सेकंड के लिए इसी स्थिति में रहें।
5. बाजुओं को कोहनी पर मोड़ें और हाथों को कूल्हों पर रखें। अब नितंबों को हाथों से दबाते हुए ऊपर उठाएं। पैरों, पेट और छाती को धड़ के साथ एक सीधी रेखा में ऊपर उठाएं। पीठ को सहारा देने के लिए हथेलियों को अपनी पीठ पर रखें।
6. छाती को आगे की ओर धकेलें ताकि वह ठुड्डी से मजबूती से दब जाए। कोहनियों को एक दूसरे के पास रखें।
7. छाती को 5-10 सेकंड के लिए आराम से स्थिति में बनाए रखें।वापस आने के लिए रीढ़ की हड्डी को बहुत धीरे-धीरे फर्श के साथ नीचे करें। पीठ को सहारा देते हुए हाथों से नितंबों को नीचे करें और नितंबों को जमीन पर लाएं। पैरों को 90^0तक लाएं और वहीं रुक जाएं। हाथों को शरीर के पास जमीन पर मजबूती से टिकाएं। पैरों को अभी भी 60^0और 30^0 तक नीचे करें और फिर धीरे-धीरे जमीन पर टिकाएं और आराम करें।

लाभ:

- यह थायराइड की क्रिया को नियंत्रित करता है।
- यह मस्तिष्क में रक्त के संचार को बढ़ाने में मदद करता है।
- यह गर्दन क्षेत्र को मजबूत करता है।
- यह एंडोक्राइन ग्रंथि से संबंधित समस्याओं के प्रबंधन में मदद करता है।

सीमाएं:उच्च रक्तचाप, मिर्गी, गर्दन और काठ के क्षेत्र में दर्द से पीड़ित, अत्यधिक मोटापा और हृदय संबंधी शिकायत वाले लोगों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

हलासन:संस्कृत और हिंदी में हल का अर्थ है 'हल'। इस आसन की अंतिम स्थिति में, शरीर हल के आकार जैसा दिखता है। जैसे हल कठोर जमीन को नरम बनाता है, इस आसन में नसों को फैलाया जाता है जिससे शरीर की कठोरता कम हो जाती है।

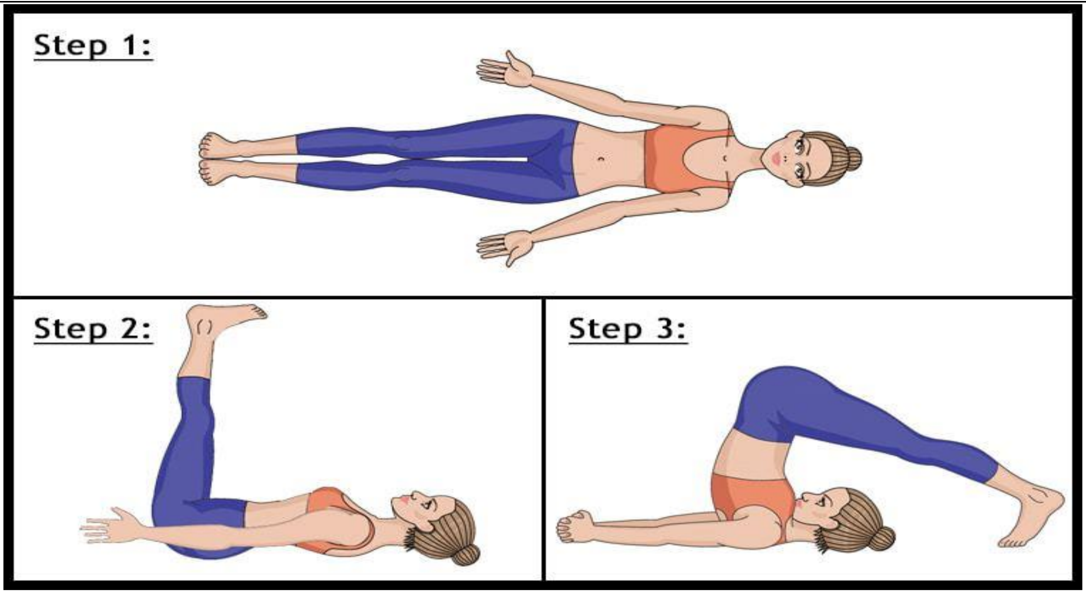

Source: Education Master.Com

हलासनके चरण:

1. लापरवाह स्थिति में लेटें, पैर एक साथ और हाथ शरीर के बगल में।
2. घुटनों को सीधा रखते हुए पैरों को 30° तक ऊपर उठाएं।
3. टांगों को पुन:60° तक और ऊपर उठाएं।
4. टांगों को और भी 90° तक ऊपर उठाएं, उन्हें लंबवत और सीधा रखें।
5. बाजुओं को दबाते हुए पैरों को सिर के ऊपर, पंजों को जमीन से छूते हुए धड़ को ऊपर उठाएं। पैरों को सिर से थोड़ा आगे की ओर धकेलें।
6. हाथ को फर्श पर सीधा रखें। 5-10 सेकंड के लिए स्थिति बनाए रखें।
7. वापस आने के लिए बाजुओं को हटा दें, धीरे-धीरे पीठ और नितंबों को जमीन पर टिकाएं, पैरों को 90^0की स्थिति में लाएं। पैरों को शुरुआती स्थिति में करें।

लाभ

- यह थायरॉयड ग्रंथि/पैराथायरायड ग्रंथि को अच्छा व्यायाम देता है।
- यह रीढ़ की हड्डी के स्तंभ और पीठ की गहरी मांसपेशियों को एक अच्छा खिंचाव देता है, जिससे रीढ़ मजबूत और स्वस्थ होती है।
- यह बच्चों की लंबाई बढ़ाने में मदद करता है।
- यह अपच और कब्ज की समस्या को दूर करता है।

सीमायें:रीढ़ की हड्डी में अकड़न, सर्वाइकल स्पॉन्डिलिटी, हर्निया, उच्च रक्तचाप और स्लिप डिस्क के मामले में इस आसन के अभ्यास से बचना चाहिए।

शवासन: संस्कृत में, शव का अर्थ है 'मृत शरीर'। इस आसन में शरीर यह एक मृत शरीर जैसा दिखता है, इसलिए इस आसन को शवासन कहा जाता है। जैसा कि नाम से पता चलता है, यह आसन व्यक्ति को तनाव से दूर ले जाता है; तनाव को कम करता है और मन और शरीर को आराम देता है ।

https://media.istockphoto.com

शवासन के चरण :

1. सुपाइन पोजीशन में सीधे लेट जाएं।
2. पैरों को 8-12 इंच की दूरी पर रखते हुए पैरों को सीधा रखें। एड़ियों को अंदर और पंजों को बाहर रखें।
3. हथेलियों को शरीर से थोड़ा ऊपर की ओर रखते हुए उँगलियों से अर्ध-लचीली स्थिति में रखें।
4. गहरी सांस लें और साथ ही आंखें बंद कर लें। अपने शरीर में पूर्ण विश्राम महसूस करें। अपने शरीर के सभी हिस्सों को आराम देने की कोशिश करें।
5. सामान्य रूप से सांस लें और सांस के प्रवाह पर ध्यान केंद्रित करें।
6. वापस आने के लिए अपनी आंखें खोलें और शुरुआती स्थिति में आ जाएं।

लाभ:

- यह तनाव को दूर करता है।
- यह उच्च रक्तचाप को कम करने में उपयोगी है।
- यह शरीर और मन को आराम देता है।
- यह शरीर से थकान को दूर करता है।

- यह अनिद्रा के मामलों में फायदेमंद है क्योंकि यह नींद को लाने में मदद करता है।

सीमायें:निम्न रक्तचाप से पीड़ित होने पर यह अभ्यास न करें।

5.5.2 प्राणायाम:

प्राण का अर्थ है 'सार्वभौमिक जीवन शक्ति' और अयामा का अर्थ है 'नियमन'। प्राण वह महत्वपूर्ण ऊर्जा है जिसके

Source: www.jagran.com

बिना शरीर नहीं बचेगा। प्राणायाम श्वास तकनीक से संबंधित हैजो सांस लेने की क्षमता को बढ़ाने में मदद करते हैं। कुछ सामान्य प्राणायाम में अनुलोम-विलोम, भस्त्रिका, उज्जयी, शीतली|

अनुलोम-विलोम प्राणायाम(वैकल्पिक नासिका श्वास)

अनुलोम का अर्थ है 'की ओर' और विलोम का अर्थ है 'उल्टा'।चूँकि इस विधि में प्रत्येक बार साँस लेने और छोड़ने के लिए वैकल्पिक नथुने का उपयोग किया जाता है साथ ही व्यक्ति बायीं नासिका से श्वास लेता है और फिर दायें नथुने से श्वास छोड़ता है, फिर दायें नथुने से श्वास लेते हुए क्रम को उलट देता है इसी कारण इस विधि को अनुलोम-विलोमकहा जाता है।

Source: http://upendradubey0008.blogspot.com/2017/06/blog-post.html

अनुलोम-विलोम प्राणायाम के चरण

1. पद्मासन या किसी भी आरामदायक ध्यान मुद्रा अन्य मुद्रा में बैठ जाएं|
1. शरीर को सीधा रखें और हाथों को संबंधित घुटने पर रखें।
2. दाहिने हाथ को ऊपर उठायें और दाहिने अंगूठे को दाहिने नथुने पर रखेंऔर इसे बंद करें।
3. बायीं नासिका छिद्र से धीरे-धीरे श्वास लें।
4. बाएं नथुने को अनामिका उंगली और छोटी उंगली से बंद करें और दाएं नथुने से धीरे-धीरे सांस छोड़ें।फिर से दाहिने नथुने से श्वास लें।
5. दाहिने नथुने को अंगूठे से बंद करें और बायां नथुना से श्वास को बाहर निकालें। यह अनुलोम-विलोम का एक चक्र है।

   इसे 10 बार दोहराएं

लाभ

- यह मन को शांत करता है और एकाग्रता में सुधार करता है।
- यह शरीर की सभी कोशिकाओं को पर्याप्त ऑक्सीजन युक्त रक्त प्रदान करके उनके कामकाज में सुधार करता है।
- यह रक्त को शुद्ध करता है।
- यह मस्तिष्क को रक्त की आपूर्ति में सुधार करता है।
- यह रक्तचाप को नियंत्रित करने में मदद करता है।
- यह चिंता को कम करके तनाव को प्रबंधित करने में मदद करता है।
- यह अस्थमा, उच्च या निम्न रक्तचाप, अनिद्रा, पुराने दर्द, अंतःस्रावी असंतुलन, हृदय-समस्या, अति सक्रियता आदि जैसे कई रोगों में लाभकारी है।

सीमायें:शुरुआत में सांस को रोके रखने से बचना चाहिए।

भस्त्रिका प्राणायाम:भस्त्रिका शब्द संस्कृत के एक शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है 'भस्त्र''धौंकनी' की एक जोड़ी।इस प्राणायाम में भस्त्र या धौंकनी की क्रिया का अनुकरण किया जाता है। इस प्राणायाम में श्वास तेजी से आगे बढाते हुए और बलपूर्वक किया जाता है ।जिस प्रकार लोहार धौंकनी को जोर-जोर से जोर-जोर से फूंकता, फैलाता और सिकोड़ता है, उसी प्रकार पेट को तेजी से और तेजी से फैलाकर और सिकोड़कर सांस अंदर और बाहर ली जाती है।

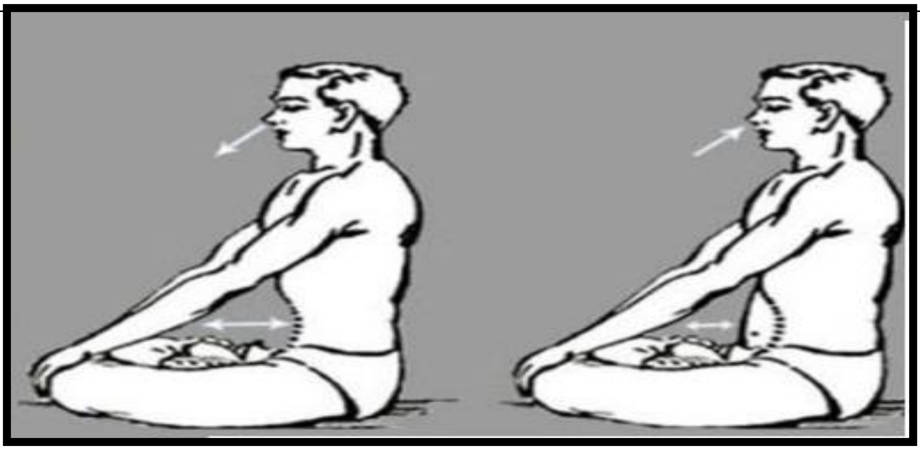

Source: https://www.achisoch.com/kapalbhati-pranayam-kaise-kare-fayde-benefits-in

भस्त्रिका प्राणायामचरण:

1. पद्मासन, अर्धपद्मासन या किसी अन्य ध्यान मुद्रा में बैठें। शरीर को सीधा रखें।
2. नासिका छिद्र से धीरे-धीरे श्वास लें।
3. फिर नासिका छिद्र से तेजी से और जोर से सांस छोड़ें।
4. तुरंत बल के साथ श्वास लें।
5. इस जोरदार तेजी से साँस छोड़ना और साँस लेना को एक से दस गिनती तक जारी रखें।
6. दसवीं सांस के अंत में, अंतिम साँस छोड़ने के बाद गहरी साँस लेना और धीमी साँस छोड़ना है। यह भस्त्रिका प्राणायाम का एक चक्र है।
7. इस राउंड के बाद दूसरा राउंड शुरू करने से पहले कुछ सामान्य सांसें लें।
8. भस्त्रिका प्राणायाम के तीन फेरे पूरे करें।
9. भस्त्रिक प्राणायाम की तकनीक में भिन्नता हो सकती है|

लाभ:

- यह गैस्ट्रिक आग को बढ़ाता है और भूख में सुधार करता है।
- यह कफ को नष्ट करता है।
- दमा की स्थिति में यह लाभकारी होता है।

सीमायें:भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास कान में इन्फेक्षन के दौरान नहीं करना चाहिए। हृदय रोग से पीड़ित,उच्च रक्तचाप, चक्कर, पेट के अल्सर के व्यक्ति को इस प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

5.6 सारांश:

व्यक्तित्व एक बहुत ही सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग रोज़मर्रा की ज़िंदगी में किया जाता है यह हमें बताता है कि व्यक्ति किस प्रकार का है। प्रत्येक व्यक्ति आम तौर पर अधिकांश स्थिति में एक जैसा व्यवहार करता है । योगाभ्यास व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों जैसे-शारीरिक, संवेगात्मक बौद्धिक, आध्यात्मिकके विकास को प्रभावित करती हैं| योग में शरीर को स्वस्थ, लचीला एवं मन को एकाग्र बनाने के उद्देश्य से योगासनों का उपदेश योग के सभी प्रमुख ग्रन्थों में किया गया है।

आसन हमारे शारीरिक और मानसिक विकास के लिए फायदेमंद होते हैं| जैसे- ताड़ासन पूरे शरीर की मांसपेशियों को लंबवत खिंचाव देता है। यह जांघों, घुटनों और टखनों को मजबूत करता है। यह बच्चों की लंबाई बढ़ाने में मदद करता है। यह आसन व्यक्ति के आत्म-जागरूकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
कटिचक्रासन यह कब्ज से राहत देता है और काठ का क्षेत्र (lumber region) मजबूत बनाता है। यह सांस की बीमारियों के लिए अच्छा है। इससे फेफड़ों का क्षय रोग रोका जा सकता है। यह कंधे, गर्दन, हाथ, पेट, पीठ और जांघ को मजबूत करता है।

सिंहासन चेहरे और गर्दन की मांसपेशियों के लिए फायदेमंद होता है। यह थायराइड के कामकाज को नियंत्रित करता है। यह सुस्ती और अवसाद को कम करने में मदद करता है| पीठ दर्द, गठिया कूल्हे और घुटने, गले की समस्या और जबड़े में दर्द से पीड़ित होने पर अभ्यास न करें ।

मंडुकासन: भारी वजन पेट, जांघ या कूल्हे वाले लोगों के लिए फायदेमंद है । यह पेट से गैसों को खत्म करता है। यह कब्ज, मधुमेह और पाचन विकार से पीड़ित लोगों को लाभ पहुंचाता है।

उत्ताना-मंडूकासन कमर दर्द को कम करने में मदद करता है। यह छाती और पेट में रक्त परिसंचरण में सुधार करता है । यह पेट और कंधे की मांसपेशियों को टोन करता है।

कुक्कुटासन कंधे, बाहों और कोहनी को मजबूत करने में मदद करता है यह आसन संतुलन और स्थिरता की भावना को विकसित करने में भी मदद करता है। यह शरीर को मजबूत बनाता है।

अकर्ण धनुरासन कब्ज और अपच में लाभकारी होता है। यह पेट की मांसपेशियों,पैर व बाहों की मांसपेशियों को मजबूत करता है। यह पैरों को लचीला बनाता है।

मत्स्यासन मस्तिष्क को रक्त की आपूर्ति में सुधार करता है। यह थायरॉयड ग्रंथि के कामकाज को नियंत्रित करता है और प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार करता है। यह पीठ दर्द और सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस को कम करता है।

भुजंगासन यह स्पाइनल कॉलम को प्रभावित करता है और इसे लचीला बनाता है। यह पाचन संबंधी शिकायतों का समाधान करता है। यह पेट के अंदर के दबाव को बढ़ाता है जिससे आंतरिक अंगों को लाभ होता है, विशेष रूप से यकृत और गुर्दे। यह तन और मन दोनों को आराम देता है।

मकरासन परंपरागत रूप से यह आराम की मुद्रा है। यह लगभग सभी मनोदैहिक विकारों में लाभकारी है। यह श्वसन अंगों के साथ-साथ पाचन अंग के लिए भी फायदेमंद है।

शलभासन स्वायत्त तंत्रिका तंत्र विशेष रूप से पैरासिम्पेथेटिक सिस्टम को उत्तेजित करता है। यह हल्के साइटिका, पीठ दर्द और गैर-गंभीर स्लिप डिस्क की स्थिति में राहत देता है । यह घुटनों के आसपास जांघों, कमर और पेट पर बनने वाली अत्यधिक चर्बी को कम करने में मदद करता है, जिससे शारीरिक बनावट और सकारात्मक शरीर की छवि में सुधार होता है।

धनुरासन कंधों के जोड़ घुटनों, टखनों और पूरी रीढ़ की हड्डी के लिए एक अच्छा व्यायाम है। यह मधुमेह मेलिटस के प्रबंधन के लिए फायदेमंद है क्योंकि यह जिगर और अग्न्याशय की मालिश करता है। यह पीठ, हाथ, पैर, कंधे, गर्दन और पेट में स्नायुबंधन, मांसपेशियों और नसों को मजबूत करता है।

*सर्वांगासन*यह थायराइड की क्रिया को नियंत्रित करता है। यह मस्तिष्क में रक्त के संचार को बढ़ाने में मदद करता है। यह एंडोक्राइन ग्रंथि से संबंधित समस्याओं के प्रबंधन में मदद करता है।

हलासन थायरॉयड ग्रंथि/पैराथायरायड ग्रंथि को अच्छा व्यायाम देता है। यह रीढ़ की हड्डी के स्तंभ और पीठ की गहरी मांसपेशियों को एक अच्छा खिंचाव देता है, जिससे रीढ़ मजबूत और स्वस्थ होती है।

शवासनयह तनाव को दूर करता है। यह उच्च रक्तचाप को कम करने में उपयोगी है। यह अनिद्रा के मामलों में फायदेमंद है क्योंकि यह नींद को लाने में मदद करता है।

प्राणायाम मेंप्राण का अर्थ है 'सार्वभौमिक जीवन शक्ति' और अयामा का अर्थ है 'नियमन'। प्राण वह महत्वपूर्ण ऊर्जा है जिसके बिना शरीर नहीं बचेगा। प्राणायाम श्वास तकनीक से संबंधित है जो सांस लेने की क्षमता को बढ़ाने में मदद करते हैं। कुछ सामान्य प्राणायाम में अनुलोम-विलोम, भस्त्रिका, उज्जयी, शीतली| यह शरीर की सभी कोशिकाओं को पर्याप्त ऑक्सीजन युक्त रक्त प्रदान करके उनके कामकाज में सुधार करता है। यह रक्त को शुद्ध करता है। यह चिंता को कम करके तनाव को प्रबंधित करने में मदद करता है। यह अस्थमा, उच्च या निम्न रक्तचाप, अनिद्रा, पुराने दर्द, अंतःस्रावी असंतुलन, हृदय-समस्या, अति सक्रियता आदि जैसे कई रोगों में लाभकारी है। शुरुआत में सांस को रोके रखने से बचना चाहिए।

भस्त्रिका प्राणायाममें भस्त्र या धौंकनी की क्रिया का अनुकरण किया जाता है। इस प्राणायाम में श्वास तेजी से आगे बढाते हुए और बलपूर्वक किया जाता है । यह भूख में सुधार करता है। यह कफ को नष्ट करता है। दमा की स्थिति में यह लाभकारी होता है।

5.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

1. व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों का उल्लेख कीजिए।
2. योग के अर्थ को स्पष्ट करते हुये योग के महत्व पर प्रकाश डालिये|

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. प्राणायाम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें
2. भस्त्रिका प्राणायाम के लाभ लिखिए|
3. आसान के लाभ बताइये|

वस्तुनिष्ठ प्रश्न:

1. योग का प्रभाव पड़ता है।

(क) शारीरिक स्वास्थ्य पर

(ख) मानसिक स्वास्थ्य पर

(ग) आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर

(घ) उपर्युक्त सभी

2.'योग शब्द बना है-

(क) युज् समाधौ धातु से

(ख) युज संयमने धातु से

(ग) युजिर योगे धातु से

(घ) उपर्युक्त सभी

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर:

1. घ

2. घ

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Easwaran, Eknath (2006),The BhagavadGita-For Daily Living, Jaico Publishing House,
  Mahatma Gandhi Road, Mumbai, India
- **Tiwary,S. (2016)**Personality Development through Yoga, International Journal ofScience and Consciousness; 2(2): 34- 37, Vol. 2, No. 2, Pages 34-37 ISSN: 2455-2038.
- **Mishra, Gopal (2021)**"तन-मन स्वस्थ रखने के 10 उपयोगी योगासन,www.achgabar.com
- योग एवं आयुर्वेद BY 203, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

Web Sources

- https://vishwashantiyoga.com/kati-chakrasana
- www.ncert.nic.in
- https://vishwashantiyoga.com/kati-chakrasana
- https://www.oklife.in/2016/06/blog-post.html
- https://www.yogicwayoflife.com/kukkutasana-the-cockerel-pose/
- https://amityogavart.blogspot.com
- https://nexoye.com/matsyasana-fish-pose-benefits-steps-precautions
- https://www.achhikhabar.com/2019/02/20/yoga-asanas-in-hindi
- https://helloswasthya.com/fitness/balance-flexibility/makarasana
- www.educatinmaster.com
- www.jagran.com
- http://upendradubey0008.blogspot.com/2017/06/blog-post.html
- https://www.achisoch.com/kapalbhati-pranayam-kaise-kare-fayde-benefits-in

इकाई –6 व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त:- फ्रायड, एरिकसन,हार्नी, सुलिवान

(Psychodynamic Theory of Personality: - Freud, Erikson, Horney and Sullivan)

इकाई संरचना-

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त का परिचय

6.5 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त

6.6 इरिक्सन का व्यक्तित्व सिद्धान्त

6.7 हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त

6.8 सुलीवान का व्यक्तित्व सिद्धान्त

6.9 सार-संक्षेप

6.10 पारिभाषिक शब्दावली

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.12 संदर्भ-ग्रन्थ

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना-

पूर्व की इकाइयों में आपने व्यक्तित्व की परिभाषा, उसके विभिन्न उपागम, व्यक्तित्व विकास के निर्धारक, व्यक्तित्व मापन की विधियां आदि का गहनतापूर्वक अध्ययन किया।

आइए, अब प्रस्तुत इकाई में यह जानने का प्रयास करें कि व्यक्तित्व की व्याख्या हेतु जिन विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है उनमें से वैसे सिद्धान्त जो व्यक्तित्व की व्याख्या मनोगत्यात्मक दृष्टिकोण से करते है-क्या हैं तथा कौन-कौन से हैं ?

इस परिप्रेक्ष्य में आप फ्रायड, इरिक्सन, हार्नी तथा सुलीवान के व्यक्तित्व सिद्धान्त का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे एवं व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मनोगत्यात्मक दृष्टिकोण को भली-भाँति समझ सकेंगे।

6.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व के गत्यात्मक सिद्धान्त पर चर्चा कर सकें।
2. फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकें।
3. इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त की तुलना फ्रायड एवं फ्रायडवादी सिद्धान्तों से कर सकें तथा
4. हार्नी एवं सुलीवान के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें।

6.3 व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त का परिचय-

मनोगत्यात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्तित्व के उन सिद्धान्तों को रखा गया है जो मानव व्यवहार की व्याख्या अचेतन प्रेरकों के संदर्भ में करते हैं तथा जिनका आधार मूलतः व्यक्ति के जैविक प्रणोद होते हैं। मनोगत्यात्मक सिद्धान्त मानव व्यवहार के घटित होने में बाल्यावस्था के अनुभवों की महत्वपूर्ण भूमिका का पक्षधर है और व्यवहार के पूर्व-निर्धार्यता में विश्वास रखता है। जहाँ एक ओर मनोगत्यात्मक उपागम के समर्थक व्यवहार की व्याख्या जन्मजात एवं जैविक मूल प्रवृत्ति के आधार पर करते हैं। वहीं बाल्यावस्था में पालन-पोषण की प्रणाली पर बल देकर अन्तःक्रियात्मक दृष्टिकोण के पक्षधर भी हैं।

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की व्याख्या हेतु मनोगत्यात्मक उपागम ने एक नया द्वार खोला, जो न केवल विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों को समझने में वैज्ञानिक अवधारणा को जन्म दिया बल्कि कला, साहित्य, विज्ञापन आदि के क्षेत्रों में भी नये-नये आयाम दिये।

6.4 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त का आधार मानसिक रोगियों से प्राप्त नैदानिक प्रदत्त है जिसे उन्होंने मूलतः उन्मादग्रस्त रोगियों के इलाज के क्रम में प्राप्त किया था और इसी के आधार पर मनोविज्ञान का एक स्वतंत्र स्कूल मनोविश्लेषणवाद सन् 1912 ई0 में स्थापित किया।

इसके दो रूपों का उल्लेख किया गया- एक सैद्धान्तिक पक्ष तथा दूसरा व्यावहारिक पक्ष। सैद्धान्तिक पक्ष के रूप में मनोविश्लेषण को व्यक्तित्व-सिद्धान्त माना गया और व्यावहारिक पक्ष के रूप में इसे मनोचिकित्सा-विधि माना गया। यहाँ मनोविश्लेषण का मूल्यांकन व्यक्तित्व-सिद्धांत के अर्थ में किया जायेगा। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

1. व्यक्तित्व-गतिकी -

फ्रायड ने व्यक्ति के व्यवहारों की व्याख्या कार्य-कारण सिद्धान्त के आलोक में करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने सामान्य तथा असामान्य व्यवहारों की एक मानसिक शक्ति की कल्पना की, जिसे जीवन-इच्छा या कामवृत्ति की संज्ञा दी गयी। इस शक्ति या इच्छा को प्रधानतः लैंगिक माना गया। लैंगिकता से उनका तात्पर्य शरीर के दो अंगों के सम्पर्क से उत्पन्न आनन्द से था। उनका विश्वास था कि यह लैंगिकता बच्चों में भी जन्म के समय

उपस्थित होती है। आरम्भ में बच्चों के होंठ तथा दाँत में रहती है और आयु-वृद्धि के साथ इसका स्थान बदलता रहता है।

मानव व्यवहारों के निर्धारक के रूप में फ्रायड ने कामवृत्ति को ही मौलिक स्रोत माना। लेकिन, बाद में उन्होंने आक्रमणशील मूलप्रवृत्ति को स्वीकार किया और कामवृत्ति के अन्तर्गत जीवन-मूलप्रवृत्ति तथा मृत्यु-मूलप्रवृत्ति की कल्पना की। उन्होंने सभी प्रकार के रचनात्मक व्यवहारों का आधार जीवन-मूलप्रवृत्ति को और सभी प्रकार के ध्वंसात्मक व्यवहारों का आधार मृत्यु मूल प्रवृत्ति को माना। इन दोनों प्रकार की मूलप्रवृत्तियों का बहाव अन्दर की ओर भी होता है और बाहर की ओर भी। जब जीवन प्रवृत्ति का बहाव अन्दर की ओर होता है तो व्यक्ति अपने लिए रचनात्मक कार्य करता है और अपने आप से प्रेम करता है। अतः आत्म प्रेम का आधार जीवन-प्रवृत्ति का अन्तर्मुखी बहाव है। जब इस प्रवृत्ति का बहाव बाहर की ओर होता है तो व्यक्ति दूसरों के लिए रचनात्मक एवं लाभकारी कार्य करता है। इसी तरह, मृत्यु-प्रवृत्ति के अन्तर्मुखी होने पर व्यक्ति अपने आप से घृणा करने लगता है तथा अपने आपको पीड़ा पहुँचाने लगता है और जब यह प्रवृत्ति बहिर्मुखी होती है तो व्यक्ति दूसरों से घृणा करने लगता है तथा ध्वंसात्मक कार्य द्वारा दूसरों को नुकसान पहुँचाता है। इन दोनों मूलप्रवृत्तियों का अर्न्मुखी तथा बहिर्मुखी बहाव जिस सीमा तक संतुलित होता है, व्यक्ति का व्यक्तित्व उसी सीमा तक संगठित एवं संतुलित होता है।

2. व्यक्तित्व-संरचना-

फ्रायड ने व्यक्तित्व रचना के दो पक्षों की चर्चा की, जिन्हें आकारात्मक पक्ष तथा गत्यात्मक पक्ष कहते हैं। आकारात्मक पक्ष के अन्तर्गत मन के तीन स्तरों की चर्चा की गयी-चेतन मन, अर्धचेतन मन तथा अचेतन मन। चेतन मन का तात्पर्य मन के उस भाग से है जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें रहती हैं, जिनका तात्कालिक ज्ञान व्यक्ति को रहता है। अर्धचेतन मन का तात्पर्य मन के उस भाग से है जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें होती हैं, जिनका तात्कालिक ज्ञान तो व्यक्ति को नहीं रहता है, परन्तु साधारण प्रयास से उनका ज्ञान हो जाता है। अचेतन मन का तात्पर्य मन के उस भाग से है, जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें रहती हैं, जिनका न तो तात्कालिक ज्ञान होता है और न मामूली कोशिश से उनका ज्ञान हो पाता है, बल्कि इसके लिए सम्मोहन आदि मनोवैज्ञानिक प्रविधियों की आवश्यकता होती है। फ्रायड के अनुसार अचेतन मन व्यक्तिगत होता है और इसमें बचपन से लेकर वर्तमान तक की ऐसी इच्छायें दमित होती हैं, जिनकी संतुष्टि चेतन स्तर पर नहीं हो सकी हो। अचेतन इच्छायें एवं प्रेरणायें प्रधानतः लैंगिक होती है। फ्रायड का विचार है कि व्यक्ति के व्यवहारों के निर्धारण में अचेतन प्रेरणाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। उनके इसी विचार को मानसिक निर्धारण कहते हैं। अपनी इसी अभिधारणा के आधार पर उन्होंने दैनिक जीवन की भूल, स्वप्न आदि की व्याख्या प्रस्तुत की।

गत्यात्मक पक्ष के अन्तर्गत तीन गत्यात्मक शक्तियों अर्थात् ईड, ईगो तथा सुपर ईगो की चर्चा की गयी। व्यक्तित्व के उस गत्यात्मक भाग को ईड कहा गया जो जन्मजात, अचेतन, अतार्किक तथा अनैतिक होता है और सुख के नियम पर कार्यरत होता है। ईगो उस गत्यात्मक भाग को कहा गया जो अर्जित, तार्किक, विवेकशील तथा

अवसरवादी होता है और यथार्थता के नियम पर कार्यरत होता है। सुपर ईगो व्यक्तित्व के उस गत्यात्मक भाग को कहा गया जो अर्जित, नैतिक तथा अलैंगिक होता है और नैतिक नियम पर कार्यरत होता है। ईड तथा सुपर ईगो के विरोधी स्वरूप के कारण चेतन तथा अचेतन स्तरों पर मानसिक संघर्ष उत्पन्न होते हैं और ईगो के कारण उनका समाधान होता है। सबल ईगो के कारण सामान्य व्यवहार तथा दुर्बल ईगो के कारण असामान्य व्यवहार या मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। मानसिक संघर्षो के समाधान में कई प्रकार की मनोरचनाओं का हाथ है, जिनमें दमन, उदात्तीकरण, रूपान्तर, युक्ताभ्यास, प्रतिक्रिया-निर्माण, प्रक्षेपण आदि मुख्य हैं। इन मनोरचनाओं के सहारे ईगो मानसिक संघर्षो का समाधान करके व्यक्ति के मानसिक संतुलन को कायम रखता है। इसलिए, इन्हें रक्षात्मक मनोरचना भी कहते हैं।

3. व्यक्तित्व-विकास-

फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास में कामवृत्ति के विकास पर बल दिया और इसकी पाँच अवस्थाओं का वर्णन किया जो निम्नलिखित हैं-

1. मौखिक अवस्था-

व्यक्तित्व विकास की इस पहली अवस्था में कामवृत्ति बच्चे के होंठ तथा दाँत में रहती है। दूध पीने की अवस्था में यह होंठ में रहती है और दूध पीते समय माता के स्तन से स्पर्श होने पर लैंगिक आनन्द मिलता है। दाँत काटने की अवस्था में कामवृत्ति दाँत में चली जाती है और दूध पीते समय स्तन को दाँत काटने पर इनमें स्पर्श होने के कारण कामानन्द मिलता है। मौखिक अवस्था लगभग 18 महीने तक रहती है। इस अवस्था में केवल ईड होता है और वह अचेतन होता है। दूध पीने की अवधि लम्बी होने पर बच्चा आगे चलकर आशावादी बन जाता है। इस अवस्था में कामवृत्ति सामान्य रूप से निकलकर दूसरी अवस्था में पहुँच जाती है तो सामान्य व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस अवस्था में कामवृत्ति के स्थिरीकरण के कारण असामान्य व्यक्तित्व के निर्माण की संभावना बन जाती है। युवा अवस्था में लैंगिक विकृतियों के साथ-साथ मनोविदलता आदि मानसिक विकृतियों के विकसित होने की पूरी संभावना बन जाती है।

2. गुदा अवस्था-

इस अवस्था में कामवृत्ति गुदा में चली जाती है। बच्चे जब मलमूत्र अधिक करने लगते हैं या मलमूत्र को रोके रखने लगते हैं तो इससे कामवृत्ति में स्पर्श होने पर उन्हें लैंगिक आनन्द मिलता है। मौखिक अवस्था में बच्चे को पहली निराशा तब होती है जब उन्हें दूध छुड़ा दिया जाता है। इस निराशा के कारण ईगो तथा चेतन मन का उद्भव आरंभ होता है। गुदा अवस्था में बच्चों को साफ-सुथरा रहने तथा समय पर मलमूत्र करने के लिए बाध्य किया जाता है, जिससे वे निराशा महसूस करते हैं और इसी के साथ ईगो तथा चेतन मन का विकास होने लगता है। वह अवस्था लगभग 12 महीने से आरम्भ होकर 2 वर्ष तक जारी रहती है। यदि इस अवस्था से कामवृत्ति का गुजर सामान्य रूप से हो जाता है तो सामान्य व्यक्तित्व के विकास की संभावना बन जाती है। इस अवस्था में कामवृत्ति

के स्थिरीकरण होने पर लैंगिक विकृतियों के साथ-साथ स्थिर-व्यामोह आदि मानसिक विकृतियों के युवा अवस्था में विकसित होने की सम्भावना बन जाती है।

3.लिंगप्रधानवास्था अवस्था-

इस अवस्था में कामवृत्ति लड़के के शिश्न तथा लड़की के गुप्तांग के ऊपर के भाग में रहती है। अतः इन अंगों को रगड़ने में हस्तमैथुन, लैंगिग प्रदर्शन आदि देखे जाते हैं। अब उनमें यौन-भिन्नता की चेतना होने लगती है। लैंगिग क्रियाओं में अधिक रूचि लेने पर माता-पिता उन्हें बधियाकरण से डराते हैं। इस अवस्था में मातृप्रेमग्रंथी तथा पितृप्रेमग्रंथी अर्थात् लड़के की लैंगिग प्रवृत्ति माता की ओर तथा लड़की की लैंगिग प्रवृत्ति पिता की ओर देखी जाती है। जब इन प्रवृत्तियों का समाधान सामान्य रूप से संभव होता है तो सामान्य व्यक्तित्व तथा इसके अभाव से असामान्य व्यक्तित्व के निर्माण की सम्भावना बन जाती है। इस अवस्था में कामवृत्ति के स्थिरीकरण के कारण आगे चलकर लैंगिक विकृतियों के साथ-साथ उन्माद आदि मानसिक रोग के विकास की सम्भावना बन जाती है। यह अवस्था 2-3 साल से प्रारंभ होकर 5-6 साल तक रहती है।

4. अव्यक्त अवस्था-

यह अवस्था लगभग 6-7 वर्ष की आयु से आरम्भ होती है और लगभग 12 वर्ष की आयु तक बनी रहती है इसमें कामवृत्ति अव्यक्त रहती है। इसी अवस्था से बच्चों की शिक्षा आरम्भ होती है। अब वे लैंगिक क्रियाओं में रूचि नहीं लेते हैं बल्कि शिक्षा के प्रति जागरूक हो जाते हैं। नैतिक नियमों को सीखने के कारण इसी अवस्था में सुपर ईगो का विकास होता है। जिस सीमा तक उन्हें नैतिक शिक्षा दी जाती है, उसी सीमा तक उनके व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष सबल हो पाता है।

5. जननेन्द्रिय अवस्था-

इस अवस्था में कामवृत्ति पुनः सक्रिय हो जाती है और शिश्न तथा गुप्तांग के अन्तः भाग में अवस्थित हो जाती है। इसलिए, उन्हें विषमजाति लैंगिकता द्वारा कामानन्द प्राप्त होता है। यह अवस्था लगभग 12-13 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है अतः इस अवस्था का कोई सार्थक प्रभाव व्यक्तित्व-विकास पर नहीं पड़ता है। इस अवस्था के आते-आते सामान्य या असामान्य व्यक्तित्व का निर्माण हो चुका होता है। असल में यह अवस्था स्वयं पहली चार अवस्थाओं का परिणाम है।

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न पक्षों की व्याख्या की गयी है, जिससे इस सिद्धान्त के कई गुणों की जानकारी होती है-

1. इस सिद्धान्त की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि अचेतन प्रेरणाओं का मानव व्यवहारों की उत्पत्ति पर चेतन प्रेरणाओं एवं संघर्षो के साथ-साथ अचेतन प्रेरणाओं एवं संघर्षो का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। उनकी यह उपलब्धि वस्तुतः एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, जिसके बिना मानव व्यवहार का सही एवं पूर्ण मूल्यांकन सम्भव नहीं है।

2. बचपन के अनुभव का प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है, इसे आज सभी मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। फ्रायड का यह विचार आज मान्य है कि व्यक्तित्व के निर्माण की आधारशिला प्राक्जननेन्द्रिय अवस्थायें हैं।
3. मानसिक संघर्षो के समाधान से सम्बन्धित मनोरचनाओं की खोज भी इस सिद्धान्त की एक बड़ी उपलब्धि है। आज सभी मनोवैज्ञानिक इस विचार से सहमत है कि संघर्षो के समाधान में दमन प्रतिगमन, प्रक्षेपण आदि मनोरचनायें सहायक होती हैं।
4. इस सिद्धान्त का एक योगदान यह भी है कि इसके आलोक में व्यक्तित्व के क्षेत्र में व्यापक रूप से अनुसंधान होने लगे, जिससे व्यक्तित्व की जटिल रचना तथा इसके निर्माण को समझने में सुविधा हुई। मानव व्यवहार को समझने में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त से जितनी सहायता मिली है, उतनी सहायता शायद किसी दूसरे सिद्धान्त से नहीं मिली है। युंग, ऐडलर, एरिक्सन आदि ने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त से ही प्रभावित होकर व्यक्तित्व के सम्बन्ध में नई-नई बातों की खोज की, भले ही उनकी खोज इस सिद्धान्त के विपक्ष में हो। शोध-मूल्य के मापदण्ड पर जेली एवं जिगलर (1981, 1983) ने इस सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है।
5. कार्यात्मक सार्थकता मापदण्ड पर यह सिद्धान्त काफी सफल प्रमाणित होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त ने मानव जीवन को काफी लाभान्वित किया है। जेली तथा जिगलर (1981, 1983) ने इस मापदण्ड पर भी फ्रायड के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा और कहा कि, ''फ्रायड के सिद्धान्त को कई विभिन्न विद्या क्षेत्रों (जैसे-मानव शास्त्र, इतिहास, साहित्य) में मानव-व्यवहार की व्याख्या हेतु उपयोग किया गया है, और मनोविश्लेषण ने बीसवीं शताब्दी में मानव-स्वभाव से सम्बन्धित हमारी धारणा को बदल दिया है।''

फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की आलोचना कई आधारों पर की गयी है तथा इसके दोषों को स्पष्ट किया गया है।

1. इस सिद्धान्त के खिलाफ एक आलोचना यह है कि यह सिद्धान्त मानसिक रोगियों के निरीक्षण पर आधारित है। अतः इसके सभी प्रत्ययों का व्यवहार उसी रूप में सामान्य व्यक्ति पर नहीं किया जा सकता है।
2. इस सिद्धान्त में वैज्ञानिकता की कमी पाई जाती है। फ्रायड ने अनियंत्रित अवस्थाओं में मनोविश्लेषण तथा जीवन इतिहास-विधि का उपयोग कर अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त उनके अध्ययन में परिमाणन का भी अभाव रहा है।
3. फ्रायड का अध्ययन केवल एक संस्कृति तक सीमित था। व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः सभी संस्कृतियों के लोगों के व्यक्तित्व का समुचित अध्ययन करने में यह सिद्धान्त असफल है।
4. फ्रायड ने व्यक्तित्व-निर्माण में लैंगिक शक्ति या कामवृत्ति को एक मात्र प्रेरणात्मक शक्ति माना, जिसकी कड़ी आलोचना की गयी और युंग तथा ऐडलर ने व्यक्तित्व की व्याख्या में क्रमशः जातीय अचेतन तथा सामाजिक शक्ति के महत्व पर बल दिया।

5. फ्रायड ने व्यक्तित्व-विकास में केवल जैविक आवश्यकताओं तथा मूल-प्रवृत्तियों के महत्व पर बल दिया और वातावरण तथा सांस्कृतिक कारकों के महत्व को गौण कर दिया। नव-फ्रायड-वादियों ने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया। ऐडलर, हार्नी, फ्रौम, एरिक्सन आदि ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। एरिक्सन ने मनोवैज्ञानिक विकास की 5 अवस्थाओं के बदले 8 अवस्थाओं का उल्लेख किया और ईगो को ईड से स्वतन्त्र माना।

6.5 एरिक्सन का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

एरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त को मनोसामाजिक सिद्धान्त भी कहते है। इन्होंने व्यक्तित्व के सिद्धान्त के प्रतिपादन में फ्रायड द्वारा प्रस्तावित विकासात्मक अवस्थाओं को स्वीकार करते हुए उसे व्यक्ति के पूरे जीवनकाल तक विस्तृत किया तथा व्यक्तित्व निर्माण पर जैविक कारकों के साथ-साथ सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों के प्रभाव पर भी बल दिया। उन्होंने फ्रायड के विभिन्न प्रत्ययों ईड, ईगो, सुपर ईगो तथा मनोलैंगिक-विकास की अवस्थाओं को मानते हुए बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर सामाजिक कारकों के प्रभावों पर बल दिया।

एरिक्सन ने व्यक्तित्व के विकास में ईड से अधिक ईगो पर बल दिया। इसलिए, उनके सिद्धान्त को ईगो-मनोविज्ञान भी कहा जाता है। जहाँ फ्रायड ने व्यक्तित्व-विकास की पाँच अवस्थाओं का उल्लेख किया, वहाँ एरिक्सन ने अहम् व्यक्तित्व की आठ अवस्थाओं का वर्णन किया और कहा कि आठवीं अवस्था में व्यक्तित्व का विकास पूरा हो जाता है। ये अवस्थायें निम्नलिखित हैं-

1. विश्वास-अविश्वास अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की मौलिक अवस्था के समान है। इस अवस्था में माता के अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार के कारण बच्चे में क्रमशः विश्वास या अविश्वास विकसित होता है। माता के अनुकूल व्यवहार के कारण बच्चे में विश्वास विकसित होता है और बच्चे की यही प्रथम सामाजिक उपलब्धि होती है।

2. स्वतन्त्रता-लज्जा एवं संदेह अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की गुदा अवस्था के समान है। इस अवस्था में भी लैंगिक इच्छा से अधिक प्रबल सामाजिक प्रेरक होता है। इस अवस्था में धारण करने अथवा बहिष्कार करने की प्रवृत्ति का नियंत्रण माता-पिता द्वारा उचित ढंग से होता है तो बच्चे में स्वतन्त्रता की चेतना विकसित होती है, जिससे उनमें आत्म नियंत्रण तथा आत्म-विश्वास विकसित होता है। ऐसा नहीं होने से उनमें लज्जा तथा संदेह विकसित होते हैं।

3. पहल – दोषिता अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की यौन प्रधान-अवस्था के समान है। इस अवस्था में बच्चे मातृप्रेम संघर्ष का समाधान करते हैं। एरिक्सन के अनुसार लड़के में माता के प्रति लैंगिक प्रवृति नहीं होती है, बल्कि वह पिता से बिना मुकाबला किए ही माता के साथ अधिक-से-अधिक रहना चाहता है। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह पिता की

आज्ञा मानने लगता है, जिससे सुपर ईगो का विकास होता है। इसमें पहल करने की चेतना पाई जाती है। यदि वह भय के कारण अपने इस लक्ष्य को छोड़ देता है तो दोषभाव विकसित हो जाता है। इस अवस्था में क्रूर तथा कठोर सुपर ईगो के विकसित होने पर इसका पूरा प्रभाव उसके समस्त जीवन पर पड़ता है।

4. व्यवसाय-हीनता अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की अव्यक्त अवस्था के समान है। इस अवस्था में बालक अपने घर से बाहर निकल जाता है, शिक्षालय जाता है तथा खेलकूद में भाग लेता है। अब वह किसी निश्चित उद्देश्य के साथ विशेष क्रियाओं को करके अपने व्यक्तित्व के समरूपण का प्रयास करता है। इसमें असफल होने पर वह हीनता महसूस करता है तथा असमर्थ होने का स्थाई विश्वास विकसित हो जाता है।

5. तादात्म्य प्रसारण अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की प्रारंभिक जननेन्द्रिय अवस्था के समान है। इस अवस्था में व्यक्ति यह महसूस करता है कि उसका अपना अलग व्यक्तित्व है और उसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है अथवा यह महसूस करता है कि उसे समाज में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। पहली स्थिति होने पर आत्म-विश्वास विकसित होता है और दूसरी स्थिति होने पर भय, अतिआत्मीकरण आदि विकसित होते हैं। किशोर-अवस्था के इस प्रथम चरण में भूमिका प्रसारण का आधार व्यावसायिक तथा लैंगिक तादात्म्य है।

6. आत्मीयता-पृथकीकरण अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की विलंबित जननेन्द्रिय अवस्था के समान है। इस अवस्था में आत्मीयता की इच्छा प्रबल होती है। प्रेम-सम्बन्ध की आवश्यकता सबल होती है। विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण होता है। इस आत्मीयता की प्राप्ति नहीं होने पर पृथकीकरण देखा जाता है।

7. उत्पादकता-निश्चलता अवस्था-

फ्रायड के मनोलैंगिक विकास में इस अवस्था का उल्लेख नहीं मिलता है। एरिक्सन के अनुसार इस प्रौढ़ा-अवस्था में व्यक्ति अपने भावी जीवन के कई विकल्पों में से किसी विशेष विकल्प को चुनता है और निर्णय लेता है कि उसे केवल बच्चा पैदा करना है अथवा कोई रचनात्मक कार्य (उत्पादकता) करना है।

8. अहम् सम्पूर्णता-निराशा अवस्था-

इस अंतिम अवस्था में व्यक्ति की मनोवृत्ति अपने जीवन के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक होती है। सकारात्मक मनोवृत्ति होने पर अपने द्वारा किए गये अच्छे बुरे कार्यो को स्वीकार करता है तथा सम्मान के साथ मरने के लिए तैयार होता है। नकारात्मक मनोवृत्ति होने पर वह निराशा से पीड़ित रहा करता है और चैन से मरता भी नहीं है।

स्पष्ट है कि फ्रायड के मनोविश्लेषण का समर्थन करते हुए भी एरिक्सन ने फ्रायड के कई प्रत्ययों में परिमार्जन लाया तथा व्यक्तित्व-निर्माण में सामाजिक कारकों के महत्व पर बल देते हुए मनोविश्लेषण के क्षेत्र को व्यापक बनाने का सफल प्रयास किया। उन्होंने स्वयं कहा कि उनका एक प्रधान योगदान तादात्म्य संकट का प्रत्यय है। उन्होंने ईगो

सम्बन्धी फ्रायड के विचार में परिमार्जन लाया और कहा कि ईगो वास्तव में ईड पर आश्रित नहीं है, बल्कि वह ईड के प्रभाव से मुक्त एवं स्वतन्त्र है। इस प्रकार, एरिक्सन ने हार्टमैन की तरह अहम् मनोवैज्ञानिकों की पहली पंक्ति में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया।

जेली तथा जिगलर (1983) के अनुसार इस सिद्धान्त में ऐसे प्रत्ययों का उल्लेख किया गया है, जिनके बीच पर्याप्त संगति है। इसी प्रकार इस सिद्धान्त में मिव्ययिता का गुण उपलब्ध है। इन दोनों कसौटियों पर यह सिद्धान्त काफी संतोषजनक है।

फिर भी, एरिक्सन के सिद्धान्त में कुछ दोष भी हैं। इस सिद्धान्त में प्रमाणीयता की बड़ी कमी है। इसके प्रत्ययों को आनुभविक आधार पर प्रमाणित करना कठिन है। इस सिद्धान्त का शोध-मूल्य भी काफी सीमित है। लेकिन, डीकैप्रियो (1983) ने इस आरोप को खंडित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार एरिक्सन ने विकासात्मक मनोविज्ञान, अहम् मनोविज्ञान, व्यक्तित्व तथा सांस्कृतिक, मनोऐतिहासिक विश्लेषण आदि क्षेत्रों में शोधकार्य का मार्गदर्शन किया है।

6.6 कारेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त

कारेन हार्नी एक महिला मनोवैज्ञानिक थी जिन्हें फ्रायड का न तो सहकर्मी और न ही षिष्य ही कहा जा सकता है, परंतु इतना जरूर कहा जा सकता है कि उनके प्रशिक्षण पर फ्रायडियन मनोविष्लेषण का प्रभाव काफी पड़ा। हार्नी कई बिन्दुओं पर फ्रायड से अलग विचार व्यक्त की; परंतु उसने उनके विचारों को ऐडलर एवं युंग के समान तिरस्कृत नहीं किया बल्कि उनमें संषोधन कर उन्हें उन्नत बनाने की कोशिश की। उन्होंने स्वयं ही कहा है ''मैं कोई नये स्कूल की स्थापना नहीं करना चाहती, परंतु फ्रायड द्वारा डाले गये नींव पर ही कुछ बनाना चाहती हूँ''। उनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त पर उनके अपने यौन दृष्टिकोण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का पर्याप्त प्रभाव झलकता है। उनके इस सिद्धान्त को निम्नांकित प्रमुख शीर्षकों में बाँटकर वर्णन किया जा सकता है-

1. बाल्यावस्था की आवश्यकता
2. मूल चिन्ता
3. स्नायुविकृत सतही स्थिरता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति
4. चिन्ता दूर करने के उपाय

बाल्यावस्था की आवकताएँ

हार्नी, फ्रायड के इस मत से सहमत थी कि वयस्क व्यक्तित्व के निर्धारण में बाल्यावस्था के आरंभिक वर्षो का महत्व काफी होता है। परंतु हार्नी इस बिन्दु पर फ्रायड से अलग विचार रखती है कि व्यक्तित्व का निर्माण किस तरह से होता है। हार्नी का मत है कि बाल्यावस्था के सामाजिक बल न कि जैविक बलों द्वारा व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है। बच्चों तथा माता-पिता के साथ सामाजिक संबंध से व्यक्तित्व विकास प्रभावि होता है।

हार्नी का यह मत था कि बाल्यावस्था की दो आवश्यकताएँ प्रमुख होती हैं जिनका व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्षप्रभाव पड़ता है। ये दो आवश्यकताएँ हैं-संतुष्टि आवश्यकता तथा सुरक्षा आवश्यकता। संतुष्टि आवश्यकता में मौलिक दैहिक आवश्यकताएँ जैसे-भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया, नींद आदि की आवश्यकता को सम्मिलित किया गया है। सुरक्षा आवश्यकता में डर से स्वतंत्रता तथा सुरक्षा की आवश्यकता सम्मिलित होती है। इन दोनों आवश्यकताओं का स्वरूप सार्वभौमिक होता है। इन दोनों में हार्नी ने सुरक्षा आवश्यकता को व्यक्तित्व विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि इस बात पर निर्भर करती है कि बच्चा को माता-पिता से कितना स्नेह मिलता है और माता-पिता द्वारा किस हद तक वह एक वांछित बच्चा समझा जाता है। हार्नी का मत है कि जब सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि नहीं होती है तो बच्चों में विद्वेष उत्पन्न हो जाता है। बच्चे कुछ कारणों से जैसे-निःसहायता का भाव, माता-पिता के डर आदि से अपने विद्वेष भाव का दमन कर देते हैं। जब विद्वेष भाव का दमन हो जाता है, तो उससे बच्चों में चिन्ता की उत्पत्ति होती है जिसे मूल चिन्ता कहा जाता है।

मूल चिन्ता-

हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में मूल चिन्ता एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। मूल चिन्ता से हार्नी का तात्पर्य बच्चों में अकेलापन तथा निःसहायता का भाव से होता है, जो विद्वेष के भाव के दमन से जुड़ा होता है। हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता एक ऐसी चिन्ता है जिसके कारण बाद में व्यक्ति में तंत्रिकातापी रोग विकसित होता है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता के तीन तत्व होते हैं-असमर्थता या निःसहायता का भाव, विद्वेष तथा अलगाव। जब बच्चों को घर में वास्तविक प्यार एवं स्नेह नहीं मिलता है, तो इनमें इन तत्वों का विकास हो जाता है। जब माता-पिता से बच्चों को तिरस्कार मिलता है, तो उनमें असमर्थता तथा अलगाव का भाव विकसित हो जाता है तथा वे इन भावों को दूर करने का असफल प्रयत्न भी करते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि उनमें विद्वेष विकसित हो जाता है जिसके कारण वे दूसरों के प्रति आषंकित रहते हैं जो धीरे-धीरे उन्हें दूसरों के प्रति आक्रमक बना देता है। उनमें दोष-भाव विकसित हो जाते हैं जिसका पहले तो वे दमन कर देते हैं परंतु बाद में इससे उनमें चिन्ता विकसित हो जाती है। इस तरह से हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता विकसित होने का कारण एक ऐसा घरेलू वातावरण बतलाया गया है जिसमें माता-पिता एवं बच्चों के संबंध में सच्चा प्यार एवं स्नेह की कमी होती है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता से बच्चा अपने आप को बचाने के लिए कुछ तरीका अपनाता है जिसमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. स्नेह प्राप्त करना-

इसमें बच्चे दूसरों से स्नेह एवं प्यार पाने की भरपूर कोषिष करते हैं। दूसरों द्वारा किये गये आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहते हैं।

2. विन्रमता दिखाना-

विनम्रता आत्म-रक्षा का एक दूसरा प्रमुख उपाय है। इसमें व्यक्ति किसी एक व्यक्ति या प्रत्येक व्यक्ति के विचारों को काफी विनम्रता से स्वीकार करता है। वह कभी भी ऐसा कुछ नहीं करता है जिससे दूसरे व्यक्ति को क्रोध

उत्पन्न हो जाए। परिस्थिति यदि ऐसी होती भी है, तो वह अपनी इच्छा एवं आवश्यकता का दमन कर देता है। व्यक्ति में यह विष्वास होता है कि यदि हम विनम्रता दिखायेंगे तो मुझे लोग चोट नहीं पहुँचायेंगे।

3. दूसरों पर नियंत्रण पाना-

दूसरों पर नियंत्रण पाना या अपने बल का उपयोग करने में सफल होना आत्म-रक्षा का तीसरा महत्वपूर्ण प्रक्रम है। जब व्यक्ति अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ या उत्तम समझता है या अपने को अधिक सबल या अपनी उपलब्धियों को अधिक महत्वपूर्ण समझता है, तो वह एक तरह से निःसहायता की क्षतिपूर्ति करता है तथा सुरक्षा के भाव को मजबूत करता है।

4. प्रत्याहार या निवर्तन-

मूल चिन्ता से आत्म-रक्षा का एक चौथा तरीका वह है जिसमें व्यक्ति मनोवैज्ञानिक अर्थ में दूसरों से एक तरह से अपने आपको पीछे खींच लेता है। यहाँ व्यक्ति एक तरह से दूसरों से पूर्णतः स्वतंत्र हो जाता है तथा वह बाह्य एवं भीतरी आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता है।

आत्म-रक्षा के इन चारों प्रक्रमों का एक सामान्य लक्ष्य है- व्यक्ति को चिन्ता से बचना। ये सभी प्रक्रम व्यक्ति में सुरक्षा तथा पुनर्विष्वास उत्पन्न करते हैं।

स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति-

जब व्यक्ति अपनी जिन्दगी की बहुत सारी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है जिसके कारण उसे बार-बार असफलता ही हाथ लगती है, तो उसमें कुछ विषेष आवश्यकताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके व्यक्तित्व का एक स्थायी अंग बन जाती है। इसे हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता कहा है। इसे स्नायुविकृत आवश्यकता इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे व्यक्ति समस्या का कोई संगत समाधान नहीं कर पाता है। ऐसी आवश्यकताएँ सामान्य तथा मनःस्नायुविकृत दोनों ही व्यक्तियों में पाये जाते हैं, परंतु मनःस्नायुविकृत व्यक्तियों में इसकी प्रबलता अधिक होती है। हार्नी के अनुरूप ऐसे स्नायुविकृत आवश्यकताएँ निम्नांकित दस हैं-स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता, प्रबल जीवन साथी की आवश्यकता, जिन्दगी का संकुचित एवं सख्त घेरे में रखने की आवश्यकता, सत्ता की आवश्यकता, शोषण की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता, व्यक्तिगत प्रशंसा की आवश्यकता, व्यक्तिगत उपलब्धि तथा आकांक्षा की आवश्यकता, आत्म-पर्याप्तता तथा स्वतंत्रता की आवश्यकता, पूर्णता तथा अनाक्रमण की आवश्यकता।

स्पष्टतः उपर्युक्त आवश्यकताएँ हम सभी व्यक्तियों में होती है। परंतु जब कोई व्यक्ति उनमें से किसी आवश्यकता की गहन तुष्टि को ही मूल चिन्ता को दूर करने के उपाय के रूप में स्वीकार कर लेता है, तो उसका स्वरूप स्नायुविकृत या तंत्रिका रोगी हो जाता है। बाद में हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता के इस सिद्धान्त में परिवर्तन किया क्योंकि ये इनसे संतुष्ट नहीं थी। उन्होंने बाद में कहा कि इन सभी दसों आवश्यकता ओं की अभिव्यक्ति मात्र तीन तरह की मनोवृत्ति द्वारा की जा सकती है जिसे उन्होंने स्नायुविकृत प्रवृत्ति कहा है। स्नायुविकृत प्रवृत्ति एक ऐसा व्यवहार एवं मनोवृत्ति है जिसे व्यक्ति अपनी ओर तथा अन्य दूसरे व्यक्ति की ओर विकसित करता है तथा

इन मनोवृत्तियों द्वारा वह अपनी स्नायुविकृति आवश्यकता ओं की अभिव्यक्ति करता है। इस तरह की व्यवहारात्मक तथा मनोवृत्ति प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नांकित है-

व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में अति अनुपालनशीलता का गुण पाया जाता है। व्यक्ति दूसरों का स्नेह, स्वीकृति एवं अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उनकी प्रत्येक इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए तत्पर रहता है। इसमें स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता तथा प्रबल जीवन साथ प्राप्त करने की आवश्यकता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में दूसरों के प्रति आक्रामकता तथा विद्वेष अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसमें सत्ता की आवश्यकता, शोषण की आवश्यकता,प्रशंसाएवं आकांक्षा आदि की आवश्यकता को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति दूसरों का सामना नहीं करना चाहता है और उनसे दूर हटने की कोशिश करता है। उसे लोगों से मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता है तथा वह एकान्तप्रिय हो जाता है।

इन तीनों तरह के स्नायुविकृत प्रवृत्तियों के पीछे एक उभयनिष्ठ कारक होता है जिसे उन्होंने सामाजिक कुसमायोजन कहा है। ये तीनों तरह की प्रवृत्तियों का स्वरूप बाध्यकर होता है जिसका मतलब यह हुआ कि स्नायुविकृत व्यक्ति उनमें से किसी एक ढंग की मनोवृत्ति दिखलाते हुए व्यवहार करने के लिए बाध्य होता है। इन तीनों तरह की प्रवृत्तियों से तीन अलग-अलग व्यक्तित्व प्रकारों का जन्म होता है जिनका वर्णन निम्नांकित है-

फरियादी व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व, व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति जरूरत से ज्यादा दूसरों पर निर्भर करते हैं एवं दूसरों के स्नेह एवं अनुमोदन को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं। दूसरे लोगों के साथ व्यवहार करते समय ऐसे लोगों का दृष्टिकोण मैत्रीपूर्ण होता है तथा दूसरों की भलाई करने के ख्याल से अपनी इच्छा एवं आकांक्षा की कुर्बानी भी देते हैं। अक्सर वे एक निःसहायता एवं कमजोरी की मनोवृत्ति इस ख्याल से दिखलाते हैं कि दूसरे लोग उन्हें ऐसा समझकर स्नेह एवं सुरक्षा प्रदान कर सके।

विद्वेषी या आक्रामक व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्ति आक्रामक, शक्की, समाज विरोधी तथा विद्वेषी प्रकृति के होते हैं। ऐसे लोगों को अपनी क्षमता पर जरूरत से ज्यादा भरोसा रहता है तथा दूसरों पर नियंत्रण एवं अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने के ख्याल से वे हमेशा आधिपत्य दिखाने की कोशिाशा करते हैं। ऐसे लोग दूसरों के साथ व्यवहार करने में या किसी तरह का संबंध स्थापित करने में इस बात

का ख्याल अधिक करते हैं कि उन्हें उस संबंध से क्या लाभ होगा। वे यह नहीं सोचते हैं कि उससे दूसरों को क्या लाभ होगा।

असम्बद्ध व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्तियों में आत्म केन्द्रिता, एकान्तप्रियता तथा असामाजिकता अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे लोग अन्य सभी लोगों से एक सांवेगिक दूरी बनाकर रखते हैं। ऐसे लोग दूसरों को न तो प्यार करते हैं, न घृणा करते हैं और न ही उनके साथ किसी तरह का सहयोग करते हैं। ऐसे लोग अधिक से अधिक समय अकेले होकर व्यतीत करना चाहते हैं।

हार्नी ने अपने सिद्धान्त में ये भी स्पष्ट किया है कि एक तंत्रिका रोगी व्यक्ति में उपर्युक्त तीन तरह की प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति अधिक प्रबल होता है। जबकि अन्य दो कुछ ही मात्रा में उपस्थित होते हैं। परंतु वे दमित होते हैं। जब कोई दमित प्रवृत्ति अपनी अभिव्यक्ति के लिए सक्रिय प्रयास जारी करता है, तो इससे व्यक्ति में मानसिक संघर्ष होता है।

मूल चिन्ता को कम करने के प्रयास-

हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में कुछ वैसे उपायों का भी वर्णन किया है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने में उत्पन्न मूल चिन्ता को कम करता है। ऐसे उपायों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा जा सकता है।

आदर्शवादी आत्म-छवि-

हार्नी का मत है कि मूल चिन्ता को दूर करने के ख्याल से अपने आप के बारे में व्यक्ति एक आदर्शवादी छवि विकसित कर लेता है जिसमें वह अपने आप को सभी तरह के गुणों से युक्त पाता है। यह आदर्शवादी छवि प्रायः अवास्तविक एवं अतिरंजित होता है। ऐसी परिस्थिति में वास्तविक आत्मन् तथा आदर्शवादी आत्मन् में काफी अन्तर होता है। आदर्शवादी आत्मन् के माँगों को पूरा करने के लिए सामान्यतः एक स्नायुविकृत प्रयास होता है। ऐसा प्रयास बाध्यकर, अविभेदी तथा अतुष्टनीय होता है। अपने आदर्शवादी आत्मन् को समर्थन प्रदान करने के लिए व्यक्ति एक विशेष तंत्र विकसित कर लेता है जिसे घमंड तंत्र कहा जाता है जिसमें व्यक्ति घमंड से व्यवहार करता है तथा अपने आप में वह विशेष शक्ति, बुद्धि, धन प्राप्त कर लेने की बात सोच रखता है जो अन्य किसी में नहीं होता है। इतना ही नहीं, वह अपने आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को समर्थन देने के लिए व्यवहारों का कुछ महत्वपूर्ण मानकों को मन में बैठा लेता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है।

रक्षा प्रक्रम-

हार्नी का मत है कि व्यक्ति मूल चिन्ता को दूर करने के लिए कुछ रक्षा प्रक्रम का भी सहारा लेता है। उनके अनुसार ऐसे रक्षा प्रक्रम दो प्रकार के होते हैं-यौक्तिकीकरण तथा बाह्ताता। यौक्तिकीकरण एक ऐसा रक्षा प्रक्रम है जिसमें अयुक्तिसंगत अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं से उत्पन्न मानसिक संघर्ष या तनाव का समाधान उन अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं को युक्तिसंगत बनाकर अर्थात तर्कपूर्ण एवं विवेकपूर्ण व्याख्या कर किया जाता है और मानसिक संघर्ष को दूर करने की कोशिश की जाती है। इस तरह से हार्नी ने युक्तिकीकरण का उपयोग फ्रायड के ही अर्थ में किया।

बाह्यता को हार्नी ने प्रक्षेपण के तुल्य माना है जिसमें व्यक्ति अपनी क्रिया की व्याख्या, कुछ बाह्य कारकों में दोषारोपण करके करता है। प्रायः दोषारोपण में वह अपने से कमजोर तत्वों को ही निशाना बनाता है।

स्पष्ट हुआ कि हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त का समग्र बल जैविक कारक न होकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक है।

हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जिन तथ्यों पर प्रकाश डाला है उसके आलोक में इस सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ कही जा सकती है।

1. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी द्वारा जैविक कारक को गौण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को प्रधान माना जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि बतलाया है और कहा है कि सचमुच में व्यक्तित्व के निर्धारण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की श्रेष्ठता पर बल डालकर अन्य कई मनोवैज्ञानिकों को इस क्षेत्र में शोध एवं मंत्रणा करने का उत्तम प्रोत्साहन दिया गया है।
2. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी के कुछ संप्रत्ययों जैसे-मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता एवं स्नायुविकृत प्रवृत्ति को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। कई मनोवैज्ञानिकों ने उनके द्वारा प्रतिपादित स्नायुविकृत प्रवृत्ति को विचलित व्यवहार के बारे में जानने का एक उत्तम तरीका बतलाया है।
3. कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा आत्म-सम्मान, सुरक्षा की आवश्यकता तथा आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त का मुख्य पहलू माना गया है क्योंकि इसके द्वारा दो बातों अर्थात् व्यक्तित्व का विकास तथा स्नायुविकृत प्रवृत्तियों से व्यक्तित्व किस तरह से प्रभावित होता है, की सफल व्याख्या होती है। सामाजिक अन्तःक्रियाओं के आलोक में ऐसी व्याख्या व्यक्तित्व के अन्य सिद्धान्त में नहीं मिलता है।

इन गुणों के बावजूद निम्नांकित बिन्दुओं पर हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की आलोचना की गयी है-

1. हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त का शोधपरक मूल्य कम बतलाया गया है। इनके संप्रत्ययों पर अधिक शोध नहीं किये गये हैं तथा इनकी लोकप्रियता इतनी नहीं है जितना कि फ्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धान्तों की थी। इसका एक मुख्य कारण यह था कि हार्नी के शिष्य भी कम थे जो उनके विचारों एवं सिद्धान्तों पर गहन अध्ययन करते।
2. फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जैविक मूलप्रवृत्तियों की उपेक्षा करके तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर जरूरत से ज्यादा बल डालकर व्यक्तित्व के सिद्धान्त की एक अधूरी व्याख्या प्रस्तुत की है।
3. कुछ आलोचकों ने यह भी कहा है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में लैंगिकता, बाल्यावस्था विकास, आक्रमकता तथा अचेतन की उपेक्षा करके हार्नी ने बहुत बड़ी भूल की है।
4. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में यद्यपि हार्नी ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों को महत्वपूर्ण माना है, फिर भी उन्होंने समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र में उपलब्ध

आँकड़ों जिनसे उनके सिद्धान्त में मजबूती आती, का उपयोग नहीं किया है। उन्होंने यह भी विस्तृत रूप से नहीं बतलाया है कि किस तरह से सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा व्यक्तित्व का विकास हो पाता है।

5. यह भी कहा गया है कि हार्नी के सिद्धान्त में उतनी संगति नहीं है जितना कि फ्रायड के सिद्धान्त में है तथा इनका सिद्धान्त मध्यवर्गीय अमेरिकन संस्कृति से जरूरत से ज्यादा प्रभावित होता पाया गया है मानों यह सिद्धान्त सिर्फ इस वर्ग के व्यक्तियों के व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए बना हो।

इन आलोचनाओं के बावजूद हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त के महत्व का अंदाज हम इस बात से भी लगा सकते हैं कि न्यूयार्क शहर में हार्नी के नाम पर दो संस्थान खोले गये हैं जो मानसिक समस्याओं के उपचार से संबंद्ध प्रशिक्षण प्रदान करता है। ये संस्थान हैं-कारेन हार्नी क्लिनिक, तथा कारेन हार्नी साइकोएनालिटिक इन्स्टीट्यूट।

4.7 सुलीवान का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

सुलीवान को भी एक नव-फ्रायड वादी मनोवैज्ञानिक माना जाता है जिन्होंने फ्रायडवादी मनोविश्लेषण के बहुत सारे सम्प्रत्ययों को अनुचित समझकर हटा दिया और एक ऐसे संप्रत्यात्मक सिद्धान्त का वर्णन किया जिसका आधार मनोविश्लेषणात्मक स्रोतों से परे और बिल्कुल भिन्न था। हालांकि उन्होंने फ्रायड के गत्यात्मक मनोविज्ञान के बहुत सारे सम्प्रत्ययों को अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में शामिल किया, परन्तु फ्रायड के लिविडो, पराहं, अहं उपाहं, यौन सिद्धान्त आदि को सिरे से खारिज कर दिया।

फ्रायड के समान सुलीवान ने भी व्यक्तित्व विकास में बहुत सारी विशिष्ट अवस्थाओं को स्वीकार किया। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इन्हें एक वास्तविक विकासात्मक सिद्धान्तवादी माना जाता है और इनके मनोविज्ञान को मनश्चिकित्सा का अन्त वैयक्तिक सिद्धान्त कहा जाता है।

सुलीवान के अनुसार व्यक्ति जन्म से ही वातावरण के विभिन्न वस्तुओं एवं व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया करता है तथा उस अन्तःक्रिया से ही उसके व्यवहार का निर्धारण होता है। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व इन्हीं अन्त वैयक्तिक व्यवस्था के संदर्भ में विकसित होता है।

सुलीवान के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है-

1.व्यक्तित्व की गतिकी

2.व्यक्तित्व के टिकाऊ पहलू

3.विकासात्मक अवस्थाएं

व्यक्तित्व की गतिकी:

सुलीवान ने मनुष्य के अन्दर एक ऐसे ऊर्जा तन्त्र की कल्पना की जो आवश्यकताओं से उत्पन्न तनावों को हमेशा कम करने की कोशिश करता है। उन्होंने तनाव को दो भागों में बाँटा-आवश्यकताओं से उत्पन्न तनाव तथा चिन्ता से उत्पन्न तनाव। आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न तनाव से व्यक्ति समकलनात्मक व्यवहार करता है तथा चिन्ता से

उत्पन्न तनाव द्वारा व्यक्ति असमाकलानात्मक व्यवहार करता है। जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को तुष्ट नहीं कर पाता है, तो उससे एक विशेष अवस्था उत्पन्न होती है जिससे भावशून्यता विकसित होती है। सुल्लीभान का मत है कि यदि माँ चिन्तित रहती है तो उनके बच्चों में भी अपने आप चिन्ता विकसित हो जाती है। माँ को चिन्तित होने से उनकी आवाज, व्यवहार, चेहरा तनावपूर्ण लगता है जिसे देखकर बच्चे भी वैसा ही भावभंगिमा बनाना प्रारंभ कर देते हैं और वे चिन्ता के शिकार हो जाते हैं।

सुलीवान ने संज्ञान के तीन स्तर की पहचान की है, जो इस प्रकार है-

प्रोटोटैक्सिक, पाराटैक्सिक तथा सिनटैक्सिक। प्रोटोटैक्सिक अनुभूतियों में शिशुओं के प्रारंभिक अनुभूतियाँ सम्मिलित होती है। ऐसी अनुभूतियाँ अस्पष्ट, क्षणिक तथा धारण योग्य नहीं होने के कारण संचारनीय नहीं होती हैं। अतः प्रोटोटैक्सिक अनुभूतियाँ शिशुओं के संज्ञान की आरम्भिक अनुभूतियां होती है। पाराटैक्सिक अनुभूतियां प्राक्तार्किक, व्यक्तिगत तथा दूसरों को विकृत ढंग से संचारनीय होती है। ऐसी अनुभूतियाँ निश्चित रूप से प्रोटोटैक्सिक अनुभूतियों से अधिक स्पष्ट होती है। ऐसी अनुभूतियों का जन्म तो बाल्यावस्था में होता है, परन्तु इनसे बाद की जिन्दगी की अनुभूतियाँ भी प्रभावित होती है। सिनटैक्सिक अनुभूतियाँ अधिक सार्थक होती है और ऐसी अनुभूतियों को व्यक्ति हाव-भाव एवं भाषा आदि द्वारा उत्तम ढंग से दूसरों को संचारित करता है।

यद्यपि उपर्युक्त तीनों तरह की अनुभूतियाँ व्यक्ति की सम्पूर्ण जीवन काल में होते पायी जाती हैं परन्तु एक सामान्य व्यक्ति की जिन्दगी में सिनटैक्सिक अनुभूतियों की प्रबलता अधिक होती है।

व्यक्तित्व का टिकाऊ पहलू-

सुलीवान ने अपने मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के कई ऐसे पहलुओं पर बल डाला है जो टिकाऊ प्रकृति के होते हैं। ऐसे पहलुओं में निम्नांकित तीन प्रमुख हैं-

1.गत्यात्मकता

2.मानवीकरण तथा

3.आत्म-तंत्र

1. गत्यात्मकता-

सुलीवान के मनोविज्ञान में गत्यात्मकता एक ऐसा पद है जिसे शीलगुण के तुल्य माना गया है। सुलीवान के अनुसार गत्यात्मकता से तात्पर्य एक ऐसे संगत पैटर्न से होता है जो व्यक्ति की पूरी जिन्दगी में दिखाई देता है। उन्होंने गत्यात्मकता को दो भागों में बाँटा है- शरीर के विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित गत्यात्मकता तथा तनाव से संबंधित गत्यात्मकता। पहले तरह की गत्यात्मकता से व्यक्ति की विशेष शारीरिक आवश्यकताओं जैसे-भूख तथा प्यास की आवश्यकता की तुष्टि होती है। दूसरे तरह की गत्यात्मकता के तीन उप प्रकार बतलाये गए हैं-वियोजक गम्यात्मकता, अलगावी गत्यात्मकता तथा संयोजक गत्यात्मकता।

वियोजक गत्यात्मक में व्यवहार के ध्वंसात्मक पैटर्न को रखा जाता है। उसमें व्यक्ति के उन प्रवृत्तियों को रखा जाता है जो उन्हें यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि लोग प्रायः बुरे प्रकृति के होते हैं और यह संसार रहने

लायक स्थान नहीं है। अलगावी गत्यात्मकता में कामुकता का गुण होता है जो एक जैविक घटना है और यौनांगों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न तनाव से विकसित होता है। इसमें समलैंगिक तथा विषमलैंगिक व्यवहारात्मक पैटर्न सम्मिलित होते हैं। संयोजक गत्यात्मकता से तात्पर्य वैसे लाभदायक व्यवहार से होता है जैसा कि हम घनिष्ठता तथा आत्म-तंत्र में पाते हैं। इसमें से आत्म-तंत्र को सुलीवान ने सबसे महत्वपूर्ण माना है।

2. मानवीकरण-

व्यक्तित्व का दूसरा टिकाऊ पहलू मानवीकरण है जिससे तात्पर्य अपने या दूसरे के बारे में मन में बने एक प्रतिमा या छवि से होता है। मानवीकरण की प्रतिमा आवश्यकता तुष्टि या दुष्चिन्ता की अनुभूतियों से बनी होती है। जब व्यक्ति में संतोषजनक अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध विकसित होता है, तो इससे उसके मन में धनात्मक प्रतिमा विकसित होती है तथा असंतोषजनक अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध व्यक्ति में होने से दुष्चिन्ता तथा ऋणात्मक प्रतिमा विकसित होती है। सुलीवान का मत है कि प्रारंभिक बाल्यावस्था में पाँच सरल मानवीकरण के विकास के स्रोत हैं-उत्तम माँ, बुरी माँ, बुरा-स्वयं, उत्तम-स्वयं तथा स्वयं नहीं। जब बच्चे को माँ के साथ किये गये अन्तःक्रियाओं से उसमें चिन्ता उत्पन्न होती है, तो इससे उसमें 'बुरी माँ' का मानवीकरण विकसित होता है। उत्तम-माँ मानवीकरण उस समय विकसित होता है जब शिशु को माँ के साथ अन्तःक्रिया करने पर तुष्टि होती है। जब बच्चों में अपनी अन्तःक्रियाओं से संतोषजनक एवं पुरस्कृत होने की भावना होती है, तो उसमें 'उत्तम-स्वयं' का मानवीकरण और जब उसे अपनी ही अन्तःक्रियाओं से असंतुष्टि, दंडित एवं अपमानित होने की भावना उत्पन्न होती है, तो इससे उसमें बुरा-स्वयं का मानवीकरण विकसित होता है। जब बच्चों में काफी तीव्र चिन्ता एवं दर्दपूर्ण अनुभूतियाँ होती हैं, तो इससे उसमें स्वयं नहीं का संप्रत्यय विकसित होता है। दर्दपूर्ण अनुभूतियों के कारण आत्मन् की वैसी चीजें जो इन अनुभूतियों से संबंधित होती है, व्यक्तित्व से अलग हो जाती है। इस तरह से कहा जा सकता है कि स्वयं-नहीं के मानवीकरण द्वारा आत्मन् के विच्छेदित पहलू का प्रतिनिधित्व होता है और इसमें खतरनाक संवेग जिसे सुलीवान ने 'अनकैनी' कहा है, सम्मिलित होता है।

3. आत्म-तंत्र-

आत्म-तंत्र ऐसा जटिल तंत्र है जो अन्तर्वैयक्तिक सुरक्षा को बरकरार रखते हुए व्यक्ति को दुष्चिन्ता से बचाता है। इस तरह से सुलीवान के अनुसार आत्म-तंत्र एक तरह का चिन्ताविरोधी तंत्र है क्योंकि इसमें वैसी गत्यात्मकता सम्मिलित होती हैं जिनसे दुष्चिन्ता में कमी आती है। इस तरह के आत्म-तंत्र का विकास बच्चों में डेढ़ से दो साल की उम्र में प्रारंभ हो जाता है। हालाँकि आत्म-तंत्र से दुष्चिन्ता कम हो जाती है, यह व्यक्ति को संरचनात्मक ढंग से रहने की क्षमता में बाधक भी होता है। कैसे ? जब किसी बच्चे के आत्म-तंत्र में अधिक दुष्चिन्ता अनुभूति होती है, उसका आत्म-तंत्र अतिरंजित हो जाता है और वह व्यक्तित्व से अलग-से हो जाता है। इस तरह का आत्म-तंत्र सचमुच में उसे किसी परिस्थिति के बारे में एक वास्तविक एवं वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने से रोकता है। इससे सार्थक एवं सर्जनात्मक ढंग से रहने में एक तरह से बाधा पहुँचती है।

विकासात्मक अवस्थाएँ-

सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास के सात अवस्थाओं का वर्णन किया है। इनका मत है कि व्यक्तित्व में परिवर्तन विकास की किसी भी अवस्था में हो सकता है परंन्तु ऐसे परिवर्तन एक अवस्था से दूसरी अवस्था के अंतरण में सर्वाधिक होता है। एक बच्चा दूसरों का किस तरह से प्रत्यक्षण करता है और वह दूसरों के प्रति किस तरह की प्रतिक्रिया करता है, पर व्यक्तित्व का विकास निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, सुलीवान के अनुसार अन्वैंयक्तिक सम्बन्ध की धारा ही महत्वपूर्ण होती है जो व्यक्तित्व विकास के विभिन्न अवस्थाओं को एक सूत्र में बाँधती है। उनके द्वारा बतलाये गए व्यक्तित्व विकास की सात अवस्थाएँ निम्नांकित हैं-

1. **शैशवावस्था-**

यह अवस्था जन्म से लेकर लगभग 24 महीने तक का अर्थात् जब वे सुस्पष्ट भाषा का उपयोग प्रारंभ कर देता है, तक का होता है। जन्म के समय शिशु एक पशु के समान होता है तथा माँ से जैसे-जैसे उसे प्यार एवं स्नेह मिलता है उसमें मानवीय गुणों का विकास होता जाता है। इस अवस्था में शिशु माँ के बारे में दोहरे मानवीकरण विकसित कर लेता है। माँ को वह एक 'उत्तम माँ' तथा 'बुरी माँ' के रूप में प्रत्यक्षण करता है। जब शिशु अपनी आवश्यकताओं को माँ से तुष्ट होते पाता है तो वह माँ को एक 'उत्तम माँ' के रूप में और जब माँ के साथ अन्तःक्रिया से उसमें चिन्ता उत्पन्न होती है, तो उसे एक बुरी माँ के रूप में प्रत्यक्षण करता है। इसी अवस्था के दौरान शिशु संज्ञान के प्रोटोटैक्सिक विधि से पाराटैक्सिक विधि की ओर अंतरण करता है।

2. **बाल्यावस्था-**

यह अवस्था सुस्पष्ट भाषा बोलने से लेकर साथ-संगी की आवश्यकता (अर्थात् लगभग पाँच वर्ष की उम्र) उत्पन्न होने तक की होती है। इस अवस्था में भाषा का विकास हो जाने से शैशवावस्था में विकसित विभिन्न तरह के मानवीकरण या प्रतिमाओं का आपस में विलयन होता है। जैसे-'उत्तम माँ' तथा 'बुरी माँ' का मानवीकरण एक साथ मिलकर 'माँ' की प्रतिमा या मानवीकरण की उत्पत्ति करते हैं। इस अवस्था में बच्चे कुछ सांस्कृतिक पैटर्न जैसे-खाने की आदत, पेशाब-पैखाना की आदत, यौन-भूमिका की प्रत्याशाएँ आदि को भी सीखता है। सुलीवान के अनुसार इस अवस्था में दो अन्य तरह के सीखना जिसे नाटकीकरण तथा तल्लीनता कहा जाता है, भी सम्मिलित होता है। नाटकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बच्चे माँ या पिता या परिवार के अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों की भूमिका का नकल उतारते हैं। तल्लीनता से तात्पर्य एक ऐसे उपाय से होता है जिसके सहारे बच्चे अपने आप को ऐसे कार्यो में जिनके करने से उन्हें पुरस्कार मिलता है, फँसा कर रखते हैं ताकि उनमें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं विकसित हो सके।

3. **तरूणावस्था-**

यह अवस्था 5-6 साल की अवस्था से प्रारंभ होकर 8-9 साल की अवस्था जब बच्चे में घनिष्ठ दोस्ती की आवश्यकता उत्पन्न होती है, तक का होता है। इस अवस्था में बच्चे में प्रतिस्पर्द्धा, समझौता तथा सहयोग की भावना विकसित होती है। इस अवस्था में तीन ऋणात्मक विकास भी होते हैं। दूसरे शब्दों में, इस अवस्था में बच्चों में रूढ़िकृति, बहिष्कार तथा अवज्ञा का शीलगुण भी विकसित हो जाता है। रूढ़िकृति से तात्पर्य एक ऐसे

मानवीकरण से होता है जो माता-पिता द्वारा बच्चों के मन में बैठा दिये जाते हैं-भगवान के सामने जाने पर हाथ जोड़ना एक ऐसी ही रूढ़िकृति का उदाहरण है। बहिष्कार से तात्पर्य एक ऐसा अलगाव से होता है जो बच्चों को तब अनुभव होता है जब वह कोई बाह्य समूह का सदस्य होता है। अवज्ञा में बच्चे दूसरे लोगों से विशेषकर उन व्यक्तियों से जिन्हें माता-पिता निन्दा करते हैं या नापसंद करते हैं, घृणा करना सीख जाता है।

4. प्राक् किशोरावस्था-

इस अवस्था की शुरूआत घनिष्ठता की आवश्यकता से प्रारम्भ होकर यौवनारंभ तक की होती है। इस अवस्था में बच्चे अपने ही यौन के किसी एक व्यक्ति से अधिक घनिष्ठ दोस्ती कर लेते हैं। इसमें दोस्ती का आधार स्नेह एवं घनिष्ठता होती है। इस अवस्था में अपने ही यौन के व्यक्ति के साथ इस तरह के घनिष्ठ सम्बन्ध को सुलीवान ने ‘सखा’ की संज्ञा दी है। सुलीवान का मत है कि बिना ‘सखा’ के इस अवस्था में बच्चों में एक तीव्र अलगाव एवं एकान्तवासी होने का भाव विकसित होता है जिससे अन्ततोगत्वा उसमें दुष्चिन्ता विकसित होती है जो उनके आगे के विकास के लिए हानिकारक होते हैं।

5. आरंभिक किशोरावस्था-

यह अवस्था यौवनारंभ से प्रारंभ होकर उस समय तक की होती है जब उसमें विपरीत लिंग के व्यक्ति के साथ स्नेह या प्यार करने की आवश्यकता उत्पन्न नहीं हो जाती है। इस अवस्था में किशोरों में जननांगी अभिरूचि विकसित हो जाती है और वह कामुक सम्बन्ध कायम करने के लिए तत्पर हो जाता है। इस अवस्था में तीन तरह की मौलिक आवश्यकताओं से संबंधित समस्याएँ प्रधान होती हैं-सुरक्षा, विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ घनिष्ठता तथा लैंगिक तुष्टि। सुलीवान का यह मत है कि किशोरों में ये तीनों तरह की आवश्यकताएँ आपस में टकराती हैं जिससे विभिन्न तरह का तनाव उनमें उत्पन्न हो जाता है। सुलीवान ने इस अवस्था को जिन्दगी का एक महत्वपूर्ण मोड़ माना है क्योंकि यदि इस तनाव से उत्पन्न समस्या को वे ठीक ढंग से समाधान कर लेते हैं, तो इससे उनमें स्थिरता आती है और यदि वे उनका सफल ढंग से समाधान नहीं करते है, तो इससे उनमें अन्तर्वैयक्तिक कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती हैं और भविष्य की जिन्दगी दुःखमय हो जाती है।

6. उत्तर किशोरावस्था-

इस अवस्था की शुरूआत जननांगी क्रियाओं के स्थिरीकरण से प्रारंभ होकर वयस्कावस्था में स्थायी प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने तक की होती है। इस अवस्था में संज्ञान के सिनटैक्सिक तरीका प्रबल होता है। इस अवस्था का सबसे प्रमुख गुण कामुकता तथा घनिष्ठता का विलयन है। इस अवस्था का अन्तिम परिणाम आत्म सम्मान है जिसके आधार पर व्यक्ति फिर दूसरों को स्नेह एवं प्यार देना सीख लेता है।

7. परिपक्वता-

सुलीवान ने इस अवस्था के बारे में कुछ खास नहीं कहा है क्योंकि उनकी नजर में सच्चे अर्थ में परिपक्वता विकसित होने की कोई स्पष्ट अवस्था या उम्र नहीं होती है। उनका मत था कि प्रत्येक गत अवस्था के महत्वपूर्ण उपलब्धि की अंतिम अभिव्यक्ति एक परिपक्व व्यक्तित्व के रूप में होती है। सुलीवान ने एक परिपक्व व्यक्तित्व

की कई विशेषताओं का वर्णन किया है। जैसे-एक परिपक्व व्यक्ति अपनी सीमाओं की स्पष्ट पहचान करता है, अपनी अभिरूचि समझता है, अपनी चिन्ताओं की पहचान करता है तथा वह समझ-बुझकर लोगों से संबंध स्थापित करता है।

सुलीवान द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण तथा अवगुण है। इस सिद्धान्त के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. सुलीवान पहले ऐसे नव-फ्रायडवादी हैं जिन्होंने व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या में जन्म से लेकर परिपक्वता तक की अवधि का एक चरणबद्ध वर्णन किया है।
2. अन्य नवफ्रायडवादी के समान सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर बल डाल कर यह स्पष्ट कर दिया है कि ये कारक व्यक्तित्व के एक प्रमुख निर्धारक हैं। सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास में जो अन्तर्वैयक्तिक संबंध पर अधिक बल डाला है वह अपने आप में अद्वितीय है तथा लोगों के ध्यान का प्रमुख केन्द्र बिन्दु रहा है।

3. सुलीवान के सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिकों ने अन्य नवमनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण इसलिए माना है क्योंकि इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व का एक काफी समन्वित तस्वीर उपस्थित किया गया है। तनाव, गत्यात्मकता आदि जैसे महत्वपूर्ण संप्रत्ययों का उपयोग करके सुलीवान ने व्यक्तित्व के गम्यात्मक पहलुओं का एक अनोखा वर्णन उपस्थित किया है जिसे इस समूह के अन्य सिद्धान्तों में देखने को नहीं मिलता है।

इन गुणों के बावजूद सुलीवान के सिद्धान्त के कुछ अवगुण या परिसीमाएँ हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. कुछ आलोचकों का मत है कि सुलीवान ने अपने तंत्र में कुछ काल्पनिक संरचनाओं को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया हैं इसमें मानवीकरण, आत्म-तंत्र आदि प्रमुख हैं। इस काल्पनिक संरचनाओं का चूँकि प्रयोगात्मक सत्यापन कठिन है, अतः इस सिद्धान्त पर लोगों की निर्भरता काफी कम है।

2. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सुलीवान ने व्यक्तित्व के बारे में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे पूर्णतः उनके नैदानिक प्रेक्षणों पर आधारित हैं। चूँकि इन प्रेक्षणों में सामान्य व्यक्तियों को नहीं के बराबर सम्मिलित किया गया है, अतः उनके व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त को सामान्य व्यक्तियों पर लागू करना संभव नहीं है।

इन आलोचनाओं के बावजूद सुलीवान द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्तों का महत्व काफी है। चूँकि उनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्तों का आधार अन्तर्वैयक्तिक संबंध है, इसलिए उनके मनोविज्ञान की एक अलग अपनी पहचान एवं विशिष्टता बनी हुई है तथा ऐसे स्वप्नों का वर्णन करते समय रोगी को उसके मन में आने वाले साहचर्य को भी बतलाना पड़ता है। इन साहचर्यो के माध्यम से स्वप्न का विश्लेषण किया जाता है। इसके अलावा स्वप्न विश्लेषण में प्रतीकीकरण का भी सहारा लिया जाता है। प्रतीकों के माध्यम से चिकित्सक उनके अचेतन की इच्छाओं का अर्थ उन्हें समझाता है जिसे रोगी स्वीकार कर अपने तंत्रिकातापी व्यवहार के अर्थ को समझता है और सूझ विकसित कर लेता है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तित्व के मनोलैंगिक विकास पर किसने बल दिया -

(अ) फ्रायड (ब) युंग

(स) एंडलर (द) इरिक्सन

2. व्यक्तित्व की विकासात्मक अवस्थाओं में अहं-तादात्म्य को केन्द्रीय महत्व किसने दिया -

(अ) हार्नी (ब) फ्रॉम

(स) इरिक्सन (द)फ्रायड

3. सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास की कितनी अवस्थाएं बतायी हैं -

(अ) पाँच (ब) छः

(स) सात (द) आठ

6.8 सार-संक्षेप-

व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों को रखा गया है जो मानव व्यवहार की व्याख्या अचेतन प्रेरकों के संदर्भ में करते हैं।

फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के रूप में भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत फ्रायड ने व्यक्तित्व गतिकी, व्यक्तित्व संरचना, व्यक्तित्व विकास आदि के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की व्याख्या की है।

इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त को मनोसामाजिक सिद्धान्त भी कहते हैं। इरिक्सन ने व्यक्तित्व की व्याख्या इसे निम्नलिखित आठ अवस्थाओं में बांटकर की है- विश्वास-अविश्वास अवस्था, स्वतंत्रता-लज्जा एवं संदेह अवस्था, अगुआई-दोष अवस्था, व्यवसाय-हीनता अवस्था, तादात्म्य-प्रसारण अवस्था, आत्मीयता-पृथकीकरण अवस्था, उत्पादकता-निश्चलता अवस्था, अहम्-सम्पूर्णता-निराशा अवस्था।

हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त को नव फ्रायडवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत रखा जाता है। फ्रायड से कई बिन्दुओं पर सहमति तो कई पर विरोध रखते हुए इन्होंने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में बाल्यावस्था की आवश्यकता, मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता आदि पर काफी बल दिया।

सुलीवान को भी एक नव-फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक माना जाता है। इन्होंने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में व्यक्तित्व की गतिकी, व्यक्तित्व के टिकाऊ पहलू तथा विकासात्मक अवस्थाओं की चर्चा की।

6.9 पारिभाषिक शब्दावली-

मातृ-प्रेमगन्थी: लड़के की लैंगिक प्रवृत्ति माता की ओर।

पितृ-प्रेमग्रन्थी: लड़की की लैंगिक प्रवृत्ति पिता की ओर।

आत्म-तंत्र: एक ऐसा जटिल तंत्र जो अन्तःवैयक्तिक सुरक्षा को बरकरार रखते हुए व्यक्ति को दुष्चिन्ता से बचाता है।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. अ 2. स 3. स

6.11 संदर्भ - ग्रन्थ

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality.

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. व्यक्तित्व के फ्रायडवादी सिद्धान्त की समीक्षा करें।
2. इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर प्रकाश डालें।
3. हार्नी एंव फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त की तुलना करें।
4. सुलीवान के व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें।
5. टिप्पणी लिखें- क. अचेतन ख. अहं-तादात्म्य ग. आत्म-तंत्र

इकाई 7 व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

(Social Psychological Theory of Personality)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का अर्थ

7.4 अल्फ्रेड ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त

7.5 कारेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त

7.6 इरिक फ्रॉम का व्यक्तित्व सिद्धान्त

7.7 बन्डूराका व्यक्तित्व सिद्धान्त

7.8 सार संक्षेप

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.11 संदर्भ ग्रन्थ

7.12 निबन्धात्मक प्रष्न

7.1 प्रस्तावना-

पूर्व की इकाई में आपने पढ़ा कि व्यक्तित्व की व्याख्या अनेक सिद्धान्तों द्वारा की गई है जिसमें मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान है। इसके अन्तर्गत आपने फ्रायड एवं नव-फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का अध्ययन किया।

व्यक्तित्व के कुछ ऐसे भी सिद्धान्त हैं जिनके प्रतिपादकों ने सामाजिक-मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की व्याख्या करने का प्रयास किया है।

इन मनोवैज्ञानिकों में भी कुछ फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक हैं तो कुछ नव-फ्रायडवादी। कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार की व्याख्या सामाजिक एवं संज्ञानात्मक परिप्रेक्ष्य में की है।

प्रस्तुत इकाई में हम लोग सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मानव व्यक्तित्व की व्याख्या करने वाले फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड ऐडलर तथा नव-फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक इरिक फ्रॉम एवं कारेन हार्नी के व्यक्तित्व सिद्वान्त का अध्ययन करेंगे साथ ही बन्डूराके सामाजिक सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व को समझने का प्रयास करेंगे।

7.2 उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पष्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अन्य सिद्धान्तों से तुलना कर सकें।
2. ऐडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर प्रकाष डाल सकें,
3. इरिक फ्रॉम एवं कारेन हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या एवं इनकी तुलना कर सकें तथा
4. बन्डूराके व्यक्तित्व सिद्धान्त के मूल तत्वों की विवेचना कर सकें।

7.3 व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का अर्थ-

व्यक्तित्व को समझने एवं उसकी व्याख्या हेतु मनोवैज्ञानिकों द्वारा जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है उसमें कुछ तो पूर्णतः मनोवैज्ञानिक स्वरूप के सिद्धान्त हैं, जैसे-फ्रायड एवं युंग का सिद्धान्त; कुछ पूर्णतः अधिगम आधारित सिद्धान्त है, जैसे-स्कीनर, पैवलव, बन्डूराका सिद्धान्त तथा कुछ ऐसे भी सिद्धान्त हैं जो सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पहलुओं के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की व्याख्या करते हैं-जैसे-ऐडलर, फ्रॉम, हार्नी आदि का सिद्धान्त। दरअसल, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के पक्षधर व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों ने जहाँ मानव स्वभाव की व्याख्या में कुछ मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों जैसे-इच्छा शक्ति, मूल चिन्ता, स्नायनिक आवश्यकता आदि का सहारा लिया है वहीं जीवन शैली, जन्मक्रम, दूसरों पर नियंत्रण पाना, सत्तावादिता, सम्बद्धता आवश्यकता आदि जैसे सामाजिक संप्रत्ययों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार की व्याख्या करने का प्रयास किया है। अतः व्यक्तित्व के उन सिद्वान्तों को जो व्यक्तित्व की व्याख्या उसके सामाजिक मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों के परिप्रेक्ष्य में करता है, व्यक्तित्व का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्वान्त कहते हैं। यहाँ कतिपय ऐसे सि,द्धान्तों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

7.4 अल्फ्रेड ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

फ्रायड ने लैंगिकता को मानव व्यवहार का एक मात्र प्रेरणात्मक आधार माना, जिसे ऐडलर ने स्वीकार नहीं किया और फ्रायड से अलग होकर वैयक्तिक मनोविज्ञान की स्थापना की। इसे ही ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त कहते हैं। व्यक्तित्व रचना एवं व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में ऐडलर के विचारों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

1. व्यक्तित्व गतिकी-

ऐडलर ने फ्रायड के लिबिडो के स्थान पर इच्छा-शक्ति को व्यक्ति के व्यवहारों का मौलिक प्रेरणात्मक निर्धारक माना। परन्तु, बाद में उन्होंने श्रेष्ठता प्रवृत्ति को व्यक्तित्व निर्माण का मौलिक प्रेरक माना। आरंम्भ में बच्चे अपने आपको असहाय एवं निर्बल पाते हैं। फलतः उनमें हीनता भाव विकसित हो जाता है। इस भाव की क्षति-पूर्ति के लिए वह ऐसे कार्यो को करने हेतु प्रेरित होता है, जिससे उसे श्रेष्ठता प्राप्त हो सके। जब वह उपलब्धि-स्तर प्राप्त हो जाता है तो वह पुनः हीन भाव महसूस करने लगता है और पुनः ऊँची उपलब्धि प्राप्त करने के लिए प्रेरित हो जाता है तो असमान्यता के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

2. सामाजिक रूचि-

ऐडलर (1939) ने सामाजिक रूचि या सामाजिक प्रेरक को मानव व्यवहारों का एक मौलिक निर्धारक माना और कहा कि सामाजिक रूचि जन्मजात होती है। इस प्रकार, उन्होंने प्रभुत्व आकांक्षा के साथ-साथ सामाजिक प्रेरक को भी व्यक्तित्व का आवश्य क अंग माना। सामाजिक रूचि की अभिव्यक्ति सहकारिता, आत्मीकरण, परस्पर सामाजिक सम्बन्ध आदि रूपों में देखी जाती है। ऐडलर के अनुसार व्यक्ति स्वभावतः सामाजिक है।

जीवन शैली-

ऐडलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में व्यवहार करने की अपनी विशेष शैली होती है, जिससे उसका व्यक्तित्व अपूर्व बन जाता है। सभी व्यक्तियों का लक्ष्य होता है-श्रेष्ठता प्राप्त करना। परन्तु उसको प्राप्त करने के ढंग अलग-अलग होते हैं, जिसे जीवन-शैली कहा जाता है। इस शैली का निर्माण 4.5 वर्ष की आयु तक हो जाता है और इसके बाद अनुभवों का समावेष तथा उपयोग इसी शैली के अनुकूल होता है।

सर्जनात्मक व्यक्तित्व-

व्यक्तित्व-संरचना की व्याख्या करते हुए ऐडलर ने सर्जनात्मक आत्मा या व्यक्तित्व के प्रत्यय की कल्पना की तथा इसे वंषपरम्परा तथा अनुभव का परिणाम माना। उनके अनुसार सर्जनात्मक आत्मा ही मानव जीवन का आधार तथा वास्तविक संचालक है। ऐडलर का यह प्रत्यय वास्तव में बहुत कीमती है और आत्मा के पुराने प्रत्यय से भिन्न है।

जन्मक्रम-

व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में जन्मक्रम के महत्व की चर्चा करते हुए ऐडलर ने कहा कि अन्य परिस्थितियाँ समान होने पर भी जन्मक्रम के कारण बच्चों का व्यक्तित्व भिन्न हो जाता है। पहला बच्चा को माता-पिता की ओर से अधिक स्नेह मिलता है और दूसरे बच्चे के जन्म लेने पर यह स्नेह बांट जाता है या इसमें कमी आ जाती है। इस अनुभव की अभिव्यक्ति पहला बच्चा कई रूपों में करता है। स्नायुविकृत, अपराधी, शराबी तथा भ्रष्ट प्रायः प्रथम जन्मक्रम के होते हैं। यदि माता-पिता पहले बच्चे को प्रतिस्पर्धा से बचा लेते हैं तो ऐसे बच्चे विवकेषील तथा उच्च उपलब्धि आवश्यकता वाले होते हैं। जो बच्चा दूसरे जन्मक्रम में होता है, वह अभिलाषी होता है। सबसे छोटा बच्चा दुर्बलित होता है। जोन्स के अनुसार सभी परिस्थितियों में ऐडलर का यह विचार सही सिद्ध नहीं होता है।

ऐडलर के सिद्धान्त पर आलोचनात्मक दृष्टि डालने पर इसके कई गुणों तथा अवगुणों का पता चलता है। इस सिद्धान्त के निम्नलिखित गुण हैं-

1. व्यक्तित्व विकास में ऐडलर ने सामाजिक कारकों के महत्व पर बल देकर एक सराहनीय काम किया। उनका यह विश्वास आज भी मान्य है कि व्यक्तित्व विकास पर जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक कारकों का भाव अधिक पड़ता है। ऐडलर ने मानव को जैविक प्राणी नहीं माना, बल्कि सामाजिक प्राणी माना।

2. समग्रता-मापदण्ड पर जेली एवं जिगलर ने ऐडलर के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है। इस आधार पर यह सिद्धान्त फ्रायड के सिद्धान्त के बराबर है।
3. मितव्ययिता मापदण्ड पर भी ऐडलर का सिद्धान्त काफी संतोषप्रद है। ऐडलर ने बहुत थोड़े प्रत्ययों के आधार पर व्यक्तित्व संरचना की व्याख्या प्रस्तुत की है। जेली एवं जिगलर के शब्दों में ''ऐडलर का सिद्धान्त इस अर्थ में अत्यधिक किफायती है कि इसमें सीमित मौखिक प्रत्ययों की सहायता से सम्पूर्ण सैद्धान्तिक प्रणाली की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।''
4. आंतरिक संगति मापदण्ड के आधार पर भी ऐडलर का सिद्धान्त सफल प्रतीत होता है। ऐडलर ने अपने सिद्धान्त में जिन बातों का उल्लेख किया है, उनके बीच कोई विरोध या असंगति नहीं है, बल्कि काफी संगति है।

इस दृष्टिकोण से ऐडलर का सिद्धान्त फ्रायड या युंग के सिद्धान्त से श्रेष्ठकर है। इस कसौटी पर जेली तथा जिगलर ने ऐडलर को प्रथम श्रेणी में तथा फ्रायड को द्वितीय श्रेणी में रखा है।डीकैप्रियो के अनुसार मनोचिकित्या के क्षेत्र में ऐडलर का महत्वपूर्ण योगदान है। आज भी पाष्चात्य देषों में सलाहकार तथा चिकित्सक ऐडलर के प्रत्ययों तथा उनकी विधियों का अनुसरण कर रहे हैं।

उपर्युक्त गुणों/विशेषताओं के रहते हुए भी ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त आलोचना से परे नहीं है।

1. जेली तथा जिगलर के अनुसार इस सिद्धान्त में प्रमाणनीयता का बहुत अभाव है। ऐडलर ने अपने सिद्धान्त में ऐसे प्रत्ययों का उल्लेख किया है, जिन्हें न तो आनुभविक आधार पर परिभाषित किया जा सकता है और न प्रमाणित किया जा सकता है। इस कसौटी पर उन्होंने इस सिद्धान्त की गणना तीसरी श्रेणी में की है। उनके अनुसार आल्पोर्ट की समकलनात्मक एकता की तरह ऐडलर ने सर्जनात्मक व्यक्तित्व का अनुभविक परीक्षण यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।
2. एडलर के सिद्धान्त में शोध-मूल्य भी सीमित है। इस सिद्धान्त से शोधकार्य में बहुत कम सहायता मिली है। ऐडलर के जन्मक्रम के प्रत्यय को छोड़कर उनके दूसरे प्रत्ययों के सम्बन्ध में बहुत कम शोध हुए है। इसी कारण जेली तथा जिगलर ने इस कसौटी पर इस सिद्धान्त को दूसरी श्रेणी में रखा है जबकि फ्रायड के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है।
3. व्यावहारिक महत्व के दृष्टिकोण से ऐडलर का सिद्धान्त फ्रायड के सिद्धान्त से बहुत पीछे है। इस सिद्धान्त का प्रभाव मनोचिकित्सा तथा माता-पिता एवं बच्चों के बीच सम्बन्ध के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों पर बहुत कम पड़ा है, जबकि फ्रायड के सिद्धान्त का प्रभाव जीवन के अनेक क्षेत्रों पर पड़ा है। इसी कारण जेली तथा जिगलर ने इस कसौटी पर जहाँ फ्रायड के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है, वहाँ ऐडलर के सिद्धान्त को दूसरी श्रेणी में।

4. मानव-व्यवहार के मूल स्रोत के सम्बन्ध में ऐडलर का विचार स्पष्ट नहीं है। उन्होंने कभी सामाजिक रूचि को, कभी प्रभुत्व-शक्ति को और कभी जीवन शैली को प्रेरणात्मक स्रोत माना। सर्जनात्मक व्यक्तित्व तथा जीवन-शैली के निर्माण में इसकी भूमिका से संबंधित ऐडलर का विचार अस्पष्ट है।
5. डी कैप्रिया के अनुसार ऐडलर के सिद्धान्त के विरूद्ध एक गम्भीर आरोप यह है कि व्यक्तित्व-निर्माण में प्रारंभिक बचपन पर अनावष्यक बल दिया गया है। उनका यह विश्वास कि व्यक्तित्व का निर्माण प्रारंभिक वर्षो में ही पूरा हो जाता है, युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। आल्पोर्ट का कहना है कि व्यक्तित्व की दिषायें किषोराअवस्था या वयस्क-अवस्था में बदल सकती है। वैलेन्ट के अनुसार कॉलेज के अनुभवों के कारण लड़के तथा लड़कियों के प्रारंभिक व्यक्तित्व में कठोर परिवर्तन हो सकते है। थॉमस एवं चेस ने इसी तरह का विचार प्रस्तुत किया है।

7.5 कारेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

कारेन हार्नी एक महिला मनोवैज्ञानिक थी जिन्हें फ्रायड का न तो सहकर्मी और न ही शिष्य ही कहा जा सकता है, परंतु इतना जरूर कहा जा सकता है कि उनके प्रषिक्षण पर फ्रायडियन मनोविष्लेषण का प्रभाव काफी पड़ा। हार्नी कई बिन्दुओं पर फ्रायड से अलग विचार व्यक्त की; परंतु उसने उनके विचारों को ऐडलर एवं युंग के समान तिरस्कृत नहीं किया बल्कि उनमें संषोधन कर उन्हें उन्नत बनाने की कोषिष की। उन्होंने स्वयं ही कहा है ‘‘मैं कोई नये स्कूल की स्थापना नहीं करना चाहती, परंतु फ्रायड द्वारा डाले गये नींव पर ही कुछ बनाना चाहती हूँ’’। उनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त पर उनके अपने यौन अर्थात् स्त्रैण दृष्टिकोण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का पर्याप्त प्रभाव झलकता है। उनके इस सिद्धान्त को निम्नांकित प्रमुख शीर्षकों में बाँटकर वर्णन किया जा सकता है-

1. बाल्यावस्था की आवश्यकता
2. मूल चिन्ता
3. स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति
4. चिन्ता दूर करने के उपाय

बाल्यावस्था की आवश्यकताएँ

हार्नी, फ्रायड के इस मत से सहमत थी कि वयस्क व्यक्तित्व के निर्धारण में बाल्यावस्था के आरंभिक वर्षो का महत्व काफी होता है। परंतु हार्नी इस बिन्दु पर फ्रायड से अलग विचार रखती है कि व्यक्तित्व का निर्माण किस तरह से होता है। हार्नी का मत है कि बाल्यावस्था के सामाजिक बल न कि जैविक बलों द्वारा व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है। बच्चों तथा माता-पिता के साथ सामाजिक संबंध से व्यक्तित्व विकास प्रभावि होता है।

हार्नी का यह मत था कि बाल्यावस्था की दो आवश्यकताएँ प्रमुख होती हैं जिनका व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्षः प्रभाव पड़ता है। ये दो आवश्यकताएँ हैं-संतुष्टि आवश्यकता तथा सुरक्षा आवश्यकता । संतुष्टि आवश्यकता में मौलिक दैहिक आवश्यकताएँ जैसे-भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया, नींद आदि की आवश्यकता

को सम्मिलित किया गया है। सुरक्षा आवश्यकता में डर से स्वतंत्रता तथा सुरक्षा की आवश्यकता सम्मिलित होती है। इन दोनों आवश्यकता ओं का स्वरूप सार्वभौमिक होता है। इन दोनों में हार्नी ने सुरक्षा आवश्यकता को व्यक्तित्व विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि इस बात पर निर्भर करती है कि बच्चा को माता-पिता से कितना स्नेह मिलता है और माता-पिता द्वारा किस हद तक वह एक वांछित बच्चा समझा जाता है। हार्नी का मत है कि जब सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि नहीं होती है तो बच्चों में विद्वेष उत्पन्न हो जाता है। बच्चे कुछ कारणों से जैसे-निःसहायता का भाव, माता-पिता के डर आदि से अपने विद्वेष भाव का दमन कर देते हैं। जब विद्वेष भाव का दमन हो जाता है, तो उससे बच्चों में चिन्ता की उत्पत्ति होती है जिसे मूल चिन्ता कहा जाता है।

मूल चिन्ता-

हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में मूल चिन्ता एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। मूल चिन्ता से हार्नी का तात्पर्य बच्चों में अकेलापन तथा निःसहायता का भाव से होता है, जो विद्वेष के भाव के दमन से जुड़ा होता है। हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता एक ऐसी चिन्ता है जिसके कारण बाद में व्यक्ति में तंत्रिकातापी रोग विकसित होता है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता के तीन तत्व होते हैं-असमर्थता या निःसहायता का भाव, विद्वेष तथा अलगाव। जब बच्चों को घर में वास्तविक प्यार एवं स्नेह नहीं मिलता है, तो इनमें इन तत्वों का विकास हो जाता है। जब माता-पिता से बच्चों को तिरस्कार मिलता है, तो उनमें असमर्थता तथा अलगाव का भाव विकसित हो जाता है तथा वे इन भावों को दूर करने का असफल प्रयत्न भी करते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि उनमें विद्वेष विकसित हो जाता है जिसके कारण वे दूसरों के प्रति आषंकित रहते हैं जो धीरे-धीरे उन्हें दूसरों के प्रति आक्रमक बना देता है। उनमें दोष-भाव विकसित हो जाते हैं जिसका पहले तो वे दमन कर देते हैं परंतु बाद में इससे उनमें चिन्ता विकसित हो जाती है। इस तरह से हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता विकसित होने का कारण एक ऐसा घरेलू वातावरण बतलाया गया है जिसमें माता-पिता एवं बच्चों के संबंध में सच्चा प्यार एवं स्नेह की कमी होती है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता से बच्चा अपने आप को बचाने के लिए कुछ तरीका अपनाता है जिसमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. स्नेह प्राप्त करना-

इसमें बच्चे दूसरों से स्नेह एवं प्यार पाने की भरपूर कोषिष करते हैं। दूसरों द्वारा किये गये आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहते हैं।

2. विन्रमता दिखाना-

विनम्रता आत्म-रक्षा का एक दूसरा प्रमुख उपाय है। इसमें व्यक्ति किसी एक व्यक्ति या प्रत्येक व्यक्ति के विचारों को काफी विनम्रता से स्वीकार करता है। वह कभी भी ऐसा कुछ नहीं करता है जिससे दूसरे व्यक्ति को क्रोध उत्पन्न हो जाए। परिस्थिति यदि ऐसी होती भी है, तो वह अपनी इच्छा एवं आवश्यकता का दमन कर देता है। व्यक्ति में यह विश्वास होता है कि यदि हम विनम्रता दिखायेंगे तो मुझे लोग चोट नहीं पहुँचायेंगे।

3. दूसरों पर नियंत्रण पाना-

दूसरों पर नियंत्रण पाना या अपने बल का उपयोग करने में सफल होना आत्म-रक्षा का तीसरा महत्वपूर्ण प्रक्रम है। जब व्यक्ति अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ या उत्तम समझता है या अपने को अधिक सबल या अपनी उपलब्धियों को अधिक महत्वपूर्ण समझता है, तो वह एक तरह से निःसहायता की क्षतिपूर्ति करता है तथा सुरक्षा के भाव को मजबूत करता है।

4. प्रत्याहार या निवर्तन-

मूल चिन्ता से आत्म-रक्षा का एक चौथा तरीका वह है जिसमें व्यक्ति मनोवैज्ञानिक अर्थ में दूसरों से एक तरह से अपने आपको पीछे खींच लेता है। यहाँ व्यक्ति एक तरह से दूसरों से पूर्णतः स्वतंत्र हो जाता है तथा वह बाह्य एवं भीतरी आवश्यकता ओं की तुष्टि के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता है।

आत्म-रक्षा के इन चारों प्रक्रमों का एक सामान्य लक्ष्य है- व्यक्ति को चिन्ता से बचना। ये सभी प्रक्रम व्यक्ति में सुरक्षा तथा पुनर्विष्वास उत्पन्न करते हैं।

स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति-

जब व्यक्ति अपनी जिन्दगी की बहुत सारी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है जिसके कारण उसे बार-बार असफलता ही हाथ लगती है, तो उसमें कुछ विषेष आवश्यकता एँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके व्यक्तित्व का एक स्थायी अंग बन जाती है। इसे हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता कहा है। इसे स्नायुविकृत आवश्यकता इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे व्यक्ति समस्या का कोई संगत समाधान नहीं कर पाता है। ऐसी आवश्यकता एँ सामान्य तथा मनःस्नायुविकृत दोनों ही व्यक्तियों में पाये जाते हैं, परंतु मनःस्नायुविकृत व्यक्तियों में इसकी प्रबलता अधिक होती है। हार्नी के अनुरूप ऐसे स्नायुविकृत आवश्यकताएँ निम्नांकित दस हैं-स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता, प्रबल जीवन साथी की आवश्यकता, जिन्दगी का संकुचित एवं सख्त घेरे में रखने की आवश्यकता, सत्ता की आवश्यकता , शोषण की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता, व्यक्तिगत प्रशंसा की आवश्यकता, व्यक्तिगत उपलब्धि तथा आकांक्षा की आवश्यकता, आत्म-पर्याप्तता तथा स्वतंत्रता की आवश्यकता, पूर्णता तथा अनाक्रमण की आवश्यकता ।

स्पष्टतः उपर्युक्त आवश्यकता एँ हम सभी व्यक्तियों में होती है। परंतु जब कोई व्यक्ति उनमें से किसी आवश्यकता की गहन तुष्टि को ही मूल चिन्ता को दूर करने के उपाय के रूप में स्वीकार कर लेता है, तो उसका स्वरूप स्नायुविकृत या तंत्रिका रोगी हो जाता है। बाद में हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता के इस सिद्धान्त में परिवर्तन किया क्योंकि ये इनसे संतुष्ट नहीं थी। उन्होंने बाद में कहा कि इन सभी दसों आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति मात्र तीन तरह की मनोवृत्ति द्वारा की जा सकती है जिसे उन्होंने स्नायुविकृत प्रवृत्ति कहा है। स्नायुविकृत प्रवृत्ति एक ऐसा व्यवहार एवं मनोवृत्ति है जिसे व्यक्ति अपनी ओर तथा अन्य दूसरे व्यक्ति की ओर विकसित करता है तथा इन मनोवृत्तियों द्वारा वह अपनी स्नायुविकृति आवश्यकता ओं की अभिव्यक्ति करता है। इस तरह की व्यवहारात्मक तथा मनोवृत्ति प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नांकित है-

व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में अति अनुपालनषीलता का गुण पाया जाता है। व्यक्ति दूसरों का स्नेह, स्वीकृति एवं अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उनकी प्रत्येक इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए तत्पर रहता है। इसमें स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता तथा प्रबल जीवन साथ प्राप्त करने की आवश्यकता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में दूसरों के प्रति आक्रामकता तथा विद्वेष अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसमें सत्ता की आवश्यकता , शोषण की आवश्यकता , प्रशांसा एवं आकांक्षा आदि की आवश्यकता को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति दूसरों का सामना नहीं करना चाहता है और उनसे दूर हटने की कोशिश करता है। उसे लोगों से मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता है तथा वह एकान्तप्रिय हो जाता है।

इन तीनों तरह के स्नायुविकृत प्रवृत्तियों के पीछे एक उभयनिष्ठ कारक होता है जिसे उन्होंने सामाजिक कुसमायोजन कहा है। ये तीनों तरह की प्रवृत्तियों का स्वरूप बाध्यकर होता है जिसका मतलब यह हुआ कि स्नायुविकृत व्यक्ति उनमें से किसी एक ढंग की मनोवृत्ति दिखलाते हुए व्यवहार करने के लिए बाध्य होता है। इन तीनों तरह की प्रवृत्तियों से तीन अलग-अलग व्यक्तित्व प्रकारों का जन्म होता है जिनका वर्णन निम्नांकित है-

फरियादी व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व, व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति जरूरत से ज्यादा दूसरों पर निर्भर करते हैं एवं दूसरों के स्नेह एवं अनुमोदन को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं। दूसरे लोगों के साथ व्यवहार करते समय ऐसे लोगों का दृष्टिकोण मैत्रीपूर्ण होता है तथा दूसरों की भलाई करने के ख्याल से अपनी इच्छा एवं आकांक्षा की कुर्बानी भी देते हैं। अक्सर वे एक निःसहायता एवं कमजोरी की मनोवृत्ति इस ख्याल से दिखलाते हैं कि दूसरे लोग उन्हें ऐसा समझकर स्नेह एवं सुरक्षा प्रदान कर सके।

विद्वेषी या आक्रामक व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्ति आक्रामक, शक्की, समाज विरोधी तथा विद्वेषी प्रकृति के होते हैं। ऐसे लोगों को अपनी क्षमता पर जरूरत से ज्यादा भरोसा रहता है तथा दूसरों पर नियंत्रण एवं अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने के ख्याल से वे हमेशा आधिपत्य दिखाने की कोशिाशा करते हैं। ऐसे लोग दूसरों के साथ व्यवहार करने में या किसी तरह का संबंध स्थापित करने में इस बात का ख्याल अधिक करते हैं कि उन्हें उस संबंध से क्या लाभ होगा। वे यह नहीं सोचते हैं कि उससे दूसरों को क्या लाभ होगा।

असम्बद्ध व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्तियों में आत्म केन्द्रिता, एकान्तप्रियता तथा असामाजिकता अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे लोग अन्य सभी लोगों से एक सांवेगिक दूरी बनाकर रखते हैं। ऐसे लोग दूसरों को न तो प्यार करते हैं, न घृणा करते हैं और न ही उनके साथ किसी तरह का सहयोग करते हैं। ऐसे लोग अधिक से अधिक समय अकेले होकर व्यतीत करना चाहते हैं।

हार्नी ने अपने सिद्धान्त में ये भी स्पष्ट किया है कि एक तंत्रिका रोगी व्यक्ति में उपर्युक्त तीन तरह की प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति अधिक प्रबल होता है। जबकि अन्य दो कुछ ही मात्रा में उपस्थित होते हैं। परंतु वे दमित होते हैं। जब कोई दमित प्रवृत्ति अपनी अभिव्यक्ति के लिए सक्रिय प्रयास जारी करता है, तो इससे व्यक्ति में मानसिक संघर्ष होता है।

मूल चिन्ता को कम करने के प्रयास-

हार्नी ने अपने व्यक्तितव सिद्धान्त में कुछ वैसे उपायों का भी वर्णन किया है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने में उत्पन्न मूल चिन्ता को कम करता है। ऐसे उपायों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा जा सकता है।

आदर्शवादी आत्म-छवि-

हार्नी का मत है कि मूल चिन्ता को दूर करने के ख्याल से अपने आप के बारे में व्यक्ति एक आदर्शवादी छवि विकसित कर लेता है जिसमें वह अपने आप को सभी तरह के गुणों से युक्त पाता है। यह आदर्शवादी छवि प्रायः अवास्तविक एवं अतिरंजित होता है। ऐसी परिस्थिति में वास्तविक आत्मन् तथा आदर्शवादी आत्मन् में काफी अन्तर होता है। आदर्शवादी आत्मन् के माँगों को पूरा करने के लिए सामान्यतः एक स्नायुविकृत प्रयास होता है। ऐसा प्रयास बाध्यकर, अविभेदी तथा अतुष्टनीय होता है। अपने आदर्शवादी आत्मन् को समर्थन प्रदान करने के लिए व्यक्ति एक विशेष तंत्र विकसित कर लेता है जिसे घमंड तंत्र कहा जाता है जिसमें व्यक्ति घमंड से व्यवहार करता है तथा अपने आप में वह विशेष शक्ति, बुद्धि, धन प्राप्त कर लेने की बात सोच रखता है जो अन्य किसी में नहीं होता है। इतना ही नहीं, वह अपने आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को समर्थन देने के लिए व्यवहारों का कुछ महत्वपूर्ण मानकों को मन में बैठा लेता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है।

रक्षा प्रक्रम-

हार्नी का मत है कि व्यक्ति मूल चिन्ता को दूर करने के लिए कुछ रक्षा प्रक्रम का भी सहारा लेता है। उनके अनुसार ऐसे रक्षा प्रक्रम दो प्रकार के होते हैं-यौक्तिकीकरण तथा बाहाताा। यौक्तिकीकरण एक ऐसा रक्षा प्रक्रम है जिसमें अयुक्तिसंगत अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं से उत्पन्न मानसिक संघर्ष या तनाव का समाधान उन अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं को युक्तिसंगत बनाकर अर्थात तर्कपूर्ण एवं विवेकपूर्ण व्याख्या कर किया जाता है और मानसिक संघर्ष को दूर करने की कोशिश की जाती है। इस तरह से हार्नी ने यौक्तिकीकरण का उपयोग फ्रायड के ही अर्थ में किया। बाहाता को हार्नी ने प्रक्षेपण के तुल्य माना है जिसमें व्यक्ति अपनी क्रिया की व्याख्या, कुछ बाहा कारकों में दोषारोपण करके करता है। प्रायः दोषारोपण में वह अपने से कमजोर तत्वों को ही निशाना बनाता है।

स्पष्ट हुआ कि हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त का समग्र बल जैविक कारक न होकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक है।

हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जिन तथ्यों पर प्रकाश डाला है उसके आलोक में इस सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ कही जा सकती है।

1. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी द्वारा जैविक कारक को गौण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को प्रधान माना जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि बतलाया है और कहा है कि सचमुच में व्यक्तित्व के निर्धारण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की श्रेष्ठता पर बल डालकर अन्य कई मनोवैज्ञानिकों को इस क्षेत्र में शोध एवं मंत्रणा करने का उत्तम प्रोत्साहन दिया गया है।
2. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी के कुछ संप्रत्ययों जैसे-मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता एवं स्नायुविकृत प्रवृत्ति को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। कई मनोवैज्ञानिकों ने उनके द्वारा प्रतिपादित स्नायुविकृत प्रवृत्ति को विचलित व्यवहार के बारे में जानने का एक उत्तम तरीका बतलाया है।
3. कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा आत्म-सम्मान, सुरक्षा की आवश्यकता तथा आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त का मुख्य पहलू माना गया है क्योंकि इसके द्वारा दो बातों अर्थात् व्यक्तित्व का विकास तथा स्नायुविकृत प्रवृत्तियों से व्यक्तित्व किस तरह से प्रभावित होता है, की सफल व्याख्या होती है। सामाजिक अन्तःक्रियाओं के आलोक में ऐसी व्याख्या व्यक्तित्व के अन्य सिद्धान्त में नहीं मिलता है।

इन गुणों के बावजूद निम्नांकित बिन्दुओं पर हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की आलोचना की गयी है-

1. हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त का शोधपरक मूल्य कम बतलाया गया है। इनके संप्रत्ययों पर अधिक शोध नहीं किये गये हैं तथा इनकी लोकप्रियता इतनी नहीं है जितना कि फ्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धान्तों की थी। इसका एक मुख्य कारण यह था कि हार्नी के शिष्य भी कम थे जो उनके विचारों एवं सिद्धान्तों पर गहन अध्ययन करते।
2. फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जैविक मूलप्रवृत्तियों की उपेक्षा करके तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर जरूरत से ज्यादा बल डालकर व्यक्तित्व के सिद्धान्त की एक अधूरी व्याख्या प्रस्तुत की है।
3. कुछ आलोचकों ने यह भी कहा है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में लैंगिकता, बाल्यावस्था विकास, आक्रमकता तथा अचेतन की उपेक्षा करके हार्नी ने बहुत बड़ी भूल की है।
4. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में यद्यपि हार्नी ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों को महत्वपूर्ण माना है, फिर भी उन्होंने समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र में उपलब्ध आँकड़ों जिनसे उनके सिद्धान्त में मजबूती आती, का उपयोग नहीं किया है। उन्होंने यह भी विस्तृत रूप से नहीं बतलाया है कि किस तरह से सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा व्यक्तित्व का विकास हो पाता है।

5. यह भी कहा गया है कि हार्नी के सिद्धान्त में उतनी संगति नहीं है जितना कि फ्रायड के सिद्धान्त में है तथा इनका सिद्धान्त मध्यवर्गीय अमेरिकन संस्कृति से जरूरत से ज्यादा प्रभावित होता पाया गया है मानों यह सिद्धान्त सिर्फ इस वर्ग के व्यक्तियों के व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए बना हो।

इन आलोचनाओं के बावजूद हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त के महत्व का अंदाज हम इस बात से भी लगा सकते हैं कि न्यूयार्क शहर में हार्नी के नाम पर दो संस्थान खोले गये हैं जो मानसिक समस्याओं के उपचार से संबंद्ध प्रशिक्षण प्रदान करता है। ये संस्थान हैं-कारेन हार्नी क्लिनिक, तथा कारेन हार्नी साइकोएनालिटिक एन्स्टीट्यूट।

5.6 इरिक फ्रॉम का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में इरिक फ्रॉम का व्यक्तित्व सिद्धान्त भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन्होंने एडलर तथा हार्नी के समान ही व्यक्तित्व का एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक मॉडल प्रस्तुत किया। जो व्यक्तित्व के प्रमुख निर्धारक के रूप में जैविक कारकों को नहीं बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों को स्वीकार करता है। फ्रॉम का मत है कि व्यक्तित्व ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक कारकों द्वारा प्रभावित होता है। फ्रॉम के अनुसार व्यक्ति का समाज के साथ जो संबंध होता है, वह स्थिर न होकर परिवर्तनीय होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे-हाल एवं उनके सहयोगियों ने यह कहा है कि फ्रॅाम ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में फ्रायड के दृष्टिकोण तथा कार्ल मार्क्स के सामाजिक सिद्धान्तों एवं दर्शनशास्त्र को सुसंयोजित करने का सफल प्रयास किया है। उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित प्रमुख भागों में बाँटकर प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. स्वतंत्रता बनाम सुरक्षा: मौलिक मानवीय द्विविधा
2. पलायन के प्रक्रम या मानसिक प्रक्रम
3. मूल आवश्यकताएँ
4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास
5. व्यक्तित्व प्रकार

स्वतंत्रता बनाम सुरक्षा: मौलिक मानवीय द्विविधा-

फ्रॉम की पहली पुस्तक 1941 में प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक 'स्केप फ्रॉम फ्रीडम' था। इस पुस्तक में उन्होंने मनुष्य को एक सामाजिक पशु का दर्जा दिया है और यह बतलाने की कोशिश किया है जैसे-जैसे व्यक्ति अपनी अनुभूतियों के आधार पर अपने आप को विकसित करता है, उसमें स्वतंत्रता की भावना प्रबल होती गयी। आधुनिक युग में पहले की अपेक्षा मनुष्यों में स्वतंत्रता की भावना अधिक पायी जाती है। फ्रॉम का यह मत है कि जैसे-जैसे लोगों में स्वतंत्रता की भावना मजबूत हुई है, उनमें अकेलापन, असार्थक तथा दूसरों से असंबद्ध या विमुख होने की प्रवृत्ति भी अधिक बढ़ गयी है। दूसरे तरफ जब व्यक्तियों में स्वतंत्रता कम होती थी, तो उनमें सुरक्षा तथा संबंधन की भावना भी तीव्र थी। इस तरह स्वतंत्रता की भावना सुरक्षा एवं संबंधन की भावना के

विपरीत दिख पड़ता है। अतः एक ओर व्यक्ति अपने आप को जब स्वतंत्र करना चाहता है तथा पर्यावरण के वस्तुओं एवं घटनाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहता है तो दूसरी ओर इस तरह के स्वतंत्रता के प्रयास से उसे अकेलापन, असार्थकता तथा अलगाव जैसे कटु भावों का भी सामना करना पड़ता है। जैसे-एक बच्चा जो अपने माता-पिता के नियंत्रण से स्वतंत्र होना चाहता है, माता-पिता के बिना अपने आप को अकेला, लाचार एवं निःसहाय भी अनुभव कर सकता है। इस तरह की द्विविधा को फ्रॉम ने अस्तित्ववादी द्विविधा कहा है।

इस द्विविधा से क्या छुटकारा पाया जा सकता है? फ्रॉम ने यह कहा कि दो ऐसे दृष्टिकोण हैं जिन्हें आपनाकर हम इस द्विविधा से कुछ हद तक बच सकते हैं तथा जिन्दगी में सार्थक तथा अर्थपूर्ण भाव उत्पन्न कर सकते हैं। पहली विधि वह है जिसमें अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी स्वतंत्रता एवं अखंडता की कुरबानी दिये बगैर व्यक्ति पुनर्संगठित हो सकता हे। इस तरह की परिस्थिति में व्यक्ति, एक-दूसरे से स्नेह एवं प्यार के बंधन में बँधा होगा और तब कोई अकेलापन तथा असार्थक होने का अनुभव नहीं करेगा। दूसरी विधि वह है जिसमें व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता की भावना को पूर्णतः त्याग करके वैयक्तिकता तथा अखंडता के सामने घुटने टेक दे। परंतु इस दूसरी विधि में खतरा यह है कि इससे व्यक्ति का विकास नहीं होगा तथा आत्म-अभिव्यक्ति भी नहीं होगी परंतु निशिचत रूप से लोगों के मन से अकेलापन तथा असार्थकता की चिन्ता दूर हो जाएगी।

पलायन के प्रक्रम या मानसिक प्रक्रम-

स्वतंत्रता से पलायन या खोये हुए सुरक्षा के भाव की पुनर्प्राप्ति के लिए फ्रॉम ने ऊपर में जो सामान्य उपागमों का जिक्र किया है, उसके अलावा भी उन्होंने पलायन के तीन प्रक्रमों जिसे मानसिक प्रक्रम भी कहा जाता है, का वर्णन किया है। वे तीन प्रक्रम निम्नांकित हैं-

सत्तावाद

विध्वंसता

स्वचलन अनुरूपता

1. सत्तावाद-

सत्तावाद की अभिव्यक्ति आत्म-पीड़न या परपीड़न प्रयासों के रूप में होता है। आत्म-पीड़न प्रयासों में व्यक्ति अपने आप को तुच्छ, अपर्याप्त एवं कमजोर समझता है। ऐसे व्यक्ति जानबूझकर दूसरों के नियंत्रण में अपने आप को सौंप देते हैं। इन सभी विनम्रता की क्रियाओं से उनमें सुरक्षा का भाव पनपता है तथा इस प्रकार से वे अपने अकेलापन एवं निःसहायता के भाव को दूर करते हैं। परपीड़न प्रयासों में, जो आत्मपीड़न प्रयासों के ठीक विपरीत होता है, व्यक्ति दूसरों पर जबरन अधिकार जमाने की कोशिश करता है। तीन तरह से परपीड़न प्रयासों की अभिव्यक्ति कर व्यक्ति अपनी निःसहायता तथा अकेलापन की भाव के दूर करता है तथा सुरक्षा का भाव विकसित करता है। पहला तरीका वह है जिसमें व्यक्ति दूसरों को अपने ऊपर निर्भर होने के लिए पूर्णतः बाध्य कर देता है कि वह उन पर अपना निरपेक्ष शक्ति दिखा सके। दूसरा तरीका वह है जिसमें व्यक्ति दूसरों का शोषण करता है तथा जिसमें वह दूसरों के सभी वांछित चीजों को अपने कब्जे में कर लेता है। तीसरा तरीका वह है जिसमें

व्यक्ति दूसरों को तकलीफ देता है या उसके तकलीफ का कारण बनता है। इस तकलीफ में अन्य बातों के अलावा सांवेगिक तकलीफ अवशय ही सम्मिलित होता है। इन तीनों तरह के परपीड़न प्रयासों या कोशिश द्वारा अपने में सुरक्षा का भाव वह विकसित करता है तथा अकेलापन एवं निःसहायता के भाव को दूर करता है।

2. विध्वंसता-

फ्रॉम के अनुसार दूसरा महत्वपूर्ण पलायन प्रक्रम विध्वंसता है जो सत्तवाद के विपरीत है। सत्तावाद में व्यक्ति वस्तु के साथ सतत अन्तःक्रिया करता है जबकि विध्वंसतता में व्यक्ति वस्तु को पूर्णतः नष्ट कर देना चाहता है। इस तरह से व्यक्ति अपने वातावरण में आक्रमक व्यवहार करके निःसहायता तथा एकान्तवासिता के भाव को दूर करता है।

3. स्वचालित अनुरूपता-

पलायन प्रक्रम की तीसरी विधि स्वचालित अनुरूपता है जिसमें व्यक्ति दूसरों के साथ सभी प्रकार के मतभेदों को भूलाकर अपने अकेलापन तथा अलगाव के भाव को दूर करता है। ऐसा करने के लिए वह दूसरों के विचारों, मतों, आज्ञाओं को बिना शर्त मानकर उसके अनुरूप व्यवहार करने लगता है।

मूल आवश्यकताएँ-

एक जीवित प्राणी के रूप में व्यक्ति में कई दैहिक आवश्यकताएँ होती हैं जिनसे इनका अस्तित्व बना रहता है। भोजन, पानी, यौन की आवश्यकता इस श्रेणी की आवश्यकता है। परंतु मनुष्यों में इन दैहिक आवश्यकता ओं के अलावा कुछ मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ भी होती हैं जो सुरक्षा प्रणोद तथा इसके विपरीत स्वतंत्रता का प्रणोद के बीच हुए अन्तःक्रिया से उत्पन्न होती हैं। ये छः मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं- संबंद्धता की आवश्यकता , श्रेष्ठता की आवश्यकता, गहरापन की आवश्यकता , पहचान की आवश्यकता , उन्मुखता प्रारूप की आवश्यकता , तथा उत्तेजन आवश्यकता ।

1. संबद्धता की आवश्यकता -

इस आवश्यकता में व्यक्ति पारस्परिक आदर एवं बोधगम्यता के माध्यम से दूसरों के साथ उत्तम संबंध विकसित करने की कोशिश करता है। इस आवश्यकता की प्राप्ति, फ्रॉम के अनुसार, उत्पादक प्यार के माध्यम से होता है जिसमें व्यक्ति में उत्तरदायित्व, आदर तथा दूसरों की देख-रेख करने के भाव की प्रधानता होती है। जब इस आवश्यकता की तुष्टि नहीं हो पाती है, तो एक विशाष तरह की अवस्था उत्पन्न होती है जिसे आत्म मोह या आत्म रति कहा जाता है जिसमें व्यक्ति अपने भाव, चिन्तन आवश्यकताओं पर ही केन्द्रित होने के करण वह वातावरण के अन्य वस्तुओं या घटनाओं के साथ अपने आप को संबद्ध नहीं कर पाता है।

2. श्रेष्ठता या उत्कृष्टता की आवश्यकता -

इस आवश्यकता से तात्पर्य वैसी आवश्यकता से होती है जिसमें व्यक्ति अपने पाशविक प्रकृति से ऊपर उठना चाहता है ताकि वह कुछ सर्जनात्मक रूप से अपने बारे में सोच सके। अतः इस आवश्यकता में व्यक्ति सर्जनात्मक तथा उत्पादक बनने की कोशिश करता है। अगर किसी कारण उसका यह सर्जनात्मक आवश्यकता

अवरुद्ध हो जाती है, तो वह विध्वंसात्मक रूख अपना लेता है। फ्रॉम के अनुसार विध्वंसात्मक, सर्जनात्मक के समान ही मानव प्रकृति का एक अंश होता है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ मिलकर श्रेष्ठता या उत्कृष्टता की आवश्यकता की तुष्टि करती हैं, परंतु इन दोनों में से सर्जनात्मक का महत्व अधिक होता है।

3. गहरापन की आवश्यकता -

इससे तात्पर्य एक ऐसी आवश्यकता से होती है जिसमें व्यक्ति सक्रिय रहना चाहता है ताकि वह अपने आप को एक अर्थपूर्ण प्राणी समझ सके। इस तरह की आवश्यकता की उत्पत्ति प्रकृति के साथ व्यक्ति का मुख्य संबंध के क्षुब्ध होने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। इस तरह की क्षुब्धता या घाटा के कारण व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ संबंधों में नया आधार खोजता है। अन्य व्यक्तियों के साथ भाई-चारे का संबंध स्थापित करना इस तरह की आवश्यकता का एक उत्तम उदाहरण है।

4. पहचान की आवश्यकता -

इस आवश्यकता में व्यक्ति अपनी पहचान एक अपूर्व व्यक्ति के रूप में बनाकर रखना चाहता है। इस तरह की पहचान बनाये रखने के ख्याल से सर्जनात्मक तथा उत्पादक व्यक्ति अपनी क्षमता को पूर्णता के स्तर तक विकसित करने की कोशिश करता है या वह किसी समूह या धर्म के साथ पूर्णतः अनुपालन दिखाने की कोशिश करता है ताकि उसकी पहचान स्वतंत्र रूप से बनी रहीं।

5. उन्मुखता प्रारूप की आवश्यकता -

इस तरह की आवश्यकता में व्यक्ति अपने आप एवं दूसरों के प्रति एक ऐसी उन्मुखता विकसित करने की कोशिश करता है जिसमें उसकी एक सही एवं वास्तविक छवि उभर सके। इस तरह की उन्मुखता प्रारूप यौक्तिक या अयौक्तिक दोनों तरह के विचारों पर आधारित होता है। यौक्तिक उन्मुखता प्रारूप होने पर वास्तविकता का एक वस्तुनिष्ठ प्रत्यक्षण व्यक्ति करता है तथा अयौक्तिक उन्मुखता प्रारूप होने पर व्यक्ति को पर्यावरण का एक आत्मनिष्ठ प्रत्यक्षण होता है जिससे उसका संबंध वास्तविकता से काफी कम होने लगता है।

6. उत्तेजन आवश्यकता -

इस आवश्यकता से तात्पर्य बाह्य वातावरण को इतना उत्तेजक बनाये रखने से होता है जिसमें व्यक्ति अधिक एवं सतर्क होकर कार्य कर सके। मानव मस्तिष्क को निष्पादन के शीर्ष स्तर को बनाये रखने के लिए एक सतत बाह्य उत्तेजन की जरूरत होती है। बिना इस तरह के उत्तेजन के व्यक्ति के लिए अपने इर्द-गिर्द के वातावरण के साथ सम्पूर्ण आवेष्टन बनाये रखना संभव नहीं है।

बाल्यावस्था में व्यक्तित्व का विकास-

फ्रॉम का मत था कि जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसमें स्वतंत्रता तथा स्वायतता का भाव भी मजबूत होता जाता है और जब वह अपने माता-पिता के संबंधों पर निर्भरता कम दिखाता है, तो उनमें असुरक्षा, निःसहायता तथा अकेलापन का भाव विकसित होता है। सच्चाई यह है कि बच्चा कई तरह के प्रक्रमों का उपयोग करके बढ़ती हुई स्वतंत्रता से अपने आप को मुक्त करना चाहता है ताकि उसका संबंध सुरक्षा के साथ बना रहे। बच्चा

कौन-सा प्रक्रम का उपयोग करेगा वह माता-पिता तथा बच्चा के बीच में हुई अन्तःक्रिया पर निर्भर करता है। इस तरह की अन्तरवैयक्तिक संबंधता के तीन प्रकार होते हैं-

1. सहजीवी संबद्धता
2. प्रत्याहार/विध्वंसता
3. प्यार

1. सहजीवी संबद्धता-

इस तरह की संबद्धता में व्यक्ति को कभी भी स्वतंत्रता की अवस्था की प्राप्ति नहीं होती है और वह दूसरों का विशेषकर माता-पिता पर निर्भर रह कर अकेलापन तथा असुरक्षा के भाव से पलायन करता है।

2. प्रत्याहार/विध्वंसता-

इस तरह के बाल्यावस्था प्रक्रम में व्यक्ति दूसरों से अपने आप को दूर रखता है। बच्चा इस प्रक्रम को तब अपनाता हैजब उसके माता-पिता उसके प्रति तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चा अपने आप को उनसे दूर रखता है।

3. प्यार-

इस तरह के अन्तःक्रिया में माता-पिता बच्चों को पर्याप्त स्नेह देते हैं तथा सुरक्षा एवं उत्तरदायित्व के बीच उचित संतुलन बनाये रखने की भरपूर कोशिश करते हैं। इस तरह की अन्तःक्रियाओं द्वारा बच्चों के आत्मन् को विकसित होने का माता-पिता द्वारा सबसे उत्तम अवसर प्रदान किया जाता है।

व्यक्तित्व प्रकार-

फ्रॉम के मतानुसार चारित्रिक शीलगुण सभी तरह के व्यवहार के निर्धारक होते हैं और एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने आप को वातावरण की वस्तुओं या व्यक्तियों के साथ संबंध स्थापित करता है। इस तरह से व्यक्ति का व्यक्तित्व या चरित्र ऐसे सभी शीलगुणों का एक मिश्रण होता है। उन्होंने व्यक्तित्व शीलगुणों को दो मुख्य भागों में बाँटा है-उत्पादक शीलगुण तथा अनुत्पादक शीलगुण। उत्पादक शीलगुण वैसे शीलगुणों को कहा जाता है जिसे व्यक्तित्व विकास के लिए उपयुक्त एवं आदर्श माना जाता है। अनुत्पादक शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जिससे व्यक्ति के अस्वस्थ्यकर विकास का पता चलता है। इन दोनों शीलगुणों के आधार पर उन्होंने व्यक्तित्व के दो प्रकारों का वर्णन किया है-

1. उत्पादक व्यक्तित्व प्रकार-

ऐसा व्यक्तित्व प्रकार एक आदर्श व्यक्तित्व होता है। इसमें व्यक्ति के सभी तरह की अनुभूतियों का समावेश होता है और इसमें व्यक्ति अपने भीतर छिपे अन्तःशक्ति की पूर्ण पहचान कर उसके अनुरूप कार्य करने की प्रेरणा दिखलाता है। फ्रॉम ने इस तरह के व्यक्तित्व प्रकार को सर्जनात्मकता से भिन्न माना है तथा कहा है कि यह एक ऐसा प्रकार है जिसे सभी व्यक्ति विकसित कर सकते हैं क्योंकि इसका उद्देश्य आत्मन् का विकास होता है।

2. अनुत्पादक व्यक्तित्व प्रकार-

अनुत्पादक व्यक्तित्व प्रकार एक तरह का अवांछित व्यक्तित्व प्रकार है जिसे फ्रॉम ने निम्नांकित चार भागों में बाँटा है-

क. ग्रहणशील प्रकार-

इस तरह के व्यक्ति हमेशा दूसरों से मदद की उम्मीद रखते हैं ऐसे व्यक्ति दूसरों से स्नेह, अनुराग, प्यार आदि को पाने की उम्मीद तो अवश्य रखते हैं। परंतु जब उन्हें दूसरों को स्नेह तथा अनुराग देने की बारी आती है तो मौके से मुकर जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को जब दूसरों से प्रत्याशित लाभ नहीं होता है, तो वे काफी चिन्तित नजर आते हैं। ऐसे लोगों की विशेषताएँ फ्रायड के मुख-अन्मुखी व्यक्तित्व तथा हार्नी के फरियादी व्यक्तित्व प्रकार से मिलती-जुलती हैं।

ख. जमाखोर प्रकार-

ऐसे लोग स्वार्थी, क्रमबद्ध तथा पंडिताऊ प्रकृति के होते हैं। इन्हें बाहरी दुनिया धमकीपूर्ण लगता है और जब वे कुछ बचा लेते हैं तथा अपने पास कुछ जमाकर रख लेते हैं, तो उनमें सुरक्षा का भाव विकसित हो जाता है। ऐसे लोगों में अपने भावों-संवेगों तथा भौतिक सामग्रियों में बाध्यकर क्रमबद्वता देखने की तीव्र इच्छा होती है। ऐसे लोगों में व्यक्तित्व की विशेषताएँ बहुत कुछ फ्रायड द्वारा प्रतिपादित गुदा धारक प्रकार तथा हार्नी ,द्वारा प्रतिपादित असंबंद्ध प्रकार वाले व्यक्तित्व की विशेषताओं से मिलता-जुलता है।

ग. शोषक प्रकार-

ऐसे लोग अपने बल एवं धूर्तता के आधार पर किसी चीज को हासिल कर लेने में बहादुर होते हैं। इनमें दूसरों के प्रति आक्रमकता कूट-कूटकर भरी होती है। ऐसे लोगों की व्यक्तित्व विशेषताएँ फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मुख-आक्रामक प्रकार तथा हार्नी द्वारा प्रतिपादित आक्रमक प्रकार की विशेषताओं से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

घ. बाजारू प्रकार-

ऐसे लोग अपनी सफलता इस बात से आँकते हैं कि वे अपने आपको या अपनी सेवा को कितनी अधिक-से-अधिक बेच सकते हैं। सचमुच में, वे अपने आप को एक ऐसा वस्तु के समान समझते हैं जिसे बाजार में बेचा या खरीदा जा सकता है।

उपर्युक्त प्रमुख व्यक्तित्व प्रकारों के अलावा बाद में फ्रॉम ने दो जो अन्य व्यक्तित्व प्रकारों का भी वर्णन किया- शावकामुक प्रकार तथा जीवकामुक प्रकार। शवकामुक प्रकार व्यक्तित्व में बर्बादी, मृत्यु, पतन आदि से विशेष लगाव होता है तथा ऐसे लोगों में इन सब कार्यो से विशेष आनन्द आता है। फ्रॉम के अनुसार एडोल्फ हिटलर का व्यक्तित्व इस श्रेणी के व्यक्तित्व का उत्तम नमूना है। इस तरह के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को भूत पर अधिक विशवास होता है तथा भविष्य में इनका कोई विशवास नहीं होता है। ऐसे लोग एकान्तप्रिय, लोगों से दूरी रखने वाले तथा भाव शून्य प्रकृति के होते हैं। ये लोग हत्या, खून, लाश, खोपड़ी आदि का स्पप्नचित्र बनाते रहते हैं। ठीक इस तरह के व्यक्तित्व प्रकार के विपरीत जीव कामुक प्रकार होता है जिन्हें अपनी जिन्दगी से प्यार होता है

तथा इनमें व,र्द्धन, सृजन तथा निर्माण आदि के प्रति विशेष उन्मुखता होती है। ऐसे लोग दूसरों को बल दिखाकर, डरा-धमकाकर प्रभावित नहीं करते हैं बल्कि उन्हें प्यार एवं स्नेह से प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोग अपने आत्मन् तथा अन्य लोगों के विकास एवं वर्द्धन पर अधिक बल डालते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि फ्रॉम ने व्यक्तित्व के विकास पर समाज एवं संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों को महत्वपूर्ण माना है। उनका यह भी मत था कि प्रत्येक व्यक्ति को बाल्यावस्था में इस ढंग से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे समाज के माँगों के अनुरूप व्यवहार कर सके। उन्होंने यह भी कहा कि जो समाज व्यक्ति की जरूरतों को पूरा नहीं करता है, वह बीमार समाज होता है और तुरंत ही उसे प्रतिस्थापित कर देना चाहिए। ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति की आवश्यकता ओं की पूर्ति होती है तथा जिनसे उत्पादक उन्मुखता बढ़ती है, को उन्होंने मानवतावादी सामुदायिक समाजवादिता कहा है।

फ्रॉम द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के कुछ गुण तथा अवगुण है। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. फ्रॉम द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह बतलाया गया है कि इसमें व्यक्तित्व के निर्धारक के रूप में सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कारकों की स्वतंत्र पहचान की गयी है।
2. व्यक्तित्व के प्रति फ्रॉम का जो दृष्टिकोण है उसका संदर्भ काफी विस्तृत है जिससे व्यक्तित्व की एक समग्र व्याख्या संभव हो पायी है। वे सिर्फ मनोविशलेषक नहीं थे बल्कि अन्य शास्त्रों जैसे-इतिहास, समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र से भी तथ्यों का संग्रहण करके व्यक्तित्व में उसका उचित उपयोग किये हैं।

इन गुणों के बावजूद उनके सिद्धान्तों के कुछ अवगुण हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. उनके सिद्धान्त की सबसे प्रमुख कमी यह है कि उसमें तथ्यों के समर्थन में कोई मजबूत एवं ठोस वैज्ञानिक तथा आनुभाविक समर्थन नहीं हैं।
2. कुछ आलोचकों का मत है कि फ्रॉम के व्यक्तित्व सिद्धान्त में नवीनता नहीं है। इसमें फ्रायड, युंग एवं हार्नी के संप्रत्ययों का संदर्भ तो यदा-कदा मिलता है परंतु आधुनिक मानवतावादी संप्रत्ययों को सम्मिलित नहीं किया गया है।
3. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि फ्रॉम द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में यथार्यता की कमी है तथा अस्पष्टता की अधिकता है। फलतः ऐसे संप्रत्ययों की वैधता की जाँच नहीं हो पायी है। इनके द्वारा प्रतिपादित विभिन्न तरह के व्यक्तित्व प्रकारों का संप्रत्यय ऐसे ही संप्रत्यय के उदाहरण है।
4. मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि फ्रॉम का विचार आदर्शवादी ज्यादा है व्यावहारिक कम। फलस्वरूप उनका सिद्धान्त अवास्तविक अधिक लगता है। यही कारण है कि इन आलोचकों ने उन्हें मनोवैज्ञानिक कम तथा दार्शनिक अधिक माना है।

इन आलोचनाओं के बावजूद फ्रॉम के योगदानों का अपना विशिष्ट महत्व है। बहुत कम ही ऐसे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने फ्रॉम के समान मानव के व्यवहारों एवं व्यक्तित्व के प्रकारों की मौलिक व्याख्या की है।

7.7 बन्डूराका व्यक्तित्व सिद्धान्त-

बन्डूराका व्यक्तित्व सिद्धान्त स्कीनर के व्यवहारवादी सिद्धान्त का ही विस्तृत रूप है जिसमें वैसे आन्तरिक संज्ञानात्मक चरों को भी महत्व दिया गया है जो उद्धीपक तथा अनुक्रिया के बीच मध्यस्थता करते हैं, जैसे- आवश्यकता, प्रणोद, इच्छा, संवेग इत्यादि। यानी, बन्डूराने अपने सामाजिक-सीखना सि,द्धान्त में सीखने के महत्वपूर्ण नियमों को तो महत्व दिया ही है, साथ-ही व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमताओं को भी इसमें काफी महत्व दिया गया है।

इसलिए व्यक्तित्व के सामाजिक-सीखना सिद्धान्त को संज्ञानात्मक सीखना सिद्धान्त की भी संज्ञा दी गयी है। व्यक्तित्व के सामाजिक सीखना सि,द्धान्त में तीन मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को रखा गया है-अलबर्ट बान्दुरा, मार्टिन सेलिगमैन तथा वाल्टर मिशेल। इन तीनों में अलबर्ट बन्डूराके सिद्धान्त को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया है तथा इस सिद्धान्त ने व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में अन्य सामाजिक-सीखना सिद्वान्त की तुलना में अधिक शोध करने के लिए मनोवैज्ञानिकों को आकर्षित किया है।

बन्डूराद्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व का सिद्धान्त अन्य सामाजिक-सीखना सिद्धान्तों के अनुरूप निम्नांकित दो मुख्य प्रस्तावनाओं पर आधारित है-

1. अधिकतर मानव व्यवहार अर्जित होते हैं, अर्थात् व्यक्ति उन्हें अपने जीवन-काल में सीखता है।
2. मानव जीवन व व्यवहार के सम्पोषण एवं विकास की व्याख्या करने के लिए सीखने का नियम पर्याप्त है।

बाण्डुरा के सामाजिक-सीखना सिद्धान्त में मानव स्वभाव के कुछ खास-खास पूर्वकल्पनाओं जैसे-विवेकपूर्णता, पर्यावरणीयता, परिवर्तनशीलता तथा ज्ञेयता आदि पर अधिक बल डाला गया है परन्तु अधिभूतवाद जैसी पूर्वकल्पना पर नाम मात्र का बल डाला गया है। समस्थिति-विषमस्थिति की पूर्वकल्पना को बाण्डुरा सिद्धान्त में महत्व नहीं दिया गया है। बाण्डुरा के सामाजिक-सीखना के सिद्धान्त को निम्नांकित 6 प्रमुख भागों में बाँट कर प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. अन्योन्यनिर्धार्यता का संप्रत्यय
2. आत्म-तंत्र
3. प्रेरणा
4. मॉडलिंग: प्रेक्षण द्वारा सीखना
5. प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रियाएँ
6. मापन एवं शोध

अन्योन्यनिर्धार्यता का संप्रत्यय-

बन्डूराके सिद्धान्त में अन्योन्यनिर्धार्यता का संप्रत्यय एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। इस संप्रत्यय के माध्यम से बन्डूरायह स्पष्ट करना चाहते थे कि मानव व्यवहार संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक तथा पर्यावरणी निर्धारकों के बीच

सतत अन्योन्य अन्तःक्रिया का एक प्रतिफल होता है। इस तरह के अन्योन्य अन्तःक्रिया की प्रक्रिया को बन्डूराने अन्योन्य निर्धार्य्ता की संज्ञा दी है। इस संप्रत्यय के अनुसार मानव क्रिया में तीन कारकों का परस्पर प्रभाव हमेशा पड़ता है। वे तीन कारक हैं-

1. बाह्य वातावरण
2. संज्ञानात्मक एवं आन्तरिक घटनाएँ
3. व्यवहार

इन तीनों के अन्योन्य प्रभावों को ऊपर के चित्र में दिखलाया गया है चित्र से स्पष्ट है कि तीनों कारक त्रिभुज के प्रत्येक कोना में एक-दूसरे से संबंद्ध एवं अन्तःनिर्भर दिखलाये गए हैं। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि इन तीन तत्वों में से कोई भी एक तत्व या कारक अन्य दोनों को प्रभावित कर सकता है। जैसे, किसी व्यक्ति का यह विशवास कि वह क्या कर सकता है और यदि वह अमुक कार्य करे तो उसका क्या परिणाम होगा (संज्ञानात्मक कारक) से उसका वास्तविक व्यवहार प्रभावित होता है और फिर उसके वास्तविक व्यवहार से उसका वातावरण प्रभावित हो जात है जो बाद में चलकर व्यक्ति के प्रत्याशा को काफी हद तक प्रभावित कर सकता है।

अन्योन्य निर्धार्यता के संप्रत्यय को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है। उदाहरण के रूप में टेलीविजन पर जो दिखलाया जाने वाला कार्यक्रम है वह तो सभी व्यक्तियों के लिए एक ही समान होता है। परन्तु कोई व्यक्ति विशेष के लिए यह कार्यक्रम अलग हो सकता है जो यह इस पर निर्भर करता है कि वह क्या देखना पसंद करता है। दर्शकों की पसंद से भविष्य में दिखलाये जाने वाले कार्यक्रम प्रभावित होते हैं क्योंकि इनके पसंद के अनुरूप ही कार्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता महसूस की जाती है। इसके अलावा कार्यक्रम को तैयार करने में लगा धन तथा अन्य जरूरतों से भी यह प्रभावित होता है कि भविष्य में दर्शकों के लिए कैसा कार्यक्रम तैयार होगा। इस तरह से दिखलाया गया कार्यक्रम अंशातः दर्शकों के पसन्द को प्रभावित करता है। इस उदाहरण में बाण्डुरा के अनुसार सभी तीन कारक दर्शक का पसंद, टेलीविजन देखने का व्यवहार तथा दिखलाया गया कार्यक्रम परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं।

आत्म-तंत्र-

अन्योन्य निर्धार्यता के संप्रत्यय से स्पष्ट है कि प्रत्येक चीज परस्पर ढंग से अन्तःक्रियात्मक होते हैं। प्रशन यह उठता है कि क्या इनका कोई केन्द्र बिन्दु भी होता है? बन्डूराने इस प्रशन का उत्तर 'हाँ' के रूप में दिया है और वह केन्द्र बिन्दु है-आत्म-तंत्र।

बन्डूराने यह स्पष्ट किया कि आत्म-तंत्र कोई मानसिक एजेन्ट नहीं है जिससे व्यवहारों का नियंत्रण होता है बल्कि यह एक ऐसा संज्ञानात्मक संरचना है जो व्यक्ति को एक संदर्भ प्रक्रम प्रदान तो करता ही है साथ-ही-साथ प्रत्यक्षण, मूल्यांकन एवं व्यवहारों के संचालन के लिए रास्ता भी प्रशस्त करता है। आत्म-तंत्र का संबंध चिन्तन तथा प्रत्यक्षण से विशेष रूप से होता है। आत्म-तंत्र का एक महत्वपूर्ण कार्य आत्म-नियमन है। आत्म-नियमन से तात्पर्य चिन्तन द्वारा अपने वातावरण में जोड़-तोड़ करने तथा अपने कार्यो के परिणामों को स्पष्ट करने की क्षमता से होता है। आत्म-नियमन व्यवहार में तीन प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं-

क. आत्म-प्रेक्षण

ख. निर्णय प्रक्रिया

ग. आत्म-अनुक्रिया

आत्म-प्रेक्षण-

आत्म-प्रेक्षण में व्यक्ति अपने आप को कुछ खास-खास कारकों जैसे निष्पादन के गुण, मौलिकता आदि के रूप में प्रेक्षण करता है। निर्णयन प्रक्रिया में व्यक्ति अपने व्यवहार को वैयक्तिक मानदंडों के रूप में तथा दूसरों के साथ तुलना करके किसी निर्णय पर पहुँचता है। आत्म-अनुक्रिया में व्यक्ति पहले किये गये प्रेक्षणों एवं निर्णयों के आधार पर अपने आप को धनात्मक एवं ऋणात्मक ढंग से मूल्यांकन करता है और उसी के संदर्भ में अपने आप को पुरस्कृत करता है या दंड देता है।

आत्म-तंत्र का एक महत्वपूर्ण तत्व आत्म-सामर्थ्य है। बन्डूराके अनुसार आत्म-सामर्थ्य से तात्पर्य ऐसे आत्म-प्रत्यक्षण से होता है जिसमें व्यक्ति यह अनुमान लगाता है कि वह किसी दी हुई परिस्थिति में कितने प्रभावकारी ढंग से कार्य कर सकता है। दूसरे शब्दों में, आत्म-सामर्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा किये गये इस उम्मीद या प्रत्याशा से होता है कि वह अमुक परिस्थिति में कितना प्रभावकारी ढंग से कार्य कर सकता है। ऐसे प्रत्याषा के दो प्रकार हैं-सामर्थ्य प्रत्याशा तथा परिणाम प्रत्याशा। सामर्थ्य प्रत्याशा से तात्पर्य व्यक्ति में उस तरह के विशवास से होता है जिसके सहारे वह यह उम्मीद करता है कि किसी खास तरह के परिणाम की प्राप्ति के लिए जो व्यवहार या कार्य की जरूरत है, उसे वह सफलतापूर्वक कर सकता है। जैसे यदि कोई यह विशवास करता है कि वर्ग में दिये गए समस्या का समाधान करने के लिए उसके पास पर्याप्त कौशल है, तो कहा जाएगा कि उसमें सामर्थ्य प्रत्याशा अधिक है। परिणाम प्रत्याशा से तात्पर्य व्यक्ति के उस विशवास से होता है जिसके सहारे वह यह समझता है कि अमुक व्यवहार करने से अमुक परिणाम निशिचत रूप से मिलेंगे। जैसे, यदि छात्र वर्ग में दिये गए समस्या का समाधान कर लेता है और यह उम्मीद करता है कि उसका समाधान शत-प्रतिशत सही होगा और यदि सचमुच में ऐसा होता है, तो यह कहा जाएगा कि छात्रों में परिणाम प्रत्याशा अधिक मजबूत थे। यदि किसी व्यक्ति में सामर्थ्य प्रत्याशा ऊँचा है तथा परिणाम प्रत्याशा वास्तविक है, तो व्यक्ति कड़ी मेहनत करेगा और जब तक लक्ष्य पर पहुँच नहीं जाता है अपना प्रयास जारी रखेगा। बन्डूराके अनुसार सामर्थ्य प्रत्याशा समायोजनशीलता का एक महत्वपूर्ण भाग होता है।

प्रेरणा-

बन्डूराके लिए प्रेरणा एक संज्ञानात्मक व्याकृति यानी, कन्स्ट्रक्ट है तथा इसके दो स्रोत होते हैं-पहला स्रोत भविष्य में मिलने वाला पुनर्बलन है। इस तरह के पुनर्बलन से व्यक्ति एक खास ढंग से व्यवहार करने के लिए प्रेरित होता है। दूसरा स्रोत एक निश्चित लक्ष्य या निष्पादन के वांछित स्तर को निर्धारित करके उसी के आलोक में अपने निष्पादन का मूल्यांकन करता है। इससे भी व्यक्ति उस वांछित स्तर के अनुरूप निष्पादन करने के लिए प्रेरित होता है। बन्डूरातथा शुन्क ने इस सम्बन्ध में एक प्रयोग भी किया है। इस अध्ययन के परिणाम में यह देखा गया कि

गणितीय कौशलों में कमजोर बच्चे जब अपने लिये निश्चित किये गए छोटे-छोटे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं तो उनका निष्पादन उस परिस्थिति की तुलना में काफी उन्नत हो जाता है जब उसके द्वारा निर्धारित किये गए लक्ष्य सुदूर थे तथा जिन पर पहुंचने में उसे अधिक समय लगता था। इस प्रयोग के आधार पर बन्डूरातथा शुन्क द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि व्यक्ति जब अपने व्यवहार पर सतत मनन करता है तथा अपने व्यवहारों का मूल्यांकन करते रहता है, तो इससे एक तरह की आत्म प्रेरणा मिलती है और वह पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप और अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है।

मॉडलिंग: प्रेक्षण द्वारा सीखना

बन्डूराका मत है कि व्यक्ति दूसरों (या मॉडल) के व्यवहारों का प्रेक्षण करके तथा उसे दोहराकर वैसा ही व्यवहार करना सीख लेता है। इसे ही मॉडलिंग की संज्ञा दी जाती है। इस सिलसिले में बन्डूरारॉस तथा रॉस ने एक लोकप्रिय प्रयोग किया है। इस प्रयोग में स्कूल के बच्चों को वयस्क द्वारा तीन से चार फीट की एक गुड़िया जिसे बौब गुड़िया का नाम दिया गया था, को उछालते हुए, मारते हुए एवं उसके प्रति आक्रात्मकता करते हुए दिखलाया गया है। जब इन बच्चों को उसी गुड़िया के साथ अकेला छोड़ दिया गया तो देखा गया कि उनके द्वारा भी वैसा ही आक्रामक व्यवहार उस गुड़िया के प्रति दिखलाया गया। बाद के प्रयोगों में जब बच्चों के टेलीविजन पर ऐसे ही आक्रामक दृश्य दिखलाये गए, तो उनका व्यवहार उन बच्चों की तुलना में अधिक आक्रामक हो गए जिन्हें ऐसे दृश्य टेलीविजन पर नहीं दिखलाये गए थे। बन्डूराद्वारा किये गए शोधों के आधार पर मॉडल के निम्नांकित तीन कारकों को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया गया है जिसमें मॉडलिंग प्रभावित होता है:-

मॉडल की विशेषताएं

प्रेक्षक की विशेषताएं

व्यवहार के पुरस्कार परिणाम

मॉडल की विशेषताएं-

बन्डूराने मॉडल के कुछ ऐसी विशेषताओं का वर्णन किया है जिनसे मॉडलिंग की प्रक्रिया प्रभावित होती है अर्थात जिसे मॉडल के व्यवहारों के अनुकरण करने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। इन विशेषताओं में मॉडल तथा प्रयोज्य के बीच समानता प्रयोज्य के अनुपात में मॉडल के उम्र एवं यौन, मॉडल का स्तर एवं प्रतिष्ठा तथा मॉडल द्वारा किया गया व्यवहार आदि प्रमुख हैं। जब प्रयोज्य एवं मॉडल के बीच समानता घटती है, तो इससे मॉडलिंग में कमी आती है। प्रयोज्य उन मॉडलों से ज्यादा प्रभावित होते हैं जो समान उम्र एवं यौन के होते हैं।उसी तरह से जब मॉडल के रूप में किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा अमुक व्यवहार करते दिखलाया जाता है, तो ऐसी परिस्थिति में प्रयोज्य उसके व्यवहारों का नकल तेजी से करते हैं। अर्थात मॉडलिंग की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। जब मॉडल उसी तरह से कोई जटिल व्यवहार करता पाया जाता है, तो प्रयोज्य उसका अनुकरण साधारण व्यवहार की तुलना में कम करता है।

स्पष्ट हुआ कि मॉडल की कुछ विशेषताएं हैं जिनमें मॉडलिंग की प्रतिक्रिया तीव्र हो जाती है। जब मॉडल उसी तरह से कोई जटिल व्यवहार करता पाया जाता है, तो प्रयोज्य उसका अनुकरण साधारण व्यवहार की तुलना में कम करता है।

प्रेक्षक की विशेषताएं -

प्रेक्षक या प्रयोज्य की भी कुछ विशेषताएं होती हैं जिनसे मॉडलिंग प्रभावित होती है। जिस प्रेक्षक या दर्शक या प्रयोज्य में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान कीकमी होती है, वे उन दर्शकों या व्यक्तियों की तुलना में मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण अधिक करते हैं जिनमें आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान का भाव अधिक होता है। उसी तरह से जिन व्यक्तियों के अपने बीते दिनों में दूसरों के व्यवहारों का अनुकरण करने के लिए पुरस्कार दिया गया होता है, वे दिये गए मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण उन व्यक्तियों की तुलना में तेजी से करते हैं जिन्हें ऐसे पुरस्कार पाने का कोई अनुभव नहीं होता है।

व्यवहार का पुरस्कार परिणाम -

मॉडलिंग की प्रक्रिया मॉडल के व्यवहारों को अनुकरण करने के बाद मिलने वाले पुरस्कार पर भी निर्भर करता है। बन्डूराके अनुसार यह कारक इतना अधिक प्रभावशाली है कि इसके सामने उपुर्यक्त दोनों कारकों या विशेषताओं का महत्व गौण हो जाता है। जैसे, बन्डूराका मत है कि व्यक्ति निश्चित रूप से एक प्रतिष्ठित मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण करता है परन्तु यदि इस अनुकरणित व्यवहार के बाद व्यक्ति को पुरस्कार नहीं मिलता है या कोई धनात्मक लाभ नहीं होता है, तो प्रतिष्ठित मॉडल का भी मॉडलिंग पर कोई प्रभाव नहीं रह जाता है।

प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रियाएं-

बन्डूराने अपने सिद्धान्त में मॉडलिंग को प्रभावित करने वाले कारकों की सिर्फ पहचान ही नहीं की है बल्कि प्रेक्षणात्मक सीखना के स्वरूप का विश्लेषण भी किया है और पाया कि इस तरह का सीखना निम्नांकित चार अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रित होती है-

अवधान-सम्बन्धी प्रक्रियाएं

धारणात्मक प्रक्रियाएं

पुनरूत्पादक प्रक्रियाएं

प्रेरणात्मक प्रक्रियाएं

अवधान-सम्बन्धी प्रक्रियाएं-

मॉडलिंग की सबसे पहली महत्वपूर्ण प्रक्रिया यह है कि प्रयोज्य मॉडल पर ठीक से ध्यान दें। मॉडल का एक मात्र प्रत्यक्षण कर लेने से ही इस बात की गारंटी नहीं हो जाती है कि मॉडलिंग होगा ही। सच्चाई यह है कि जब तक व्यक्ति मॉडल के संगत तथा उपयुक्त संकेत पर सही-सहीं ध्यान नहीं देगा तथा उपयुक्त उद्दीपक घटनाओं का ठीक ढंग से चयन नहीं करेगा, तब तक मॉडलिंग की प्रक्रिया आरम्भ नहीं होगी। व्यक्ति द्वारा मॉडल पर ध्यान दिया जाना कई बातों पर निर्भर करता है जिसमें मॉडल की उम्र, यौन, प्रतिष्ठा आदि प्रधान है। यदि मॉडल का उम्र एवं

यौन व्यक्ति के उम्र एवं यौन से समान है तथा मॉडल की प्रतिष्ठा व्यक्ति की नजर से अधिक है तो व्यक्ति सामान्यतः मॉडल पर अधिक ध्यान देता पाया जाता है।

धारणात्मक प्रक्रियाएँ-

प्रेक्षणात्मक सीखना की दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया धारणा से संबंद्व है। प्रेक्षणात्मक सीखना के लिए यह आवशयक है कि व्यक्ति मॉडल के सभी सार्थक व्यवहारों को याद रखे या उसे धारण कर रखे। ऐसा नहीं करने से प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं होगी। मॉडल के सार्थक व्यवहार को धारण कर रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति उसे कोडित करे तथा संकेत रूप में चित्रित करे। सांकेतिक चित्रण के इस आन्तरिक प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण तंत्र बन्डूराद्वारा बतलाये गए हैं-प्रतीकात्मक तंत्र तथा शाब्दिक तंत्र। बन्डूराका मत है कि जब व्यक्ति मॉडल पर ध्यान से देखता है, तो वह उसके महत्वपूर्ण पहलुओं की एक पुनः प्राप्यणीय प्रतिमा मन में बना लेता है जो मॉडल के संबंधित व्यवहार को बाद में याद करने में मद्द करता है। शाब्दिक तंत्र प्रतिमा निर्णय के समान होता है और इसमें जो कुछ भी व्यक्ति प्रेक्षण करता है उसका एक तरह से शाब्दिक कोडिंग होता है। मूल प्रेक्षण के दौरान व्यक्ति अपने-आप से यह वर्णन करता है कि मॉडल क्या कर रहा है। ये शाब्दिक वर्णन एक तरह का कोड बन जाते हैं जिसे बाद में व्यक्ति बिना स्पष्ट व्यवहार किये ही मन-ही-मन आसानी से पूर्वाभ्यास कर लेता है।

पुनरूत्पादक क्रियाएँ-

बन्डूराका पुनरूत्पादक क्रियाओं से तात्पर्य सांकेतिक चित्रण को क्रिया या व्यवहार में परिणत करने से होता है। बन्डूराका मत है कि मॉडल के व्यवहार को ध्यान में रखने, उसका सांवेगिक चित्रण कर लेने तथा मन-ही-मन उसका पुनर्भ्यास कर लेने मात्र से ही व्यक्ति उस व्यवहार को सही-सही नहीं कर पाता है। यह बात विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक स्पष्ट हो जाती है जहाँ व्यक्ति को जटिल एवं कौशल व्यवहार सीखना होता है। इस तरह की परिस्थिति में मॉडल के व्यवहारों का क्रिया में परिणत करके पुनर्भ्यास करना आवशयक हो जाता है। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाए कि कोई व्यक्ति कार चलाना सीख रहा है। कार चलाने में जो मौलिक क्रियाएँ हैं उसे तो व्यक्ति दूसरों को (मॉडल) कार चलाते देखकर सीख सकता है तथा मॉडल के व्यवहार का सांकेतिक चित्रण को व्यक्ति मन-ही-मन कई बार दोहरा सकता है लेकिन इसका वास्तविक व्यवहार में परिणत किया जाना अर्थात् कार चलाना प्रारंभ में काफी फूहड़ एवं स्थूल होगा। इसके लिए मात्र प्रेक्षण पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए कार चलाने का वास्तविक अभ्यास तथा इस व्यवहार की परिशुद्वता से मिलने वाला पर्याप्त पुनर्निवेशन अनिवार्य है।

प्रेरणात्मक प्रक्रियाएँ-

प्रेक्षणात्मक सीखना की यह चौथी प्रक्रिया है जिसका संबंध प्रेरणात्मक प्रक्रियाओं से है। चाहे व्यक्ति मॉडल के व्यवहार को कितना ही ध्यानपूर्वक क्यों न देखे और उसे धारण करके रखे तथा उसमें व्यवहार को करने की क्षमता चाहे कितनी भी अधिक क्यों न हो उस व्यवहार को तब तक ठीक ढंग से नहीं कर पाता है जब तक कि वह उसे करने के लिये प्रेरित न हो या उसे करने के पर्याप्त प्रोत्साहन या पुनर्बलन नहीं दिया गया हो। जब पर्याप्त

पुनर्बलन दिया जाता है तो मॉडलिंग या प्रेक्षणात्मक सीखना को व्यक्ति तुरन्त ही कार्य में परिणत कर लेता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि उचित प्रोत्साहन या उचित पुनर्बलन से व्यवहार का वास्तविक निष्पादन प्रभावित नहीं होता है बल्कि उससे अवधानात्मक एवं धारणात्मक प्रक्रियाएँ भी प्रभावित होती हैं।
बन्डूराके अनुसार ऐसे पुनर्बलन दो प्रकार के होते हैं- स्थानापन्न पुनर्बलन तथा आत्म पुनर्बलन। जब व्यक्ति यह देखता है कि मॉडलद्वारा अमुक व्यवहार करने पर उसे धनात्मक पुनर्बलन मिलता है, तो इस तरह के पुनर्बलित व्यवहार को मात्र देखकर वह भी ऐसा व्यवहार करना सीख लेता है। इस तरह के पुनर्बलन को स्थानापन्न पुनर्बलन कहा जाता है। जब व्यक्ति को किसी कार्य के करने के आत्म-संतुष्टि एवं गर्व महसूस होता है, तो उसे आत्म-पुनर्बलन की संज्ञा दी जाती है। इन दोनों तरह के पुनर्बलन का महत्व प्रेक्षणात्मक सीखना में काफी अधिक बतलाया गया है।

मापन एवं शोध-

बन्डूराने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व मापन के लोकप्रिय प्रविधियों जैसे-स्वतंत्र साहचर्य, स्वप्न विशलेषण या प्रेक्षण प्रविधि का प्रयोग नहीं किया है। उनके अनुसार व्यवहारात्मक तथा संज्ञानात्मक चरों का मापन महत्वपूर्ण है। संज्ञानात्मक चरों का मापन के लिए आत्म-प्रतिवेदन प्रविधियों की सिफारिश की गयी है। जैसे आत्मसामर्थ्यता का मापन उन्होंने कई व्यवहारात्मक परिहार्य परीक्षण जिसमें 29 एकांश थे पर रेटिंग्स करवा कर किया। छात्रों में परीक्षण दुशिंचता को मापने के लिए एक व्यक्तित्व परीक्षण का निर्माण किया था। इसके अलावा मॉडलिंग अध्ययन में बच्चों के व्यवहारों का अध्ययन प्रत्यक्ष प्रेक्षण तथा दैहिक मापों के भी आधार पर किया गया।
जहां तक शोध का प्रश्न है बन्डूराने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में प्रयोगशाला प्रयोग शोध पर अधिक बल डाला है उन्होंने मांडलिंग के अध्ययन में विशेषकर टेलीविजन का आक्रामक व्यवहार की उत्पत्ति में पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन में प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में प्रयोज्यों को बांटकर अध्ययन करने में विशेष अभिरूचि दिखलायी है।
बन्डूराके व्यक्तित्व सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

1. सामाजिक-सीखना सिद्धान्त काफी वस्तुनिष्ठ सिद्धान्त है तथा इसे प्रयोगशाला विधि के लिए काफी उपयुक्त माना गया है। बन्डूराके सिद्धान्त पर कई आनुभाविक शोध किये गए हैं जिनसे इस सिद्धान्त को काफी समर्थन मिला है।
2. बन्डूराके सामाजिक सीखना सिद्धान्त को अधिकतर शोध मनोवैज्ञानिकों एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा बीसवीं शताब्दी का व्यक्तित्व के अध्ययन एवं उपचार में अधिक उत्तेजनपूर्ण एवं रचनात्मक क्रान्ति माना है।
3. बन्डूराके प्रेरेक्षणात्मक सीखना तथा उसका व्युत्पन्न व्यवहार परिमार्जन को प्रयोगशाला परिस्थिति से अलग करके दिन-प्रतिदिन की वास्तविक समस्याओं को सुलझाने में लोगों ने उसे काफी उपयोगी बतलाया है।

4. बन्डूराके सामाजिक सीखना सिद्धान्त से लोगों ने कई संगत एवं महत्वपूर्ण मूल्यांकन प्रविधि ज्ञात करने में सफल हुए हैं। इनके सिद्धान्त से निकाली नयी मॉडलिंग की प्रविधि एक ऐसी ही प्रविधि है जो मनोविज्ञान के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुई है।

इन गुणों के बावजूद सामाजिक सीखना सिद्धान्त के कुछ अवगुण हैं जो निम्नांकित हैं -

1. आलोचकों का मत है कि बन्डूराका सामाजिक सीखना सिद्धान्त व्यक्तित्व के सिर्फ परिधीय पहलू की व्याख्या करता है। इन आलोचकों का मत है कि इस सिद्धान्त में मात्र स्पष्ट व्यवहार पर बल डालकर मानव व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे, चेतन एवं अचेतन प्रेरणात्मक बलों की पूर्णरूपेण उपेक्षा की गयी है। फलतः इस सिद्धान्त में जो व्यक्तित्व की व्याख्या की गयी है उसे पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।

2. स्कीनर जैसे व्यवहारवादियों का कहना है कि बन्डूराने अपने सिद्धान्त में जिस संज्ञानात्मक चरों को सम्मिलित किया है, वह अनावश्यक होने के साथ-ही-साथ अस्पष्ट स्वरूप के हैं जिन्हें आसानी से मापा नहीं जा सकता है। इन चरों में चूंकि उतनी वस्तुनिष्ठता नहीं है जितनी कि स्पष्ट व्यवहार में है, अतः इसे अधिक संगत नहीं माना जा सकता है।

3. बन्डूराने, जैसा कि कुछ आलोचकों ने कहा है, अपने सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया है कि संज्ञानात्मक चरों द्वारा व्यक्ति का व्यवहार किस तरह से प्रभावित होता है।

4. कुछ आलोचकों, जिसमें शुल्ज प्रधान हैं, का कहना है कि बन्डूराने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया है कि संवेग तथा संघर्ष किस तरह से मानव व्यवहार को दिशा-निर्देशित तथा नियंत्रित करता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद बन्डूराका सामाजिक-सीखना सिद्धान्त जिसमें संज्ञानात्मक चरों पर बल डाला गया है, व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए नए द्वार खोल रखा है जिसे कई आधुनिक मनोवैज्ञानिक एक महत्वपूर्ण योगदान समझते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व विकास पर जन्म-क्रम के प्रभाव को महत्वपूर्ण माना-

अ. बान्दुरा ब. ऐडलर

स. हार्नी द. फ्रॉम

2. व्यक्तित्व को ‘शवकामुक’ तथा ‘जीवकामुक’ प्रकार में किसने विभाजित किया-

अ. फ्रायड ब. युंग

स. हार्नी द. फ्रॉम

7.8 सार-संक्षेप-

व्यक्तित्व का सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त मानव स्वभाव की व्याख्या कुछ मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्ययों, जैसे-इच्छाशक्ति, मूल चिन्ता, स्नायविक आवश्यकता आदि तथा कुछ सामाजिक, सम्प्रत्ययों, जैसे-जीवन शैली, जन्म-क्रम, दूसरों पर नियंत्रण पाना, सत्तावादिता, सम्बद्धता आवश्यकता आदि के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास करता है।

अल्फ्रेड ऐडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया जा सकता है- व्यक्तित्व गतिकी, सामाजिक रूचि, सर्जनात्मक व्यक्तित्व, जन्मक्रम आदि।

कारेन हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त में स्त्रैण दृष्टिकोण तथा सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का पर्याप्त प्रभाव झलकता है। इनके सिद्धान्त को निम्नलिखित भागों में बांटा गया है- बाल्यावस्था की आवश्यकता, मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति, चिन्ता दूर करने के उपाय आदि।

इरिक फ्रॉम ने व्यक्तित्व की व्याख्या ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक कारकों के परिप्रेक्ष्य में की। उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया गया है-स्वतंत्रता बनाम सुरक्षाः मौलिक माननीय दुविधा, पलायन के प्रक्रम, मूल आवयकताएं, बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास तथा व्यक्तित्व प्रकार।

बन्डूराके व्यक्तित्व सिद्धान्त में सीखने के महत्वपूर्ण नियमों के साथ-साथ व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमताओं को भी काफी महत्व दिया गया है। इनके सिद्धान्त के प्रमुख भाग हैं-अन्योन्य निर्धार्यता, आत्म-तंत्र, प्रेरणा, मॉडलिंग, प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रियाएं, मापन एवं शोध।

7.9 पारिभाषिक शब्दावली-

मूल चिन्ता-बच्चों में पाया जाने वाला अकेलापन एवं निःसहायता का भाव जो विद्वेष के भाव के दमन से जुड़ा होता है।

शवकामुक व्यक्तित्व-इसमें बर्बादी, मृत्यु, पतन आदि से विशेष लगाव होता है तथा ऐसे लोगों में इन सब कार्यो से विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है।

जीव कामुक व्यक्तित्व-इन्हें अपनी जिन्दगी से प्यार होता है तथा इसमें वर्द्धन, सृजन एवं निर्माण के प्रति विशेष उन्मुखता होती है।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. ब 2. द

7.11 संदर्भ-ग्रन्थ-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-

4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality.

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कारेन हार्नी के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
2. इरिक फ्रॉम ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में किन-किन मूल आवश्यकताओं पर बल दिया है? वर्णन करें।
3. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बन्डूराके विचारों की समीक्षा करें।
4. व्यक्तित्व पर जन्म-क्रम के प्रभाव के सम्बन्ध में ऐडलर के विचारों का उल्लेख करें।

इकाई – 8 व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त (पैवलोव एवं स्कीनर), मानवतावादी एवं स्व सिद्धान्त (मेसलो, रोजर्स)(Learning Theory of Personality (Pavlov and Skinner), Humanistic and Self Theory (Maslow, Rogers)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त से तात्पर्य
8.4 पैवलव का व्यक्तित्व सिद्धान्त
8.5 स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त
8.6 व्यक्तित्व के मानवतावादी एवं आत्म सिद्धान्त का तात्पर्य
8.7 मैसलो का व्यक्तित्व सिद्धान्त
8.8 रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त
8.9 सार संक्षेप
8.10 पारिभाषिक शब्दावली
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न
8.12 संदर्भ-ग्रन्थ
8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.1 प्रस्तावना-

पिछली इकाई में आपने व्यक्तित्व के सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इस सिलसिले में ऐडलर, फ्रॉम, हार्नी एवं बन्डूराके व्यक्तित्व सिद्धान्त की चर्चा की गई।

आइए, अब व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त तथा मानवतावादी एवं आत्म-सिद्धान्त पर चर्चा करें। अधिगम सिद्धान्त के अन्तर्गत यहां पैवलव एवं स्कीनर के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है तथा मानवतावादी एवं आत्म-सिद्धान्त के अन्तर्गत अब्राहम मासलो एवं काले रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त की चर्चा की गई है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आपको अधिगम सिद्धान्तों तथा मानवतावादी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व को समझने एवं इसकी व्याख्या करने में मद्द मिलेगी।

8.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्तों की तुलना कर सकें।

2. पैवलव एवं स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त में भेद कर सकें।
3. मासलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें।
4. रोजर्स के आत्म-सिद्धान्त के तत्वों को समझ सकें।
5. उपर्युक्त व्यक्तित्व सिद्धान्तों के गुण-दोषों पर प्रकाश डाल सकें।

8.3 व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त से तात्पर्य-

अधिगम सिद्धान्त से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन सिद्धान्तों से है जो मानव स्वभाव की व्याख्या सीखे हुए व्यवहार के आधार पर करता है। इसके अन्तर्गत मूलतः व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक आते हैं जिन्होंने मानव स्वभाव को सीखे हुए व्यवहार का समुच्चय माना। इसका पहला श्रेय रूसी मनोवैज्ञानिक पैवलव को जाता है जिन्होंने क्लासिकी अनुकूलन या अनुबन्धन द्वारा व्यवहार सीखने की क्रिया का प्रायोगिक अध्ययन किया। इस क्षेत्र में दूसरा महत्वपूर्ण कार्य स्कीनर ने क्रियाप्रसूत व्यवहार का अध्ययन कर किया तथा मानव स्वभाव की व्याख्या पुनर्बलन द्वारा सीखने के आधार पर की। इस प्रकार, व्यक्तित्व का अधिगम सिद्धान्त मानव स्वभाव एवं व्यवहार की व्याख्या क्लासिकी एवं प्रवर्तन अनुकूलन के आधार पर करता है।

व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्तवादियों का मानना है कि व्यक्तित्व उन आदत-तंत्रों का समुच्चय है जिसे वस्तुनिष्ठ रूप से अवलोकित किया जा सकता है। इस समूह के मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को समझने का प्रयास प्रयोगशालाओं में किए गये अध्ययनों तथा वस्तुनिष्ठ प्रदत्तों के माध्यम से किया, न कि उपचार-गृह में किए गये अध्ययनों या केस-इतिहास द्वारा प्राप्त प्रदत्तों के माध्यम से।

8.4 पैवलव का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

इवान पी. पैवलव एक रूसी शरीर क्रिया-शास्त्री थे जिन्होंने मूलतः सीखने के क्लासिकी अनुकूलन या अनुबन्धन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, परन्तु व्यवहार के परिवर्तन और परिमार्जन में क्लासिकी अनुकूलन की भूमिका ने व्यक्तित्व की व्याख्या भी अधिगम के आधार पर करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसीलिए, व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पैवलव के सिद्धान्त को अधिगम सिद्धान्त के रूप में ही जाना जाता है।

व्यक्तित्व के इस सिद्धान्त का आधार पैवलव द्वारा कुत्ते पर किया गया वह प्रयोग है जिसमें कुत्ते ने घंटी की आवाज पर लार टपकाना शुरू कर दिया था। यह प्रयोग दो अवस्थाओं में किया गया था-

पहली अवस्था-

स्वाभाविक उत्तेजना	स्वाभाविक अनुक्रिया
घंटी की आवाज -	चौंकने की अनुक्रिया
भोजन - लार टपकाने की अनुक्रिया	

दूसरी अवस्था-

घंटी की आवाज (अस्वाभाविक उत्तेजना) - लार का टपकना

+

भोजन (स्वाभाविक उत्तेजना

कई प्रयासों के बाद

घंटी की आवाज - लार का टपकना

यानी, घंटी की आवाज, जो लार टपकाने के लिए एक अस्वाभाविक उत्तेजना थी तथा लार टपकना, जो घंटी की आवाज के लिए एक अस्वाभाविक अनुक्रिया थी, आपस में जुड़ गई, यानी, युग्मित हो गई। इसे ही अनुकूलन या अनुबन्धन कहा गया तथा घंटी की आवाज को अनुकूलित उत्तेजना एवं आवाज सुनकर लार टपकाने की क्रिया को अनुकूलित अनुक्रिया की संज्ञा दी गई।

अपने उपर्युक्त प्रयोग के आधार पर पैवलव ने बताया कि अनुकूलन के विकास में उत्तेजनाओं के क्रम का महत्वपूर्ण स्थान है तथा शिक्षण क्रिया में व्यक्ति घटनाक्रम को ही सीखता है। उनके अनुसार अनुकूलन के लिए यह भी आवश्यक है कि तटस्थ उत्तेजना और मौलिक उत्तेजना (स्वाभाविक उत्तेजना) के क्रमशः उपस्थित होने के बीच समय अन्तराल न्यूनतम हो,

पैवलव ने अनुकूलित व्यवहार के उत्पन्न होने में प्रेरणा एवं प्रबलन के महत्व को भी स्वीकार किया। उनके अनुसार, पर्याप्त प्रेरणा और प्रबलन के अभाव में अनुकूलित व्यवहार उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि प्रेरणा ही प्राणी को क्रियाशील बनाती है। पैवलव ने यह भी स्पष्ट किया कि अनुकूलन की घटना उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि तटस्थ उत्तेजना और मौलिक उत्तेजना के अतिरिक्त और कोई प्रभावक उत्तेजना न हो-यानी उन्हें नियंत्रित रखा जाय।

पैवलव के अनुकूलन व्यवहार का समर्थन वाटसन ने भी अलबर्ट नामक शिशु पर प्रयोग करके किया। अलबर्ट पहले सफेद चूहे के साथ खेलता था तथा धमाकेदार आवाज से भयभीत होता था। जब वह चूहे की ओर हाथ बढ़ाता कि जोरदार आवाज उत्पन्न की जाती। नतीजा यह हुआ कि चूहे के साथ खेलने वाला बच्चा अब चूहे को देखते ही डरने लगा। स्थिति यहां तक आ गई कि अब वह किसी भी रोयेंदार सफेद वस्तु को देखकर डरने लगा। यानी, उसके व्यक्तित्व में भय का विकास अनुकूलन द्वारा हुआ जो पैवलव के सिद्धान्त पर आधारित है।

हमारे दैनिक जीवन में भी अनेक ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं जब अनुकूलन द्वारा व्यक्ति में विशेष प्रकार का भय, आकर्षण अथवा घृणा के संवेग विकसित होते हैं।

सामाजिक शिक्षण की प्रक्रियाएं भी अनुकूलन के प्रतिफल होते हैं। मनोवृत्ति, विश्वास, धर्म, भाषा, पूर्वग्रह, आदि के शिक्षण में अनुकूलन का और अधिक महत्व है। जातीय एवं साम्प्रदायिक पूर्वग्रह, पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध, धनी-गरीब के बीच का भेदभाव एवं उनके बीच की अन्तःक्रियाएं आदि अनुकूलन के ही परिणाम हैं।

अनुकूलन एक ऐसी घटना है जो व्यक्ति के व्यवहार को जन्म से मृत्यु तक प्रभावित करता है क्योंकि सीखना एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। नवजात शिशु जब अपनी मां के स्तन को मुँह से पकड़कर चूसने की प्रतिक्रिया करता है तो यह स्वाभाविक अनुक्रिया कहलाती है, परन्तु जब वह माँ की आवाज सुनते ही चूसने जैसी अनुक्रिया करता है तो यह अनुकूलन से उत्पन्न व्यवहार है।

स्पष्ट है कि पैवलव का अनुकूलन सिद्धान्त व्यक्तित्व की व्याख्या भी अधिगम के आधार पर करता है और व्यक्तित्व को अनुकूलन द्वारा सीखी गई अनुक्रियाओं का समुच्चय मानता है।

8.5 स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

एक व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक होने के कारण स्कीनर ने व्यक्तित्व की व्याख्या भी उद्धीपकों के प्रति सीखी गई अनुक्रियाओं के संग्रहण एवं स्पष्ट व्यवहारों या आदत-तंत्रों के एक समुच्चय के रूप में की। इसीलिए व्यक्तित्व से स्कीनर का तात्पर्य सिर्फ उन व्यवहारों से है जिसे वस्तुनिष्ठ रूप में अवलोकित किया जाय तथा जिसमें आसानी से हेर-फेर किया जा सके। स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को व्यक्तित्व का व्यवहारात्मक-सीखना सिद्धान्त भी कहते हैं। इन्होंने व्यक्तित्व को समझने का प्रयास प्रयोगशालाओं में किए गए अध्ययनों के माध्यम से किया, न कि उपचार गृह में किए गए अध्ययनों के माध्यम से।

इनका व्यक्तित्व सिद्धान्त कुछ सिद्धान्तों, जैसे-मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, संज्ञानात्मक सिद्धान्त, मानवतावादी सिद्धान्त का विरोधी है। स्कीनर ने व्यक्तित्व की व्याख्या करने में आन्तरिक प्रक्रियाओं जैसे-प्रणोद, अभिप्रेरकों तथा अचेतन आदि के महत्व को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इनका प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है। उसी तरह से उन्होंने दैहिक प्रक्रियाओं को भी यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि उन्हें चूँकि स्पष्ट रूप से प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है, अतः उस पर वैज्ञानिक व्याख्या के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता है। स्कीनर ने मानव जीव को एक रिक्त जीव कहा है। रिक्त जीव कहने का उद्देश्य मानव व्यवहार की उत्पत्ति में आन्तरिक प्रक्रियाओं की भूमिकाओं पर कटाक्ष करना तथा इस पर बल डालना था कि मानव जीव के भीतर कुछ भी ऐसा नहीं होता है जो वैज्ञानिक ढंग से व्यक्ति के व्यवहारों की व्याख्या कर सके। स्कीनर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में वैयक्तिक विभिन्नता के अध्ययन में रूचि नहीं दिखलायी है बल्कि उनकी मुख्य अभिरूचि मानव व्यवहार के सामान्य नियमों की खोज में अधिक थी। स्कीनर के सिद्धान्त की एक विशेषता यह भी है कि इन्होंने अपना अध्ययन सामान्य, असामान्य या असाधारण व्यक्तियों पर न करके पशुओं पर विशेषकर चूहों एवं कबूतरों पर किया और कहा कि चूँकि उनके सिद्धान्त का संबंध सभी तरह के व्यवहारों से है, अतः इन पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करके मानव के व्यवहारों को भी आसानी से समझा जा सकता है। उन्होंने पशु व्यवहार के अध्ययन पर इसलिए भी जोर दिया है क्योंकि ऐसे व्यवहारों का अध्ययन सरल है। स्कीनर के अनुसार जीव का व्यवहार किसी स्पष्ट नियमों से निर्धारित होता है तथा वातावरण के कारकों द्वारा नियंत्रित होता है।

स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त मानव प्रकृति के कुछ खास-खास पहलुओं जैसे-निर्धार्यता, अधिभूतवाद, पर्यावरणीयता, परिवर्तनशीलता, वस्तुनिष्ठता, प्रतिक्रियाशीलता, तथा ज्ञेयता पर अधिक बल डालता है तथा

अन्य पहलुओं जैसे विवेकपूर्णता-अविवेकपूर्णता तथा समस्थिति-विषमस्थिति को पूर्णरूपेण अस्वीकृत करता है क्योंकि स्कीनर ने मानव व्यवहार के आन्तरिक स्रोतों पर बल नहीं दिया है।

स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व का अध्ययन व्यक्ति के जननिक पृष्ठभूमि तथा विशिष्ट शिक्षण इतिहास का क्रमबद्ध एवं परिशुद्ध मूल्यांकन के आधार पर संभव है। इसका मतलब यह हुआ कि स्कीनर के लिये व्यक्तित्व के अध्ययन में जीव के व्यवहार तथा उसके पुनर्बलित परिणामों के विशिष्ट संबंधों की खोज सम्मिलित होता है। स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या निम्नांकित आधारों पर की जा सकती है-

1. क्रियाप्रसूत व्यवहार
2. पुनर्बलन अनुसूची
3. क्रमिक सन्निकटन: व्यवहारों को रूप-ग्रहित करना
4. अंधविश्वासी व्यवहार
5. व्यवहारों का आत्म-नियंत्रण
6. व्यक्तित्व मापन
7. क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का अनुप्रयोग

स्कीनर ने निम्नलिखित तीन पूर्वकल्पनाएं अभिव्यक्त की थीं-

1. व्यवहार वैध होता है-उनका मत था कि मनोविज्ञान चूँकि एक विज्ञान है, अतः विभिन्न घटनाओं से संबंधित व्यवहारों में एक क्रमबद्धता की खोज उसमें की जाती है।
2. व्यवहार को पूर्वानुमानित किया जा सकता है-मनोविज्ञान का संबंध सिर्फ भूत से ही नहीं होता है बल्कि भविष्य से भी होता है। इसमें भविष्य में होने वाले व्यवहारों के बारे में एक पूर्वकथन किया जाता है।
3. व्यवहार को नियंत्रित किया जा सकता है-स्कीनर का मत था कि हम लोग अपने व्यवहारों के बारे में सिर्फ पूर्वकथन ही नहीं करते बल्कि उसका काफी हद तक नियंत्रण भी कर पाते हैं।

आइए, अब स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या उपर्युक्त सातों आधारों पर करें-

क्रियाप्रसूत व्यवहार-

स्कीनर के अनुसार व्यक्तित्व का सापेक्ष पहलू यदि कोई है, तो वह व्यवहार है जिसका गहन प्रयोगात्मक अध्ययन करके व्यक्तित्व के बारे में समझा जा सकता है। उन्होंने व्यवहार के दो प्रकार बतलाये हैं-क्रियाप्रसूत व्यवहार तथा प्रतिवादी व्यवहार। प्रतिवादी व्यवहार से तात्पर्य वैसे व्यवहार से होता है जिसे व्यक्ति वातावरण के ज्ञात उद्धीपकों के प्रति करता है। साधारण स्तर पर प्रतिवादी व्यवहार स्वतः एवं अनैच्छिक होता है। जैसे रोशनी से प्रभावित होकर पुतली का फैलना या सिकुड़ना, भोजन देखकर मुँह में पानी (लार) आना, ठंढक से काँपना आदि साधारण स्तर के प्रतिवादी व्यवहार हैं जिन्हें व्यक्ति सीखता नहीं है। परन्तु अधिक जटिल स्तर पर प्रतिवादी व्यवहार को व्यक्ति सीखता है और ऐसे सीखना को अनुबन्धन कहा जाता है। जैसे, किसी वक्ता द्वारा मुख्य भाषण देने के लिये बने सेट एवं उसकी चमक-दमक देखकर पसीना-पसीना होना तथा घबड़ा जाना एक ऐसे ही प्रतिवादी व्यवहार

का उदाहरण है। इस तरह के प्रतिवादी व्यवहार के सीखने का प्रयोगात्मक अध्ययन पैवलव द्वारा एक कुत्ते पर प्रयोग कर किया गया तथा वाटसन एवं रेनर द्वारा मानव पर (अल्बर्ट नामक शिशु पर) एक प्रयोग करके सफलतापूर्वक किया गया।

क्रियाप्रसूत व्यवहार से तात्पर्य वैसे व्यवहार से होता है जो वातावरण के किसी स्पष्ट उद्धीपक द्वारा उत्पन्न नहीं होता है। प्रायः ऐसे व्यवहारों को व्यक्ति अपनी इच्छा से न कि उद्धीपक से प्रभावित होकर करता है। स्कीनर का यह मत है कि अधिकतर मानव व्यवहार क्रियाप्रसूत व्यवहार की श्रेणी के ही होते हैं हालांकि उन्होंने पैवलोवियन अनुबन्धन के कई नियमों का सहर्ष स्वागत भी किया है। स्कीनर का मत था कि क्रियाप्रसूत व्यवहार के करने के बाद की घटनाओं का प्रभाव जीव पर काफी अधिक पड़ता है। यदि इस तरह के व्यवहार को करने के बाद पशु या मानव को पुरस्कार मिलता है तो इससे वह अधिक प्रोत्साहित होकर भविष्य में फिर उस व्यवहार को दोहराता है, परन्तु यदि उस तरह के व्यवहार करने के बाद उसे दंड मिलता है, तो वह भविष्य में उस व्यवहार की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता है। स्कीनर ने स्कीनर बक्स में चूहों पर तथा कबूतर बक्स में कबूतरों पर कई प्रयोग करके उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि की है। जिस प्रक्रिया द्वारा क्रियाप्रसूत व्यवहार का अनुबन्धन होता है उसे क्रियाप्रसूत अनुबन्धन कहा जाता है।

जन्म के बाद से व्यक्ति कई तरह के व्यवहार करता है और उसमें से जो व्यवहार पुनर्बलित होते हैं, वे अपने आप ही अधिक मजबूत होकर एक निश्चित पैटर्न का निर्माण करते हैं। स्कीनर का व्यक्तित्व से मतलब ऐसे ही मजबूत क्रियाप्रसूत व्यवहारों के एक पैटर्न या संग्रहण से था।

पुनर्बलन अनुसूची-

पुनर्बलन अनुसूची से स्कीनर का तात्पर्य क्रियाप्रसूत अनुक्रिया को करने के बाद पुनर्बलन के देने या रोकने के लिए तैयार किया गया एक विशेष पैटर्न या अनुसूची से होता है। अपने शोध के प्रारंभिक अवस्था में स्कीनर ने प्रत्येक सही अनुक्रिया को पुनर्बलित किया। इसे सतत पुनर्बलन कहा गया है। परन्तु शीघ्र ही स्कीनर ने यह पाया कि दिन प्रतिदिन की अधिकतर परिस्थितियाँ इस प्रकार की होती है जहाँ व्यक्ति को प्रत्येक अनुक्रिया व्यवहार करने के बाद पुरस्कार या पुनर्बलन नहीं मिल पाता है। सच्चाई यह है कि कुछ ऐसी परिस्थिति में कुछ व्यवहार के बाद तो पुनर्बलन मिलता है तो कुछ के बाद पुनर्बलन नहीं मिलता है। इस तरह के पुनर्बलन को उन्होंने आंशिक पुनर्बलन या आंतरायिक पुनर्बलन कहा है। उन्होंने आंतरिक पुनर्बलन के चार प्रकार बतलाये हैं-निश्चित अनुपात अनुसूची, परिवर्त्य-अनुपात अनुसूची, निश्चित अन्तराल अनुसूची तथा परिवर्त्य अन्तराल अनुसूची। निश्चित अनुपात अनुसूची में प्राणी को एक निश्चित संख्या जैसे, 5, 10, 12 आदि में सही अनुक्रिया करने के बाद ही उसे पुनर्बलन मिलता है। परिवर्तय अनुपात अनुसूची में पुनर्बलन देने के लिये कोई ऐसी संख्या पूर्व निश्चित नहीं होती हैं। प्रयोगकर्ता कभी तीन सही अनुक्रिया तो कभी पाँच तो कभी सात (या कोई भी संख्या) के बाद अपने मन से पुनर्बलन देता है। निश्चित अंतराल अनुसूची में सही अनुक्रिया की संख्या चाहे कुछ भी हो, एक निश्चित समय बीतने के बाद ही पुनर्बलन दिया जाता है। परिवर्त्य अंतराल अनुसूची में पुनर्बलन देने का कोई निश्चित समय

अंतराल नहीं होता है। समय अंतराल की सीमा कुछ भी हो सकती है, अर्थात् कभी दो मिनट तो कभी पाँच मिनट तो कभी तीन मिनट आदि-आदि। इसमें से निश्चित अनुपात अनुसूची दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में सबसे अधिक सामान्य है और व्यक्ति के व्यवहार पर यह काफी नियंत्रण रखता है। अधिकतर नौकरियों में व्यक्ति द्वारा किये गए कामों की इकाइयों को मापकर उसी के अनुरूप उनका वेतन दिया जाता है। अधिक ऐसे इकाई होने पर उन्हें अधिक वेतन दिया जाता है। दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में व्यक्ति द्वारा जुआ खेलना परिवर्त्य अनुपात अनुसूची के उदाहरण हैं। जब किसी व्यक्ति को कुछ निश्चित घंटे काम करने या एक-एक हफ्ता पर अपने काम के लिये उसे वेतन दिया जाता है तो यह निश्चित अंतराल अनुसूचित का उदाहरण है। माता-पिता द्वारा बच्चों को उनके व्यवहारों को यदा-कदा प्रशंसा करना परिवर्त्य अंतराल अनुसूची के उदाहरण है। दोनों तरह के परिवर्त्य अनुसूचियों द्वारा सीखे गए व्यवहारों को व्यक्ति जल्दी नहीं भूलता है। क्योंकि वह यह नहीं जान पाता है कि उसे कब पुनर्बलन मिलेगा।

क्रमिक सन्निकटन: व्यवहारों को रूप-ग्रहित करना-

क्रमिक सन्निकटन की विधि जिसे रूप ग्रहित करना भी कहा जाता है, एक ऐसी प्रविधि है जिसमें धीरे-धीरे एक-एक करके अनुक्रिया को पुनर्बलित किया जाता है और उसे वैसे व्यवहारों से प्रतिस्थापित किया जाता है जो वांछित व्यवहार जिसे प्रयोगकर्ता सीखना चाहता है, के काफी हद तक सादृश्य होता है। जैसे, स्कीनर ने इस प्रविधि द्वारा कबूतर को एक निर्दिष्ट जगह पर चोंच मारना सिखलाने के लिए इस प्रकार की योजना बनाया-पहले जब कबूतर उस निर्दिष्ट जगह की ओर मुड़ा तो उसे पुनर्बलन प्रदान किया गया। इसके बाद कबूतर को पुनर्बलन तब दिया गया जब वह उस निर्दिष्ट स्थान की ओर किसी प्रकार की गति किया। इसके बाद कबूतर को पुनर्बलन तब दिया गया जब वह उस निर्दिष्ट स्थान के नजदीक आने की अनुक्रिया किया और अन्त में कबूतर को पुनर्बलन तब दिया गया जब उसकी चोंच उस निर्दिष्ट स्थान को स्पर्श किया। इस तरह से कबूतर को उस निर्दिष्ट स्थान पर चोंच मारना सीखलाया गया। इस तरह से क्रमिक सन्निकटन की प्रविधि में जीव को पुनर्बलन तभी प्रदान किया जाता है जब उसका व्यवहार धीरे-धीरे वांछित व्यवहार अर्थात् सिखाने वाले व्यवहार के नजदीक आते जाते हैं। इस प्रविधि का प्रयोग बच्चों में बोलना सिखलाना तथा सही शब्दों का उच्चारण सिखलाने में काफी किया गया है।

अंधविश्वासी व्यवहार-

स्कीनर के अनुसार अंधविश्वासी व्यवहार से तात्पर्य वैसे अनुबन्धन से है जिसमें अनुक्रिया तथा पुनर्बलन के बीच एक स्पष्ट परन्तु अकार्यात्मक या संयोग संबंध होता है। ऐसी परिस्थिति में प्राणी को यह अनुभव होता है कि उसके अमुक व्यवहार का कारण अमुक पुनर्बलन ही है जबकि सच्चाई यह है कि उस व्यवहार तथा पुनर्बलन में कोई वास्तविक संबंध नहीं होता है। स्कीनर ने इस तरह के व्यवहार को प्रयोगशाला में देखा। उदाहरण के लिए मान लिया जाय कि चूहा को स्कीनर बक्स में निश्चित अंतराल अनुसूची जिसमें प्रत्येक 15 सेकंड पर पुनर्बलन दिया जाता है लीवर दबाने की अनुक्रिया को सिखलाया जा रहा है। इस अनुसूची में चूहा चाहे वांछित व्यवहार

करे या न करे, उसे प्रत्येक 15 सेकंड पर पुनर्बलन मिलेगा। ऐसा संभव है कि जिस समय पुनर्बलन दिया जा रहा हो, वह कुछ-न-कुछ व्यवहार जैसे, पूँछ हिलाना, पिछले दोनों पैरों पर खड़ा होकर आगे के दोनों पैरों से मुँह खुजलाना, आदि कर रहा हो। उस समय जो भी व्यवहार चूहा कर रहा होता है, वह पुनर्बलित हो जाता है। इस तरह का व्यवहार आकस्मिक रूप से पुनर्बलित हो जाता है और स्कीनर ने देखा कि ऐसा व्यवहार बाद में चूहा प्रायः यह सोचकर संभवतः करता है कि ऐसा करने से उसे आगे फिर पुनर्बलन मिलेगा। इस तरह के व्यवहार को स्कीनर ने अंधविश्वास व्यवहार कहा है। दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में अंधविश्वासी व्यवहार के अनेक उदाहरण मिलते हैं-छात्रों द्वारा परीक्षा के दिन दही खाकर परीक्षा-भवन में जाना, बिल्ली द्वारा रास्ता काटने को अशुभ मानना, शीशे के टूटने को अशुभ मानना, सोना खो जाने को अशुभ मानना, आदि-आदि। स्कीनर ने यह भी स्पष्ट किया है कि अंधविश्वासी व्यवहार निश्चित रूप से व्यक्ति के अपने अनुबन्धन इतिहास का ही परिणाम नहीं होता है बल्कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सांस्कृतिक एवं सामाजिक कहानियों एवं रूपक कथाओं के रूप में हस्तांतरित होते रहता है।

व्यवहारों का आत्म-नियंत्रण-

स्कीनर के सिद्धान्त का मुख्य सार-तत्व यह था कि प्राणी का व्यवहार वाह्य उद्धीपकों द्वारा परिवर्तित होता है तथा प्राणी के भीतर कोई वैसा आन्तरिक बल नहीं होता है जो उसके व्यवहार को परिवर्तित करे। उन्होंने यह भी कहा है कि बाह्य उद्धीपकों से यद्यपि प्राणी का व्यवहार परिवर्तित होता है, प्राणी भी अपने व्यवहार से बाह्य उद्धीपकों को प्रभावित करता है। स्कीनर का आत्म-नियंत्रण से तात्पर्य यह नहीं था कि प्राणी का व्यवहार कुछ आन्तरिक रहस्यमुक्त बलों से नियंत्रित होता है बल्कि इनका तात्पर्य यह था कि प्राणी उन चरों पर अपना नियंत्रण रखता है जिससे उसका व्यवहार प्रभावित होता है। जैसे, यदि आपको अपने पड़ोसी के रेडियो की आवाज पढ़ने में विघ्न डालता है, तो आप उस कमरे से स्थान बदलकर एक ऐसे कमरे में कर लेते हैं जहाँ उसके रेडियो की आवाज से आपको पढ़ने में कोई विघ्न नहीं पहुँचता हो। यह आत्म-नियंत्रण का उदाहरण है। स्कीनर ने आत्म-नियंत्रण के कई प्रविधियों का वर्णन किया है जिसमें प्रमुख निम्नांकित हैं-

1. **संतुष्टि प्रविधि-**

   यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें व्यक्ति अपने आप को बुरी आदतों से छुटकारा पाने के लिए उसे बार-बार तब तक दोहराते जाता है। जब तक कि उससे वह ऊब न जाए। इस प्रविधि द्वारा सिगरेट पीने की बुरी आदत को छोड़ने के लिए व्यक्ति तब तक सिगरेट एक के बाद एक करके पीते जायेगा, जब तक उसे सिगरेट से विरूचि न उत्पन्न हो जाय।

2. **असुखद या विरूचिपूर्ण उद्धीपकों का प्रयोग-**

   आत्म-नियंत्रण की इस प्रविधि में व्यक्ति वातावरण में कुछ ऐसा परिवर्तन करता है कि उसे असुखद या विरूचिपूर्ण उद्धीपकों का सामना करना पड़ता है और इस तरह से वह अपनी आदतों से छुटकारा पा जाता है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति शराब की अपनी बुरी आदत को छोड़ना चाहता है, तो वह अपने इस विचार की

घोषणा अपने दोस्तों एवं रिश्तेदारों के बीच करता है। यदि वह अपने इस घोषणा पर अटल नहीं रहता है, तो उसे अपने दोस्तों एवं रिश्तेदारों की आलोचना का सामना करना पड़ता है जो स्पष्टतः व्यक्ति के लिए एक तरह का असुखद या विरूचिपूर्ण उद्धीपक होगा। अतः उम्मीद की जाती है कि वह ऐसे उद्धीपकों से बचने के लिए अपनी घोषणा पर अमल करेगा।

3. आत्म-पुनर्बलन-

आत्म-नियंत्रण की इस प्रविधि में व्यक्ति अपने द्वारा किये गये उत्तम व्यवहारों या वांछित व्यवहारों को दिखलाने के लिए अपने आपको पुनर्बलित करता है। जैसे, अपने उस व्यवहार से खुश होना या उससे पूर्णतः संतुष्टि एवं प्रसन्नता व्यक्त करना, आदि-आदि आत्म-पुनर्बलन के कुछ उदाहरण हैं। इस तरह के आत्म-पुनर्बलन से व्यक्ति में आत्म-नियंत्रण पर पकड़ मजबूत होती है।

व्यक्तित्व मापन-

स्कीनर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में व्यक्तित्व मापन के लिए कुछ वैसी प्रविधियों का जिक्र नहीं किया है जैसा कि हम अन्य सिद्धान्तों में पाते हैं। अतः उन्होंने स्वतंत्र साहचर्य, स्वप्न विश्लेषण तथा प्रक्षेपी प्रविधियाँ जैसी प्रविधियों का वर्णन अपने सिद्धान्त में नहीं किया है। यद्यपि स्कीनर की अभिरूचि व्यक्तित्व मापन की ऐसी प्रविधियों में नही थी, फिर भी उन्होंने व्यवहारों के मापन में अभिरूचि दिखलायी है। उनका मत था कि व्यवहार चाहे वांछनीय हो या अवांछनीय हो, उसे मापना आवश्यक है। जब तक व्यवहार को मापा नहीं जाता, उसमें परिमार्जन भी नहीं लाया जा सकता है। अतः व्यवहार मापन व्यवहार परिमार्जन के लिए आवश्यक माना गया।
स्कीनर ने व्यवहार मापन का कार्यात्मक विश्लेषण किया है जिसमें व्यवहार के तीन पहलू शामिल होते हैं-व्यवहार की आवृत्ति, परिस्थिति जिसमें व्यवहार उत्पन्न होता है तथा व्यवहार से संबंधित पुनर्बलन। जब तक इन तीन पहलुओं को पहले से मापा नहीं जाता है, व्यवहार परिमार्जन के प्रोग्राम को प्रारंभ करना संभव नहीं है। स्कीनर के अनुसार व्यवहार परिमार्जन के औपचारिक प्रोग्राम में व्यवहार मापन के लिए निम्नांकित तीन प्रविधियाँ महत्वपूर्ण हैं-

1. व्यवहार का प्रत्यक्ष प्रेक्षण
2. आत्म-प्रतिवेदन विधि
3. व्यवहार का दैहिक मापन

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित हैं-

1. व्यवहार का प्रत्यक्ष प्रेक्षण-

इस प्रविधि में दो या दो से अधिक प्रेक्षक व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहारों का सीधा प्रेक्षण करके उसकी विश्वसनीयता तथा यथार्थता का निर्धारण करते हैं। हाकिन्स, पेटरसन, स्कीविड तथा विजोऊ ने माँ तथा उसके 4 साल के बच्चे के अन्तःक्रियाओं का सीधा प्रेक्षण करके 9 अवांछित व्यवहारों की पहचान किया है। इन्हीं अवांछित व्यवहारों के कारण माँ को नैदानिक मनोवैज्ञानिक के पास बच्चे का उपचार के लिए

लाना पड़ा था। इस केस में मनोवैज्ञानिकों द्वारा माँ को यह सख्त निर्देश दिया गया कि वे उस बच्चा पर तभी ध्यान दे जब वह धनात्मक ढंग से व्यवहार करे और जब वह 9 अवांछित व्यवहारों में से कोई भी व्यवहार करे, तो उस पर वह बिल्कुल ही ध्यान न दे। इससे उस बच्चा में व्यवहार परिमार्जन करना संभव हो सका।

2. आत्म-प्रतिवेदन विधि-

इस प्रविधि में व्यक्ति एक तरह से अपने व्यवहार का प्रेक्षण स्वयं करता है और वह ऐसा करके परीक्षक को बतलाता है कि प्रश्नावली आत्म-प्रतिवेदन का सबसे प्रमुख एवं उत्तम तरीका है जिसमें छपे प्रश्नों को एक-एक करके व्यक्ति पढ़ते जाता है और उसका उत्तर भी देते जाता है। गीर (1965) ने एक ऐसा ही उत्तम प्रश्नावली विकसित किया है जिसका नाम 'फियर सर्वे अनुसूची' रखा गया हैं इस अनुसूची द्वारा इस तथ्य का मापन होता है कि व्यक्ति कुछ खास-खास परिस्थितियों, जैसे-कार चलाना, शल्य कार्य के लिए डॉक्टर के यहाँ जाना तथा लोगों के बीच भाषण देने जाने में कितन डर का अनुभव करता है। स्वयं स्कीनर ने इस विधि का प्रयोग अपने पूरे जीवन अवधि में दो बार ही किया था (स्कीनर (1933, 1979)। वे कई कारणों से इस प्रविधि को अधिक महत्व नहीं देते थे।

3. व्यवहार का दैहिक माप-

इस प्रविधि में व्यवहार का मापन करने के लिए कुछ शारीरिक प्रक्रियाओं जैसे-हृदय की गति, मांसपेशियों का तनाव तथा मस्तिष्कीय तरंग आदि का मापन किया जाता है। इस तरह से इन सूचकों द्वारा व्यक्ति पर विभिन्न उद्धीपकों के प्रभावों को मापना संभव हो पाता है। इस प्रविधि का प्रयोग अन्य विधियों द्वारा किये गए मापनों की वैधता की जाँच के लिये भी की जाती है।

व्यवहार मापन की चाहे जो भी प्रविधि क्यों न अपनायी जाय, इसका उद्देश्य विभिन्न उद्धीपक परिस्थितियों में व्यवहारों को मापना है। यहाँ हमेशा ध्यान इस बात पर दिया जाता है कि व्यक्ति क्या करता है न कि इस बात पर कि व्यक्ति को वह व्यवहार करने के लिये क्या प्रेरित कर रहा है।

क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का अनुप्रयोग-

स्कीनर का मत है कि व्यक्ति में असामान्य व्यवहार का विकास उन्हीं नियमों के अनुरूप होता है जिससे सामान्य व्यवहार का विकास प्रभावित होता है। उन्होंने यह भी कहा है कि वातावरण में जोड़-तोड़ करके असामान्य व्यवहार के जगह पर सामान्य व्यवहार को स्थापित किया जा सकता है। उनके अनुसार असामान्य व्यवहार को क्रियाप्रसूत अनुबन्धन के नियमों के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रविधि को व्यवहार परिवर्तन या व्यवहार परिमार्जन या व्यवहार चिकित्सा की संज्ञा दी दी जाती हैं उन्होंने व्यवहार परिमार्जन के कई विधियों का वर्णन किया है जिसमें विभेदी पुनर्बलन, सांकेतिक व्यवस्था तथा विलोपन प्रमुख हैं। इन तीनों का वर्णन निम्नांकित हैं-

1. विभेदी पुनर्बलन-

व्यवहार चिकित्सा की यह एक ऐसी विधि है जिसमें चिकित्सक रोगी के कुसमायोजित व्यवहार को हटाने के लिये उसकी जगह पर समायोजित व्यवहार धनात्मक पुनर्बलन देकर तथा ऐसा व्यवहार नहीं करने पर उसे धनात्मक पुनर्बलन से वंचित करके उपचार करता है।

2. सांकेतिक व्यवस्था-

इस प्रविधि में व्यक्ति विशेष प्रयास करके कुछ वस्तु अर्जित करता है। उस वस्तु को संकेत या प्रतीक कहा जाता है। संकेत मुद्रा के रूप में कार्य करता है जिससे व्यक्ति वांछित वस्तुओं को खरीद सकता है। व्यक्ति जितना ही अधिक समायोजित व्यवहार करता है, उतना ही अधिक वह प्रतीक या संकेत अर्जित करता है। कुसमायोजित व्यवहार को करने से उसे कोई ऐसा प्रतीक या संकेत नहीं मिलता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति धीरे-धीरे कुसमायोजित व्यवहार करना छोड़ देता है तथा उसकी जगह पर समायोजित व्यवहार सीख लेता है।

3. विलोपन-

इस प्रविधि में किसी अपअनुकूलित या कुसमायोजित व्यवहार को दूर करने के लिए उसे पुनर्बलित करने वाले कारकों को हटा दिया जाता हैं प्रबलित करने वाले तत्वों को हटा देने से धीरे-धीरे अपअनकूलित व्यवहार या कुसमायोजित व्यवहार अपने आप ही विलोपित हो जाता है।

स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण एवं अवगुण हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. स्कीनर के सिद्धान्त द्वारा कई तरह के प्रयोगात्मक शोधों का जन्म हुआ है। इससे इस सिद्धान्त की सुस्पष्ट वैधता की झलक मिलती है।
2. स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के मूल-भूत तत्वों का अनुप्रयोग कई तरह की परिस्थितियों में किया गया है। इसका प्रयोग नैदानिक परिस्थिति, शिक्षा तथा उद्योग के क्षेत्र में सर्वाधिक किया गया है। नैदानिक परिस्थिति में व्यवहार चिकित्सा के रूप में, शिक्षा में शिक्षण मशीन तथा कार्यक्रमिक सीखना के रूप में तथा उद्योग में उन्नत कार्य निष्पादन तथा सुरक्षा उपायों के रूप में अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

कुछ खास-खास कारकों के आधार पर स्कीनर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त की आलोचना भी की गयी है। इनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. कुछ आलोचकों का मत है कि स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के समान बिल्कुल ही नहीं लगता है। इनका सिद्धान्त इतना सरल तथा तात्विक है कि उससे जटिल मानव व्यवहार की व्याख्या नहीं हो पाती है।

2. आलोचकों का मत है कि स्कीनर ने अपना अधिकतर प्रयोग चूहों एवं कबूतरों पर किया है और उससे प्राप्त तथ्यों के आधार पर मानव व्यवहार की व्याख्या की है। इसे कई मनोवैज्ञानिकों ने न केवल अनुचित बल्कि अवैज्ञानिक भी माना है।
3. स्कीनर ने प्राणी को एक रिक्त जीव कहा है जो पूर्णरूपेण बाह्य, उद्धीपक-अनुक्रिया पुनर्बलन, रूपावली से नियंत्रित होता है। इस पर आलोचकों ने आपत्ति उठायी है और कहा कि प्राणी का व्यवहार सिर्फ बाह्य उद्धीपकों तथा पुनर्बलन से ही निर्धारित नहीं होता है बल्कि प्रेरणाओं, इच्छाओं, संवेगों आदि से भी नियंत्रित होता है। स्कीनर ने इन आन्तरिक बलों के महत्व की अवहेलना करके बहुत भारी भूल की है।
4. स्कीनर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में वैयक्तिक विभिन्नता के अध्ययन में कोई अभिरूचि नहीं दिखलाया है हालांकि उन्होंने वैयक्तिक प्रयोज्यों का गहन रूप से अध्ययन किया है। उनकी अभिरूचि व्यवहार के सामान्य नियम के प्रतिपादन में अधिक थी।
5. हॉल तथा उनके सहयोगियों ने स्कीनर के सिद्धान्त पर व्यंगात्मक टिप्पणी करते हुए कहा है कि स्कीनर के सिद्धान्त को एक ऐसा व्यक्तित्व का सिद्धान्त कहा जा सकता है जो उन घटनाओं या व्यवहारों की व्याख्या करने की कोशिश करता है जिसे हम सामान्यतः व्यक्तित्व कहते हैं। परन्तु इसे एक व्यक्तित्व सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इनके सिद्धान्त में व्यवहारों का पूर्वकथन करने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए किसी व्यक्तित्व व्याकृति का उपयोग नहीं किया गया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद स्कीनर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व का सिद्धान्त काफी महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है। इस सिद्धान्त के समर्थन में स्वयं स्कीनर द्वारा तथा साथ-ही-साथ उनके शिष्यों द्वारा काफी शोध किये गए हैं और अमेरिकी मनोविज्ञानी स्कीनर के इन महत्वपूर्ण योगदानों के प्रति काफी आभारी हैं।

8.6 व्यक्तित्व के मानवतावादी एवं आत्म-सिद्धान्त का तात्पर्य-

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मानवतावादी दृष्टिकोण एक सबल ''तृतीय बल'' के रूप में स्थापित हुआ जो मूलतः मनोविश्लेषण (प्रथम बल) एवं व्यवहारवाद (द्वितीय बल) का विरोधी था। इसके संस्थापक अब्राहम मासलो थे जिन्होंने मनोविश्लेषण को असामान्य व्यक्तियों का अध्ययन करने वाला दृष्टिकोण बताया तो व्यवहारवाद को पशु व्यवहार की यांत्रिक व्याख्या करने वाला। मासलो के अनुसार मानवों की प्रकृति आदरणीय एवं आत्म-सिद्धि से युक्त होती है। उनमें वर्द्धन तथा अन्तःशक्ति जैसे सर्जनात्मक क्षमता पायी जाती है। मानवतावादी विचारधारा के समर्थक कार्ल रोजर्स ने बताया कि मानव प्रकृति की व्याख्या स्वतंत्रता, विवेकपूर्णता, आत्मनिष्ठता, पूर्णतावाद, अग्रलक्षता आदि के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए तथा व्यक्ति की अनुभूतियों, भावों, मनोवृत्तियों तथा उसके आत्मन् के बारे में तथा दूसरों के बारे में व्यक्तिगत विचारों के अध्ययन पर बल दिया जाना चाहिए।

8.7 मैसलो का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

अब्राहम मैसलो एक मानवतावादी मनोविज्ञानी थे। इन्होंने व्यक्तित्व के प्रति भी मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया व्यवहारवाद तथा मनोविश्लेषण की आलोचना करते हुए इन्होंने कहा कि व्यक्तित्व के अर्थ को इन दोनों ही

विचार धाराओं ने अत्यन्त ही संक्षिप्त एवं सीमित कर दिया है तथा व्यक्तित्व का अध्ययन अत्यन्त ही सीमित दृष्टिकोण से किया है।

मैसलो ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में प्राणी के अनूठापन पर, उसके मूल्यों के महत्व पर तथा व्यक्तिगत वर्धन एवं आत्म-निर्देश की क्षमता पर सर्वाधिक बल डाला है। इस बल के कारण ही उनका मानना है कि सम्पूर्ण प्राणी का विकास उसके भीतर से एक संगठित ढंग से होता है। इन आन्तरिक कारकों की तुलना में बाह्य कारकों जैसे आनुवंशिकता तथा गत अनुभूतियों का महत्व नगण्य होता है। व्यक्तित्व विकास में आन्तरिक बलों पर इतना अधिक बल दिये जाने के कारण उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को व्यक्तित्व का सम्पूर्ण गत्यात्मक सिद्धान्त भी कहा गया है। मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित तीन मुख्य भागों में बाँट कर प्रस्तुत किया जा सकता है-

(क) व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल

(ख) स्वस्थ व्यक्तित्व: आत्म-सिद्ध व्यक्ति का विकास

(ग) व्यक्तित्व का मापन एवं शोध

व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल-

मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका अभिप्रेरण सिद्धान्त है। इनका विश्वास था कि अधिकांश मानव व्यवहार कोई-न-कोई व्यक्तिगत लक्ष्य पर पहुँचने की प्रवृत्ति से निर्देशित होता है। सचमुच में, उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त में यही अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियाएँ मूल सारतत्व है।

शारीरिक या दैहिक आवश्यकता शारीरिक या दैहिक आवश्यकता शारीरिक या दैहिक आवश्यकतामैसलो का मत था कि मानव अभिप्रेरक जन्मजात होते हैं और उन्हें प्राथमिकता या शक्ति के आरोही पदानुक्रम में सुव्यवस्थित किया जा सकता है। ऐसे अभिरकों को प्राथमिकता या शक्ति के आरोही क्रम में इस प्रकार बतलाया

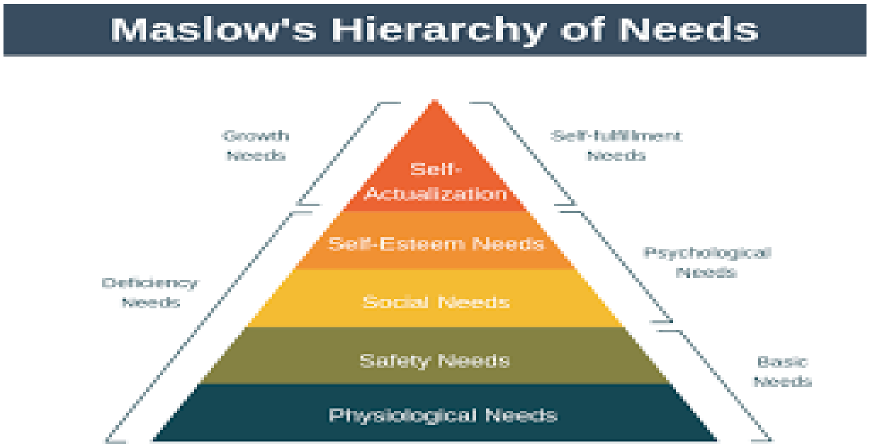

गया है-

मैसलो का पदानुक्रम मॉडल

1. शारीरिक या दैहिक आवश्यकता
2. सुरक्षा की आवश्यकता
3. संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता
4. सम्मान की आवश्यकता
5. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता

इनमें से प्रथम दो आवश्यकताओं अर्थात् शारीरिक या दैहिक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता को निचले स्तर की आवश्यकता तथा अन्तिम तीन आवश्यकताओं अर्थात् संबंद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता तथा आत्म-सिद्धि की आवश्यकता को एक साथ मिलाकर उच्च-स्तरीय आवश्यकता कहा है। इस पदानुक्रमिक मॉडल में जो आवश्यकता जितनी ही नीचे हैं, उसकी प्राथमिकता या शक्ति उतनी ही अधिक मानी गयी है। इस तरह से व्यक्ति में सबसे प्रबल आवश्यकता शारीरिक या दैहिक आवश्यकता होती है जिसकी संतुष्टि तात्कालिक होना अनिवार्य है तथा सबसे कम प्रबल या कमजोर आवश्यकता आत्म-सिद्धि की आवश्यकता होती है।

इस मॉडल की एक प्रमुख बात यह है कि मॉडल के किसी भी स्तर की आवश्यकता को उत्पन्न होने के लिये यह आवश्यक है कि उससे नीचे वाले स्तर की आवश्यकता की संतुष्टि पूर्णतः नहीं तो कम-से-कम अंशतः अवश्य ही हो जाय। मैसलो ने यह भी स्पष्ट किया है कि हम पदानुक्रमिक मॉडल में जैसे-जैसे नीचे से ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं, प्रत्येक स्तर पर आवश्यकताओं की संतुष्टि का प्रतिशत भी धीरे-धीरे कम होता जाता है। उनके अनुसार शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि लगभग 85 प्रतिशत, सुरक्षा आवश्यकताओं की संतुष्टि लगभग 70 प्रतिशत, संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की संतुष्टि लगभग 50 प्रतिशत, सम्मान की आवश्यकता की संतुष्टि लगभग 40 प्रतिशत, तथा आत्म-सिद्धि की आवश्यकता की संतुष्टि लगभग 10 प्रतिशत ही होती है।
पदानुक्रमिक मॉडल के पाँच स्तरों की आवश्यकताओं का वर्णन निम्नांकित हैं-

1. दैहिक या शारीरिक आवश्यकता-

इस श्रेणी की आवश्यकता में भोजन करने की आवश्यकता, पानी पीने की आवश्यकता, सोने की आवश्यकता, यौन की आवश्यकता तथा सीमान्त तापक्रम के बचने की आवश्यकता आदि को सम्मिलित किया गया है। ये सारे जैविक प्रणोदन का सीधा संबंध प्राणी के जैविक सम्पोषण से होता है। इस श्रेणी की आवश्यकता की प्राथमिकता या प्रबलता सबसे अधिक है। फलस्वरूप, व्यक्ति को इससे ऊपर के स्तर की आवश्यकता की ओर बढ़ने के पहले इन जैविक आवश्यकताओं की संतुष्टि एक न्यूनतम स्तर पर करना अनिवार्य है।

2. सुरक्षा की आवश्यकता-

जब व्यक्ति की जैविक आवश्यकताओं की संतुष्टि हो जाती है तो वह पदानुक्रम के दूसरे स्तर की आवश्यकता अर्थात् सुरक्षा की आवश्यकता की ओर अग्रसर होता है और उसका व्यवहार इस आवश्यकता से काफी प्रभावित होने लगता है। इस श्रेणी की आवश्यकता में शारीरिक सुरक्षा, स्थिरता, निर्भरता, बचाव, डर, चिन्ता

आदि की अनुभूतियों से मुक्ति आदि सम्मिलित होते हैं। मैसलो (1970) ने नियम-कानून बनाये रखने की आवश्यकता, विशेष क्रम आदि बनाये रखने की आवश्यकता को भी इसी श्रेणी में सम्मिलित किया है। इस तरह की आवश्यकता बच्चों में अधिक प्रबल होती है क्योंकि वे अन्य लोगों की अपेक्षा अपने आप को अधिक निःसहाय एवं दूसरों पर आश्रित समझते हैं। एक स्वस्थ एवं परिपक्व वयस्क में सुरक्षा की आवश्यकता होती है और वह उसमें संतुलित ढंग से संतुष्ट होता है। मैसलो के अनुसार सुरक्षा की आवश्यकता कुछ खास तरह के तंत्रिकातापी या स्नायुविकृत व्यक्ति जैसे मनोग्रस्ति-वाध्यता के रोगियों में अधिक सुस्पष्ट होता है। ऐसे लोग इर्द-गिर्द के हालातों को खौफनाक एवं खतरनाक समझकर अपने में सुरक्षा की आवश्यकता पर अधिक जोर डालते हैं तथा अधिक समय एवं शारीरिक ऊर्जा की खपत करते हैं और यदि इसके बावजूद भी इन्हें अपने प्रयास में सफलता नहीं मिलती है, तो इससे उनमें एक विशेष तरह की चिन्ता जिसे मैसलो ने मूल चिन्ता कहा है, की उत्पत्ति होती है।

3. संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता-

मैसलो के पदानुक्रम मॉडल में यह तीसरे स्तर की आवश्यकता है। जब व्यक्ति की जैविक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता की पूर्ति बहुत हद तक हो जाती है, तो उसमें संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता उत्पन्न होती है। संबद्धता की आवश्यकता से तात्पर्य अपने परिवार या समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान पाने की इच्छा से तथा किसी संदर्भ समूह की सदस्यता प्राप्त करने से, अच्छे पड़ोसी से संबंध बनाये रखने से होता है। स्नेह की आवश्यकता से तात्पर्य दूसरों को स्नेह देने एवं दूसरों से स्नेह पाने की आवश्यकता से होती है। संबंद्धता की आवश्यकता तथा स्नेह की आवश्यकता चूँकि एक-दूसरे से काफी जुड़े होते हैं, अतः मैसलो ने इसे एक ही श्रेणी में रखा है। स्नेह की आवश्यकता में मैसलो ने यौन को भी रखा है परन्तु इस आवश्यकता को यौन आवश्यकता के तुल्य नहीं माना है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि यौन स्नेह की आवश्यकता को अभिव्यक्त करने का मात्र एक तरीका है। मैसलो (1968) ने यह स्पष्ट किया कि स्नेह की आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होने से व्यक्ति में कुसमायोजन होता है। मैसलो (1968) ने इस बिन्दु पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''स्नेह पाने की भूख एक तरह का अपर्याप्तता रोग है।''

4. सम्मान की आवश्यकता-

सम्मान की आवश्यकता पदानुक्रमिक मॉडल में चौथे स्तर की आवश्यकता है। सम्मान की आवश्यकता व्यक्ति में तब उत्पन्न होती है जब इससे नीचे की तीनों श्रेणियों की आवश्यकताएँ अर्थात् जैविक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता तथा संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की पूर्ति संतोषजनक ढंग से हो जाती है। सम्मान की आवश्यकता में मैसलो ने दो प्रकार की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया है- आत्म-सम्मान की आवश्यकता तथा दूसरों से सम्मान पाने की आवश्यकता। पहले प्रकार की आवश्यकता में उत्तम क्षमता प्राप्त करने की इच्छा, आत्म-विश्वास, व्यक्तिगत वर्धन, उपयुक्तता, उपलब्धि, स्वतंत्रता आदि की भावना सम्मिलित होती है। दूसरों से सम्मान पाने की आवश्यकता में दूसरों से सम्मान, पहचान, प्रशंसा, ध्यान तथा स्वीकृति आदि पाने की इच्छा से

होती है। आत्म-सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति होने से व्यक्ति में आत्म-विश्वास, शक्ति पर्याप्तता एवं श्रेष्ठता के गुण विकसित होते हैं। इन गुणों के परिणामस्वरूप व्यक्ति सभी क्षेत्रों में अपने आप को अधिक योगय एवं उत्पादक समझने लगता है। दूसरी तरफ यदि व्यक्ति में आत्म-सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है, तो व्यक्ति अपने आप को लाचार, कमजोर, हतोत्साहित तथा सम्सयाओं से निपटने की पर्याप्त क्षमता की कमी आदि गुणों से युक्त मानता है। मैसलो ने यह भी स्पष्ट किया कि सही अर्थ में आत्म-सम्मान व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं के वास्तविक मूल्यांकन पर तथा साथ-ही-साथ दूसरों से प्राप्त वास्तविक सम्मान पर आधारित होता है। यह आवश्यक है कि व्यक्ति को दूसरों से मिलने वाला मान-सम्मान अवास्तविक या छिछला न होकर उनके अर्जित योग्यताओं एवं क्षमताओं पर आधारित हो।

5. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता-

मैसलो के पदानुक्रमिक मॉडल का यह सबसे अन्तिम चरण होता है जहाँ व्यक्ति तब पहुँचता है जब इसके नीचे की चारों आवश्यकताओं अर्थात् जैविक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता, संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता तथा सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति संतोषजनक ढंग से हुई हो। आत्म-सिद्धि से तात्पर्य आत्म-उन्नति की एक ऐसी अवस्था से होती है जहाँ व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं अन्तःक्षमताओं से पूर्णरूपेण अवगत होता है तथा उसके अनुरूप अपने आप को विकसित करने की इच्छा करता है। संक्षेप में, आत्म-सिद्धि से तात्पर्य अपनी अन्तःक्षमताओं के अनुरूप अपने आप को विकसित करना होता है।

मैसलो (1968) ने यह स्पष्ट किया कि आत्म-सिद्धि की आवश्यकता की अवस्था पदानुक्रमिक मॉडल के अन्य अवस्थाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि इसके ठीक निचली अवस्था अर्थात् सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर व्यक्ति अन्य अवस्थाओं के समान स्वतः इस अवस्था में अर्थात् आत्म-सिद्धि की अवस्था में नहीं आ जाता है। मैसलो द्वारा आत्म-सिद्ध व्यक्तियों पर किये गए शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि इस अंतिम अवस्था में सिर्फ वही लोग आ पाते हैं जिनमें सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति हुई हो, साथ-ही-साथ, जिनमें बी मूल्यों की परिपूर्णता हो। अगर व्यक्ति ऐसा है जिन्हें सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति तो हुई है परन्तु बी-मूल्यों की कमी हे, तो वैसे लोग आत्म-सिद्धि के इस अंतिम अवस्था में नहीं आ पाते हैं।

मैसलो ने अपने शोध के आधार पर निम्नांकित चार और अन्य ऐसे कारक बतलाये हैं जिसके चलते व्यक्ति इस अंतिम अवस्था में पहुँचने से वंचित रह जाता है। वे चार कारण हैं-

1. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता एक कमजोर या सबसे कम प्रबल आवश्यकता है। फलतः यह अन्य आवश्यकताओं से आसानी से दब जाती है और व्यक्ति इस अवस्था पर पहुँचने की तमन्ना खो देता है।
2. जिन व्यक्तियों में अपनी अन्तःक्षमताओं एवं अन्तःशक्तियों को उन्नत करने पर एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने की आशंका हो जाती है जिसके साथ उनका निपटना संभव नहीं हो सकता है, तो वैसे लोग भी इस

अंतिम अवस्था तक पहुँचने से वंचित रह जाते हैं। इस तरह की मनोग्रन्थि को मैसलो ने जोनाह मनोग्रन्थि कहा है।

3. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता की अवस्था पर व्यक्ति इसलिए भी नहीं पहुँच पाता है क्योंकि इस अवस्था पर जाने के लिए व्यक्ति में पर्याप्त अनुशासन, प्रयास, आत्म-नियंन्त्रण एवं आत्म-साहस की आवश्यकता होती है। इन गुणों के अभाव में व्यक्ति इस अंतिम अवस्था पर पहुँचने से वंचित रह जाता है।
4. जिन व्यक्तियों को बाल्यावस्था में अत्यधिक स्नेह एवं स्वतंत्रता या फिर अत्यधिक तिरस्कार एवं नियंत्रण का सामना करना होता है, वह भी इस अवस्था तक नहीं पहुँच पाते हैं।

पदानुक्रमिक मॉडल की उपर्युक्त पाँच आवश्यकताएँ हैं जिन्हें मैसलो ने मूल आवश्यकता कहा है। इन मूल आवश्यकताओं के अलावा भी कुछ आवश्यकताएँ हैं जिनका व्यक्ति के व्यवहारों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। ऐसे आवश्यकताओं में निम्नांकित प्रधान हैं-

1. संज्ञानात्मक आवश्यकता
2. तंत्रिकातापी आवश्यकता
3. न्यूनता अभिप्रेरक
4. वर्धन अभिप्रेरक

1. संज्ञानात्मक आवश्यकता-

संज्ञानात्मक आवश्यकता से तात्पर्य उन आवश्यकताओं से होता है जो सूचनात्मक होती हैं। इस श्रेणी में मैसलो ने जानने की आवश्यकता तथा समझने की आवश्यकता को रखा है। इन दोनों आवश्यकताओं का एक अपना अलग पदानुक्रम होता है जिसमें प्रबलता के क्रम में पहले जानने की आवश्यकता को रखा गया है और उसके बाद समझने की आवश्यकता को। दूसरे शब्दों में, जानने की आवश्यकता की प्रबलता समझने की आवश्यकता से अधिक होती है। संज्ञानात्मक आवश्यकता का महत्व यह है कि इन आवश्यकताओं को बाधित होने से पदानुक्रमिक मॉडल की पाँचों आवश्यकताओं की संतुष्टि होना दुर्लभ हो जाता है। जैसे, जैविक आवश्यकता की संतुष्टि होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति यह जाने कि भोजन कहाँ है ? सुरक्षा आवश्यकता की संतुष्टि होने के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति यह जाने कि शरणस्थान का निर्माण कैसे किया जाता हैं ? यही बात पदानुक्रमिक मॉडल की अन्य आवश्यकताओं के साथ भी है।

2. तंत्रिकातापी या स्नायुविकृत आवश्यकता-

मैसलो के अनुसार कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जिनकी संतुष्टि से व्यक्ति में स्वास्थ्य का वर्धन नहीं होता है बल्कि व्यक्ति में विकृति, निष्क्रियता आदि बनी रहती है। इसे उन्होंने तंत्रिकातापी आवश्यकता कहा है। ऐसी आवश्यकताओं की उत्पत्ति तब होती है जब व्यक्ति में मूल आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं होती है। जैसे, जब

व्यक्ति की संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होती है तो वह दूसरों के प्रति आक्रामक एवं विद्वेषी हो जाता है जो तंत्रिकातापी या स्नायुविकृत आवश्यकता का एक उदाहरण बनता है।

3. न्यूनता अभिप्रेरक-

इस अभिप्रेरक को मैसलो ने डी-अभिप्रेरक भी कहा है। इस तरह के अभिप्रेरक का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति में न्यून या हीन अवस्थाओं जैसे-भूख, ठंडक, असुरक्षा आदि से उत्पन्न तनाव को दूर करने के लिये प्रेरित करता है। अतः डी-अभिप्रेरक मैसलो के पदानुक्रम मॉडल के निम्न-स्तरीय आवश्यकता के लगभग समान है। मैसलो (1962) ने डी-अभिप्रेरक के निम्नांकित पाँच विशेषताओं पर प्रकाश डाला है-

क. डी-अभिप्रेरक की अनुपस्थिति से व्यक्ति बीमार पड़ जाता है। जैसे, यदि व्यक्ति अपनी भूख मिटाने के लिये भोजन न करे तो वह आसानी से बीमार पड़ जा सकता है।

ख. डी-अभिप्रेरक की उपस्थिति से व्यक्ति में रूग्नता की रोक-थाम होती है। जैसे, व्यक्ति यदि भोजन समय से करता है, तो वह बीमार पड़ने से बच सकता है।

ग. डी-अभिप्रेरक के पुनः स्थापन से व्यक्ति चंगा हो जाता है।

घ. कुछ विशेष परिस्थिति में वंचित व्यक्ति द्वारा डी-अभिप्रेरक को अन्य अभिप्रेरकों की तुलना में पसंद किया जाता है। जैसे, एक भूखा व्यक्ति भोजन को यौन के अनुपात में अधिक पसंद करता है।

ड. आत्म-सिद्ध व्यक्तियों के लिये डी-अभिप्रेरक बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता है। ऐसे व्यक्तियों में इस तरह का अभिप्रेरक कार्यात्मक रूप से अनुपस्थित होते हैं। परन्तु जो लोग आत्म-सिद्ध नहीं होते हैं उनका व्यवहार डी-अभिप्रेरक से अधिक निर्देशित होता है।

4. वर्धन अभिप्रेरक-

वर्धन अभिप्रेरक से तात्पर्य वैसे अभिप्रेरकों से होता है जो व्यक्ति को अपनी अन्तःशक्ति या अन्तःक्षमताओं की पहचान कर उसे विकसित करने के लिये प्रेरित करता है। अतः यह निश्चित रूप से एक उच्च-स्तरीय आवश्यकता है। इसे मैसलो ने मेटा-आवश्यकता या सत्व-अभिप्रेरक या बी-अभिप्रेरक भी कहा है। इस तरह की आवश्यकता या अभिप्रेरक आत्म-सिद्ध व्यक्तियों का मुख्य अभिप्रेरक होता है। बी-अभिप्रेरक की उत्पत्ति व्यक्ति में तब होती है जब उसके डी-अभिप्रेरक की संतुष्टि हो जाती है। मैसलो (1967) ने यह भी स्पष्ट किया है कि मेटा आवश्यकता डी-अभिप्रेरक के समान ही सहज-वृत्ति की होती है। अतः मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए तथा अधिकतम वर्द्धन एवं विकास के लिए ऐसे अभिप्रेरकों की संतुष्टि अनिवार्य है। ऐसा नहीं होने से व्यक्ति मानसिक रूप से बीमार हो जाता है। अपनी अन्तःशक्तियों के अधिकतम विकास की प्राप्ति में असफल रहने पर जो बीमारी उत्पन्न होती है, उसे मैसलो ने मेटारोग कहा है। मैसलो ने मेटा-आवश्यकता में 18 तरह की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया है और उससे संबद्ध मेटारोग का भी वर्णन किया है। ये 18 आवश्यकताएँ हैं- सच्चाई, अच्छाई, सुन्दरता, पूर्णता, द्विभाजन उत्कर्ष, सजीवता, अद्वितीयता, पूर्णता, अनिवार्यता, सम्पूरण, न्याय, क्रम, सरलता, विस्तृतता,

प्रयासशीलता, विनोदशीलता, आत्म-पर्याप्तता, तथा अर्थपूर्णता। प्रत्येक मेटा आवश्यकता से संबंधित कुछ मेटा रोग है। जैसे, सच्चाई जैसी मेटा-आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होने पर व्यक्ति में विश्वासहीनता, शक, कटुता आदि का विकास होता है। अच्छाई जैसी मेटा-आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होने से व्यक्ति में घृणा, अरूचि, विरक्ति आदि जैसे गुण विकसित होते हैं।

स्वस्थ व्यक्तित्व: आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास-

मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त की एक मुख्य विशेषता यह है कि यह सिद्धान्त मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के अध्ययन पर आधारित है। मैसलो ने इन व्यक्तियों का अध्ययन करके आत्मसिद्ध व्यक्तियों की पहचान करने के लिए कुछ खास-खास विशेषताओं का वर्णन किया है। ऐसी विशेषताएँ की संख्या सोलह हैं-

1. ऐसे व्यक्तियों का प्रत्यक्षण वास्तविक होता है अर्थात् उसमें पूर्वाग्रह, अनियमितता आदि की बू नहीं होती है।
2. ऐसे व्यक्ति अपने आप का, दूसरों का तथा वातावरण के अन्य वस्तुओं का प्रत्यक्षण ठीक वैसे ही करते हैं जैसा कि वे होते हैं।
3. ऐसे लोगों में सरलता, स्वाभाविकता तथा सहजता का गुण होता है।
4. ऐसे लोग समस्या-केन्द्रित व्यवहार करते हैं न कि आत्म-केन्द्रित व्यवहार करते हैं।
5. ऐसे लोगों में अनासक्ति का भाव होता है तथा वे गोपनीयता को पसंद करते है।
6. ऐसे लोग स्वतंत्रता तथा स्वायत्ता को पसंद करते हैं।
7. ऐसे लोगों में अन्य लोगों एवं घटनाओं को नवीनतम दृष्टिकोण से न कि घिसी-पिटी ढंग से अवलोकन करने की विशेष शक्ति होती है।
8. ऐसे लोगों में कुछ विशेष अलौकिक शक्ति एवं अनुभूतियाँ होती है जिनसे व्यक्ति अपने आप को काफी आश्वस्त, साहसी एवं निर्णायक समझता है। इसे मैसलो ने शीर्ष अनुभूति कहा है।
9. ऐसे लोगों का संबंध कुछ विशेष महत्वपूर्ण लोगों के साथ अधिक घनिष्ठ होता है तथा ऐसे लोगों में बहुत सारे लोगों के साथ सतही संबंध बनाये रखने की बुरी आदत नहीं होती है।
10. ऐसे लोग प्रजातन्त्रात्मक मूल्य एवं मनोवृत्ति अधिक दिखलाते हैं।
11. ऐसे लोग साधन एवं साध्य में स्पष्ट अन्तर रखकर उस पर पहल करते हैं।
12. ऐसे लोगों के मनोविनोद का भाव विद्वेषी न होकर दार्शनिक होता है।
13. ऐसे लोग सर्जनात्मक प्रवृत्ति के होते हैं।
14. ऐसे लोग संस्कृति के प्रति अनुरूपता नहीं दिखलाते हैं।
15. ऐसे लोग अपने वातावरण के साथ सिर्फ समायोजन ही नहीं करते हैं बल्कि उसकी उत्कृष्टता को भी समझने की कोशिश करते हैं।

मैसलो (1971) ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में यह भी बतलाया है कि व्यक्ति में आत्म-सिद्धि को किस तरह से प्रोत्साहित किया जा सकता है। इन्होंने आत्म-सिद्धि को बढ़ाने या प्रोत्साहित करने के लिए स्कूल को सबसे उत्तम स्थान बतलाया है और कहा है कि छात्रों को अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में रूचियुक्त व्यवसाय की खोज करने तथा उत्तम मूल्यों को समझने के लिये किये गए प्रयासों से आत्म-सिद्धि का विकास होता है।

व्यक्तित्व का मापन एवं शोध-

ऐसे तो स्वयं मैसलो ने व्यक्तित्व मापन के लिए कोई प्रविधि का प्रतिपादन नहीं किया है लेकिन एवरेट शोस्ट्रोम ने आत्म-सिद्धि को मापने के लिये एक विशेष प्रश्नावली का निर्माण किया है जिसे पर्सनल ऑरियन्टेशन इन्वेन्ट्री (पी.ओ.आई.) की संज्ञा दी गयी है। इस परीक्षण में कथनों का 150 युग्म होते हैं और उनमें से व्यक्ति को यह बतलाना होता है कि युग्म का कौन कथन उसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। पी. ओ. आई में दो मुख्य मापनी हैं-समय सामर्थ्यता मापनी तथा आन्तरिक निर्देशन मापनी। समय सामर्थ्यता मापनी द्वारा इस तथ्य का मापन होता है कि व्यक्ति की गतिविधियाँ कहाँ तक अपने वर्तमान समय के अनुरूप होती है तथा आन्तरिक-निर्देशन मापनी इस तथ्य का मापन करता है कि कहाँ तक व्यक्ति महत्वपूर्ण निर्णय एवं मूल्यों के लिये अपने ऊपर न कि दूसरों के ऊपर निर्भर करता है। बाद में शोस्ट्रोम ने पी .ओ. आई. को अधिक उन्नत बताया और उसका नाम पर्सनल ऑरियन्टेशन डाइमेन्सन या पी. ओ. डी. रखा। इसमें 240 एकांश हैं और पी. ओ. आई. से इसका सहसंबंध धनात्मक पाया गया। जोन्स एवं क्रैन्डला (1986) आत्म-सिद्धि को मापने के लिए 15 एकांश वाला एक परीक्षण विकसित किया है। आत्म-सम्मान के दो महत्वपूर्ण तत्व अर्थात् विश्वास तथा लोकप्रियता को मापने के लिये लोर्र एवं ऊण्डर्लिक (1986) ने एक आविष्कारिका विकसित किया है जिसे आत्म-मनोवृत्ति आविष्कारिका कहा गया। स्वयं मैसलो ने व्यक्तित्व मापन के लिए साक्षात्कार, स्वतंत्र साहचर्य, प्रक्षेपण प्रविधियाँ एवं जीवन-संबंधी सामग्रियों का उपयोग करने पर अधिक बल डाला गया था।

स्वयं मैसलो अपने सिद्धान्त के किसी पहलू पर कोई विशेष शोध तो नहीं किये परन्तु अन्य मनोवैज्ञानिकों ने पी. ओ. आई की मदद से कुछ शोध किये हैं। अधिकतर ऐसे शोध सहसंबंधात्मक हैं जिनमें पी. ओ. आई. पर आये प्राप्तांक को व्यक्तित्व या व्यवहार के अन्य मापकों के साथ सहसंबंधित किया गया है।

मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण एवं परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त ने सबसे प्रथम बार व्यक्ति के व्यवहारों को आशावादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोणों से समझने की प्रेरणा प्रदान की। सचमुच में लोग व्यवहारवादी दृष्टिकोण एवं मनोविश्लेषणाात्मक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व की गई व्याख्या से ऊब गये थे। मैसलो के सिद्धान्त ने लोगों को इस ऊब से छुटकारा दिलाया।
2. मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का सामाजिक, नैदानिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में काफी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इससे इस सिद्धान्त की उपयोगिता काफी विस्तृत है। सुल्ज (1990) के अनुसार इस

सिद्धान्त की उपयोगिता मनोचिकित्सा, शिक्षा, चिकित्साशास्त्र तथा संगठनात्मक व्यवस्था आदि में काफी अधिक है।

3. मैसलो द्वारा प्रतिपादित आत्म-सिद्धि का संप्रत्यय आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के लिए एक वरदान साबित हुआ है क्योंकि इस संप्रत्यय के आधार पर मानव की आन्तरिक अंतःशक्तियों को समझने में काफी मदद मिली है।

इन गुणों के बावजूद मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त में कुछ खामियाँ हैं जिन पर भी लोगों ने प्रकाश डाला है। इन खामियों में निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त के विभिन्न संप्रत्यय एक-दूसरे पर काफी अतिच्छादित है। फलतः किसी एक संप्रत्यय का दूसरे संप्रत्यय से अलग कर वर्णन करना या उस पर शोध करना संभव नहीं है। इससे इनके सिद्धान्त में अनावश्यक जटिलता उत्पन्न हो गयी है।
2. सुल्ज (1990) के अनुसार मैसलो ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये मात्र 49 प्रयोज्यों का साक्षात्कार लिया तथा उन पर कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का क्रियान्वयन कर आँकड़े इकट्ठा किये। सुल्ज ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि इतना कम प्रयोज्यों से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित सिद्धान्त को एक वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है।
3. कुछ आलोचकों का मत है कि मैसलो ने अपने अध्ययन में आत्म-सिद्ध व्यक्तियों के बारे में जिन साधनों के माध्यम से आँकड़ों का संग्रहण किया है, वह काफी अस्पष्ट एवं अयथार्थ है। उन्होंने कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं जीवन-कथा संबंधी सामग्रियों के सहारे आत्म-सिद्ध व्यक्तित्यों के बारे में सूचना इकट्ठा किया था। आलोचकों का मत है कि मैसलो ने परीक्षण एवं जीवन-कथा संबंधी सामग्रियों का विश्लेषण कैसे किया था, यह कभी भी उन्होंने स्पष्ट नहीं किया तथा साथ-ही-साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि जीवित व्यक्तियों पर साक्षात्कार एवं स्वतंत्र साहचर्य से प्राप्त अनुक्रियाओं के आधार पर वे यह निष्कर्ष कैसे निकाल पाये कि ऐसे व्यक्ति में से कुछ व्यक्ति आत्म-सिद्ध हैं।

8.8 रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

अब्राहम मैसलों के समान ही रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त भी मानवतावादी विचारधारा से ओत-प्रोत है। इन्होंने व्यक्तित्व की व्याख्या संवृतिशास्त्र या घटना विज्ञान के नियमों के आधार पर की जिसमें व्यक्ति की अनुभूतियों, भावों एवं मनोवृत्तियों तथा उनके अपने बारे में या आत्मन् के बारे में तथा दूसरों के बारे में व्यक्तिगत विचारों का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता है। यही कारण है कि रोजर्स के सिद्धान्त को मानवतावादी आन्दोलन के तहत एक पूर्णतः सांवृत्तिक सिद्धान्त माना गया है। रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को आत्म् सिद्धान्त या व्यक्ति-केन्द्रित सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है।

रोजर्स द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व सिद्धान्त में मानव प्रकृति के बारे में जो पूर्वकल्पनाएँ की गयीं हैं, वे निम्नांकित हैं-

1. इस सिद्धान्त में मानव प्रकृति के कुछ खास-खास पूर्वकल्पनाओं जैसे-स्वतंत्रता, विवेकपूर्णता, पूर्णतावाद, परिवर्तनशीलता, आत्मनिष्ठता, अग्रलक्षता, विषमस्थिति, तथा अज्ञेयता पर अधिक बल डाला गया है।
2. दूसरी तरफ, इस सिद्धान्त में मानव प्रकृति के शरीरगठनात्मक पूर्वकल्पना पर नाम मात्र का बल डाला गया है।

रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है-

क. व्यक्तित्व के स्थायी पहलुएँ

ख. व्यक्तित्व की गतिकी

ग. व्यक्तित्व का विकास

व्यक्तित्व के स्थायी पहलू -

रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त उनके द्वारा प्रतिपादित रोगी-केन्द्रित मनोचिकित्सा से प्राप्त अनुभूतियों पर आधारित है। चूँकि उनके सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों एवं वर्धनों का अध्ययन करना है, अतः इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व संरचना का गहन अध्ययन उस ढंग से नहीं किया गया जिस ढंग से फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में किया था। फिर भी इन्होंने व्यक्तित्व की संरचना के दो महत्वपूर्ण पहलुओं पर बल डाला है जिससे व्यक्तित्व की संरचना के वर्धन में परिवर्तन की संतोषजनक व्याख्या हो पाती है। ये दो पहलू हैं-प्राणी तथा आत्मन्।

1. प्राणी-

रोजर्स (1959) के अनुसार प्राणी एक ऐसा दैहिक जीव है जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से कार्य करताहै। इसमें प्रासंगिक क्षेत्र तथा आत्मन् दोनों ही सम्मिलित होते हैं। रोजर्स का मत है कि प्राणी सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र होता है। इन अनुभूतियों में अपने दैहिक गतिविधियों से संबंधित अनुभूतियाँ, साथ-ही-साथ, बाह्य वातावरण की घटनाओं के प्रत्यक्षण की अनुभूतियाँ, दोनों ही सम्म्लिित होती हैं। रोजर्स के अनुसार सभी तरह की चेतन एवं अचेतन अनुभूतियों के योग से जिस क्षेत्र का निर्माण होता है, उसे प्रासंगिक क्षेत्र कहा जाता है। मानव व्यवहार के होने का कारण यही प्रासंगिक क्षेत्र होता है न कि कोई बाह्य उद्धीपक, जैसा कि स्कीनर ने कहा था। प्रासंगिक क्षेत्र की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसके बारे में स्वयं व्यक्ति ही सही-सही जानता है। कोई दूसरा व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के प्रासंगिक क्षेत्र के बारे में नहीं जान सकता है। हाँ, परानुभूतिक अनुमान के आधार पर कभी-कभी किसी व्यक्ति के प्रासंगिक क्षेत्र के बारे में जाना जा सकता है

2. आत्मन्-

रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र का एक भाग अधिक विशिष्ट हो जाता है जिसे रोजर्स ने आत्मन् की संज्ञा दी है। रोजर्स के अनुसार आत्मन् व्यक्तित्व का एक अलग विमा नहीं होता है जैसा कि फ्रायड के अनुसार अहं व्यक्तित्व का एक अलग विमा होता

है। रोजर्स का मत है किसी व्यक्ति में आत्मन् नहीं होता है बल्कि स्वयं आत्मन् का अर्थ ही सम्पूर्ण प्राणी से होता है।

रोजर्स के अनुसार आत्मन् का विकास शैशवावस्था में होता है जब शिशु की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रूप प्राप्त करने लगता है और ''मैं'' या ''मुझको'' के रूप मेंधीरे-धीरे विशिष्ट होने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि शिशु धीरे-धीरे अपनी पहचान से अवगत होने लगता है। फलतः उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान होने लगता है, उसे सुखद एवं दुखद अनुभूतियों में अन्तर का प्रत्यक्षण होने लगता है तथा वह किसी कसौटी पर अपनी अनुभूतियों की प्रभावशीलता की परख भी करना प्रारंभ कर देता है। रोजर्स के अनुसार आत्मन् के दो उपतंत्र हैं -

क. आत्म-संप्रत्यय

ख. आदर्श-आत्मन्

क. आत्म-संप्रत्यय-

आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से होता है जिससे व्यक्ति अवगत होता है, हालांकि उसका यह प्रत्यक्षण हमेशा सही नहीं होता है। आत्म-संप्रत्यय को व्यक्ति प्रायः विशेष कथनों के रूप में व्यक्त करता है जैसे- ''मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो.......''। आत्म-संप्रत्यय की दो विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि आत्म-संप्रत्यय का एक बार निर्माण हो जाने से उसमें सामान्यतः परिवर्तन नहीं होता है। हाँ, बहुत कोशिश करने से उसमें परिवर्तन हो सकता है। जो अनुभूतियाँ व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय के साथ असंगत होती हैं, उसे व्यक्ति स्वीकार नहीं करता है और यदि स्वीकार भी करता है तो विकृत रूप में। दूसरी विशेषता यह है कि व्यक्ति का आत्म-संप्रत्यय उसके वास्तविक या जैविक आत्मन् से भिन्न होता है। जैविक आत्मन् का कुछ अंश या भाग ऐसा होता है जिससे व्यक्ति अवगत नहीं होता है। अतः इसे आत्म-संप्रत्यय नहीं कहा जा सकता है। परन्तु जैसे ही व्यक्ति उस अंश या भाग से अवगत हो जाता है, वह आत्म-संप्रत्यय बन जाता है। जैसे-यकृत हमारे जैविक संप्रत्यय का एक अंश या भाग है न कि हमारे आत्म-संप्रत्यय का। परन्तु यदि व्यक्ति का यकृत खराब ढंग से कार्य करने लगता है, तो वह उससे अवगत हो जाता है और अब यह आत्म-संप्रत्यय का उदाहरण होगा।

ख. आदर्श आत्मन्-

आत्मन् का दूसरा उपतंत्र आदर्श-आत्मन् है। आदर्श-आत्मन् से तात्पर्य अपने बारे में विकसित किये गए एक ऐसी छवि से होता है जिसे वह आदर्श मानता है। दूसरे शब्दों में, आदर्श आत्मन् में वे सभी गुण आते हैं जो प्रायः धनात्मक होते हैं तथा जिसे व्यक्ति अपने में विकसित होने की तमन्ना करता है। रोजर्स का मत है कि आदर्श आत्मन् तथा प्रत्यक्षित आत्मन् में अन्तर एक सामान्य व्यक्तित्व में नहीं होता है। परन्तु जब इन दोनों में असंगतता विकसित हो जाती है ताकि इन दोनों में स्पष्ट अंतर हो जाता है, तो इससे एक अस्वस्थकर व्यक्तित्व होने का संकेत मिलता है। मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति ''जो वे हैं'' और ''जो वे होना चाहते हैं,'' में कोई अन्तर महसूस नहीं करते हैं।

व्यक्तित्व की गतिकी-

रोजर्स ने अपने व्यक्तित्व गतिकी की व्याख्या करने के लिए एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक का भी वर्णन किया है जिसे उन्होंने वस्तुवादी प्रवृत्ति कहा है। रोजर्स (1959) के शब्दों में, ''वस्तुवादी प्रवृत्ति से तात्पर्य प्राणी में सभी तरह की क्षमताओं को विकसित करने की जन्मजात प्रवृत्ति से होती है जो व्यक्ति को उन्नत बनाने या प्रोत्साहन देने का काम करता है।'' दूसरे शब्दों में वस्तुवादी प्रवृत्ति व्यक्ति की जिन्दगी का एक ऐसा अभिप्रेरक होता है जो व्यक्ति को अपने आत्मन् को उन्नत बनाने तथा प्रोत्साहन देने का काम करता है। रोजर्स के सैद्धान्तिक तंत्र में वस्तुवादी प्रवृति मात्र अकेला अभिप्रेरणात्मक संरचना है। वस्तुवादी प्रवृत्ति के कुछ खास-खास गुण होते हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख है-

1. वस्तुवादी प्रवृत्ति पूरे शरीर की दैहिक क्रियाओं में सुदृढ़ होती है। इसका मतलब यह हुआ कि यह एक जैविक तथ्य है न कि मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति। आंगिक स्तर पर वस्तुवादी प्रवृत्ति व्यक्ति की न्यून आवश्यकताओं जैसे-भूख, प्यास, हवा आदि की आवश्यकता की तो पूर्ति करता ही है साथ-ही-साथ, शरीर के अंगों की संरचनाओं एवं कार्यो को भी सुदृढ़ एवं मजबूत बनाता है।
2. वस्तुवादी प्रवृत्ति का उद्देश्य मात्र तनाव में कमी करना नहीं होता है बल्कि इससे तनाव में वृद्धि भी होती है। दूसरे शब्दों में, रोजर्स का मत था कि व्यक्ति द्वारा लक्ष्य पर पहुँचने से तनाव में जो कमी आती है उससे तो मानव व्यवहार प्रभावित होता ही है साथ-ही-साथ, व्यक्ति का व्यवहार अपने आप को सतत विकसित करने एवं उन्नत बनाने के प्रयास से भी प्रभावित होता है।
3. रोजर्स का मत है कि वस्तुवादी प्रवृत्ति सभी तरह के प्राणियों अर्थात् मानव एवं पशुओं दोनों में ही होती है।
4. वस्तुवादी प्रवृत्ति एक ऐसी कसौटी के रूप में कार्य करती है जिस पर रखकर व्यक्ति अपनी जिन्दगी की अनुभूतियों की परख या मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन को इस प्रक्रिया को जैविक मूल्य निर्धारण प्रक्रिया कहा जाता है। मूल्यांकन के बाद जिन अनुभूतियों द्वारा व्यक्ति अपने आत्मन् को प्रोत्साहित कर पाता है, उसे व्यक्ति स्वीकारात्मक मूल्य देता है तथा जिन अनुभूतियों द्वारा व्यक्ति अपने आत्मन् का विरोध होते पाता है, उसे नकारात्मक मूल्य प्रदान करता है।रोजर्स का मत है कि व्यक्तित्व की दो मुख्य आवश्यकताएँ होती हैं जिनसे उनका व्यवहार लक्ष्य की ओर निर्देशित होता है।
   1. अनुरक्षण आवश्यकता
   2. संवृद्धि आवश्यकता

1. अनुरक्षण आवश्यकता-

इस आवश्यकता के माध्यम से व्यक्ति अपने आप को ठीक ढंग से अनुरक्षित करके रखता है। इससे व्यक्ति अपनी मूलआवश्यकताओं जैसे-भोजन की आवश्यकता, हवा की आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता आदि की संतुष्टि की ओर अग्रसर होता है। इससे व्यक्ति अपने आत्म-संप्रत्यय के विचारों को सुरक्षा भी प्रदान करता है। शायद यही कारण है कि व्यक्ति किसी नये विचार जो उसके आत्म-संप्रत्यय के

विपरीत होता है, उसका विरोध करता है या व्यक्ति उन अनुभूतियों को विकृत कर देता है, जिसे वह अपने आत्म-संप्रत्यय के अनुकूल नहीं पाता है।

2. संवृद्धि आवश्यकता-

यद्यपि व्यक्ति अपने आत्म-संप्रत्यय को यथावत बनाये रखता है और उसमें परिवर्तन साधारणतः नहीं चाहता है, फिरभी उसमें अपने आप को विकसित करने की तथा पहले से और भी अधिक उन्नत बनाने की भी एक प्रेरणा होती है। इसी प्रेरणा को रोजर्स ने संवृद्धि आवश्यकता कहा है। इस संवृद्धि आवश्यकता की अभिव्यक्ति कई रूपों में होती है। जैसे-व्यक्ति द्वारा उन चीजों को सीखना जिनसे उन्हें तुरंत पुरस्कार नहीं मिलता है, एक ऐसी ही आवश्यकता का उदाहरण है। इसके अलावा उत्सुकता, आत्म-अन्वेषण, परिपक्वता, तथा दोस्ती आदि के रूप में भी संवृद्धि आवश्यकता की अभिव्यक्ति होती है।

रोजर्स का मत है कि ऐसे तो वस्तुवादी प्रवृत्ति द्वारा बहुत तरह की आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है परन्तु इनमें दो तरह की आवश्यकताएँ प्रधान होती हैं-

1. स्वीकारात्मक सम्मान तथा
2. आत्म-सम्मान

स्वीकारात्मक सम्मान से तात्पर्य दूसरों द्वारा स्वीकार किये जाने, दूसरों का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होती है। जैसे-जैसे बच्चों में आत्मन् विकसित होते जाता है, इस तरह के स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता तीव्र होने लगती है। दूसरों से बच्चों को सम्मान मिलने पर उत्पन्न संतुष्टि तथा ऐसा सम्मान नहीं मिलने पर उत्पन्न असंतोष के रूप में इस आवश्यकता की अभिव्यक्ति होती हैं इस तरह की आवश्यकता का स्वरूप पारस्परिक होता है। दूसरे शब्दों में, जब कोई व्यक्ति दूसरों को स्नेह, प्यार एवं अनुराग देकर दूसरे के स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता को संतुष्ट करता है तो उससे उसे अपने में भी एक तरह की संतुष्टि होती है। रोजर्स के अनुसार स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता दो तरह की होती है- शर्तपूर्ण स्वीकारात्मक सम्मान तथा शर्तरहित स्वीकारात्मक सम्मान। शर्तपूर्ण स्वीकारात्मक सम्मान में दूसरों का स्नेह, प्यार एवं अनुराग प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा निश्चित किये गए मानदण्डों के अनुरूप व्यक्ति को व्यवहार करना पड़ता है। रोजर्स का मत था कि बच्चों को इस तरह से शर्त रखकर उन्हें प्रेम या स्नेह देना उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है और ऐसे बच्चे एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति बनने से वंचित रह जाते हैं। शर्तहीन स्वीकारात्मक सम्मान में दूसरों का स्नेह, प्यार एवं मान-सम्मान पाने के लिए कोई शर्त नहीं रखी जाती है। माता-पिता द्वारा बच्चों को दिया गया स्नेह एवं मान-सम्मान इसी श्रेणी का सम्मान होता है। इस तरह के सम्मान पाने से बच्चे बहुत तेजी के साथ एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति बनने की ओर अग्रसर होते हैं और रोजर्स ने इस पर अत्यधिक बल डाला है।

आत्म-सम्मान से तात्पर्य इस बात से होता है कि व्यक्ति में अपने-आप को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता भी अर्जित होती है और व्यक्ति में संतोषजनक आत्म-अनुभूतियों से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में, जब व्यक्ति को महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मान-सम्मान मिलता है, तो इससे उसमें धनात्मक आत्म-

सम्मान की भावना या प्रेरणा भी मजबूत हो जाती है। इस तरह से आत्म-सम्मान की आवश्यकता की उत्पत्ति तो स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता से ही होती है, परन्तु एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद यह एक स्वतंत्र एवं आत्म-सतत प्रकृति की हो जाती है।

व्यक्तित्व का विकास-

रोजर्स ने फ्रायड एवं इरिक्सन के समान व्यक्तित्व का कोई अवस्था सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है। दूसरे शब्दों में, रोजर्स ने व्यक्तित्व के विकास का वर्णन विभिन्न चरणों या अवस्थाओं में फ्रायड एवं इरिक्सन के समान नहीं किया है। उन्होंने व्यक्तित्व के विकास में आत्मन् तथा व्यक्तित्व की अनुभूतियों में संगतता को महत्वपूर्ण बतलाया है। जब इन दोनों में अर्थात् व्यक्ति की अनुभूतियों तथा उनके आत्म-संप्रत्यय के बीच अन्तर हो जाता है तो इससे व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है। असंगतता के अन्तर से उत्पन्न इस चिन्ता की रोकथाम के लिए व्यक्ति कुछ बचाव प्रक्रियाएँ प्रारंभ कर देता है। इसे प्रतिरक्षा की संज्ञा दी गयी है। रोजर्स ने दो तरह के प्रतिरक्षात्मक उपायों को महत्वपूर्ण बतलाया है-विकृति तथा खंडन। विकृति में व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की एक अनुपयुक्त व्याख्या करता है ताकि वह आत्म-संप्रत्यय के कुछ अनुकूल दिख पड़े। यहाँ व्यक्ति अनुभूतियों का प्रत्यक्षण तो करता है परन्तु उसका वास्तविक अर्थ वह नहीं समझ पाता है। खंडन में व्यक्ति विरोधी अनुभूतियों को चेतना में लाने से ही इनकार कर देता है, फलतः व्यक्ति में चिन्ता की मात्रा निश्चित रूप से कम हो जाती है। इन दोनों तरह के रक्षात्मक उपायों अर्थात खंडन एवं विकृति का अधिक प्रयोग करने से व्यक्तित्व में दृढ़ता का विकास हो जाता है। यौक्तिकीकरण, क्षतिपूर्ति, स्थिर-व्यामोह, विभ्रम, गलत विश्वास, तथा अन्य तंत्रिकातापी व्यवहार इस तरह की दृढ़ता से उत्पन्न होते हैं।

दूसरी तरफ, यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं होता है, अर्थात् उनमें संगति होती है, तो इससे एक स्वस्थ व्यक्ति का विकास होता है। इस तरह के स्वस्थ व्यक्तित्व को रोजर्स ने एक तकनीकी नाम अर्थात् पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति कहा है। ऐसे व्यक्ति से रोजर्स का तात्पर्य उन व्यक्तियों से होता है जो अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं का सही-सही प्रयोग करते हैं, अपनी अन्तःशक्तियों की अच्छी पहचान करते हैं तथा अपनी अनुभूतियों एवं पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में विश्वास के साथ अग्रसर होते हैं। रोजर्स (1961) ने एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति के निम्नांकित पाँच गुण बतलाये हैं-

1. एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति स्पष्ट शब्दों में करते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की माँगों पर ध्यान देते हैं और उसके अनुरूप व्यवहार करने की कोशिश करते हैं। वे इन अनुभूतियों का दमन नहीं करते हैं । ऐसे व्यक्ति अपने धनात्मक अनुभूतियों, जैसे-प्रशंसा, प्रोत्साहन आदि में बचाव प्रक्रियाओं का प्रयोग कम-से-कम करते हैं। ऐसे व्यक्ति की प्रकृति अधिक सांवेगिक होती है क्योंकि वे दोनों तरह की अनुभूतियों का, अर्थात् धनात्मक अनुभूतियों एवं ऋणात्मक दोनों तरह की अनुभूतियों का सामना करते हैं।

2. एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की दूसरी विशेषता यह है कि जिन्दगी के प्रत्येक क्षण का उपयोग ऐसे व्यक्ति सही अर्थ में करते हैं तथा प्रत्येक क्षण में कैसे रहना चाहिए, उसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान होता है। इस तरह की अवस्था को रोजर्स ने 'अस्तित्वात्मक रहन-सहन' कहा है। ऐसे व्यक्ति जिन्दगी के प्रत्येक क्षण में एक नया अनुभव प्राप्त करते हैं। फलस्वरूप प्रत्येक क्षण उनके लिए नया होता है और किसी क्षण में वे क्या करेंगे या नहीं करेंगे, इसका पहले कोई भी व्यक्ति अनुमान नहीं लगा सकता है।
3. एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की तीसरी विशेषता यह है कि ऐसे व्यक्ति एक निश्चित विश्वास के साथ व्यवहार करते हैं और उन्हें अपने व्यवहार की सार्थकता पर पूर्ण विश्वास होता है। ऐसे व्यक्ति कोई व्यवहार करते समय सामाजिक मानकों द्वारा कम निर्देशित होते हैं तथा अपने जैविक अनुभूतियों से प्राप्त अनुभूतियों की पुकार के अनुरूप यह निश्चित करते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए। इसे रोजर्स ने एक तकनीकी नाम दिया है जिसे जैविक विश्वास कहा जाता है।
4. रोजर्स के अनुसार एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की चौथी विशेषता आनुभाविक स्वतंत्रता है। आनुभाविक स्वतंत्रता से तात्पर्य व्यक्ति की इस अनुभूति से होता है कि वह कोई भी कार्य करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होता है तथा अपने प्रत्येक व्यवहार एवं उसके परिणाम के लिए वह स्वयं ही जिम्मेवार है।
5. पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सर्जनात्मकता का गुण होता है। ऐसे व्यक्ति रचनात्मक ढंग से अपना समय व्यतीत करते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ण भरपाई करने की कोशिश करते हैं। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थितियों के साथ रचनात्मक ढंग से समायोजन कर लेते हैं।

रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्त के कुछ गुण है तो कुछ परिसीमाएँ भी हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित है-

1. रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त मनोचिकित्सा तथा वर्ग शिक्षण के लिए एक महा वरदान साबित हुआ है, विशेषकर मनोचिकित्सा के क्षेत्र में अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त की उपयोगिताओं की संपुष्टि की है।
2. रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त का अन्य महत्वपूर्ण गुण रोजर्स द्वारा आत्मन् पर बल दिया जाना है। उन्होंने मानवतावादी आन्दोलन के तहत जो सांवृत्तिक व्याख्या प्रदान की है, वह अपने आप में अनूठा है। इस तरह की व्याख्या कि प्रत्येक व्यक्ति में अपनी अन्तःशक्तियों को पहचानने और उसके अनुरूप व्यवहार करने की अद्भुत क्षमता होती है, हमें व्यक्तित्व के किसी और सिद्धान्त में देखने को नहीं मिलता है।
3. रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त में आन्तरिक संगतता अधिक है तथा प्रत्येक संप्रत्यय को ठोस शब्दों में परिभाषित करने की कोशिश की गयी है। इस सिद्धान्त से भविष्य के व्यक्तित्व सिद्धान्तवादी अच्छा सबक ले सकते है और उसी के अनुरूप व्यक्तित्व सिद्धान्त तैयार करने में सही मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

इन गुणों के बावजूद रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त की दो प्रमुख आलोचनाएँ हैं जो निम्नांकित है-

1. रोजर्स ने अपने इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया है कि संवृद्धि तथा वस्तुवादिता के जन्मजात अन्तःशक्तियों से उनका क्या तात्पर्य था। सचमुच में संवृद्धि एवं वस्तुवादिता इस सिद्धान्त के दो प्रमुख स्तंभ हैं जिसके बारे में आलोचकों ने उपर्युक्त प्रश्न को उठाया है। इनसे संबंधित कई प्रश्नों का उत्तर हमें रोजर्स के सिद्धान्त में नहीं मिलता है। जैसे, क्या ऐसी अन्तःशक्तियाँ मूलतः शारीरिक होती हैं या मूलतः मनोवैज्ञानिक होती हैं ? क्या इन अन्तःशक्तियों में वैयक्तिक विभिन्नता होती है अर्थात् क्या ऐसी अन्तःशक्तियाँ कुछ व्यक्तियों में अधिक तथा कुछ व्यक्तियों में कम पायी जाती है?
2. रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने व्यक्तित्व के अध्ययन करने का सबसे उत्तम तरीका व्यक्ति की अनुभूतियों की परख करना बतलाया है। उन्होंने ऐसा इसलिए दावा किया है क्योंकि वे प्रायः मनोचिकित्सा करते समय रोगियों के आत्म-निवेदनों को सुनते थे तथा उनकी अनुभूतियों को ठीक ढंग से परखने की कोशिश करते थे। आलोचकों का मत है कि इस तरीके को सही नहीं माना जा सकता है क्योंकि इससे उन कारकों तथा बलों का पता नहीं चलता है जिससे रोगी सामान्यतः अवगत नहीं होता है अर्थात् संभवतः वे उसके अचेतन अवस्था में होते हैं परन्तु रोगी के व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करते हैं।

इन आलोचनाओं के बावजूद रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त अपनी अहमियत रखता है क्योंकि इसमें मानव व्यक्तित्व के प्रति विवेकी एवं स्वीकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व की व्याख्या क्लासिकी अनुकूलन के आधार पर की -

(अ) पैवलव (ब) स्कीनर

(स) मासलो (द) रोजर्स

2 व्यवहार की व्याख्या के लिए पुनर्बलन अनुसूची किस मनोवैज्ञानिक ने प्रस्तुत की-

(अ) बान्दुरा (ब) पैवलव

(स) स्कीनर (द) टॉलमैन

3. मासलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त को किस उपागम के अन्तर्गत रखा गया है -

(अ) मनोगत्यात्मक उपागम (ब) मानवतावादी उपागम

(स) अधिगम उपागम (द) मनो-सामाजिक उपागम

8.9 सार-संक्षेप-

व्यक्तित्व का अधिगम सिद्धान्त व्यक्तित्व के निर्माण और विकास में क्लासिकी तथा क्रियाप्रसूत अनुकूलन की भूमिका को महत्वपूर्ण मानता है तथा मानव स्वभाव की व्याख्या सीखे गये व्यवहार के समुच्चय के रूप में करता है।

पैवलव ने क्लासिकी अनुकूलन के आधार पर व्यक्तित्व एवं मानव स्वभाव की व्याख्या की।

स्कीनर ने क्रियाप्रसूत व्यवहार के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या की तथा व्यवहार घटित होने में पुनर्बलन की भूमिका को महत्वपूर्ण माना।

मैस्लो ने व्यक्तित्व की व्याख्या मानवतावादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में की तथा आत्म-सिद्धि की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य माना।

रोजर्स ने आत्म-सिद्धान्त के स्थापन में व्यक्ति की अनुभूतियों, भावों एवं मनोवृत्तियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया तथा मानव स्वभाव की व्याख्या उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियों का अध्ययन कर करने पर बल दिया।

8.10 पारिभाषिक शब्दावली-

अनुकूलन-किसी अस्वाभाविक या तटस्थ उत्तेजना से किसी स्वाभाविक अनुक्रिया का जुड़ जाना अनुकूलन कहलाता है।

प्रतिवादी व्यवहार-वैसा व्यवहार जो व्यक्ति वातावरण के ज्ञात उद्धीपकों के प्रति स्वतः एवं अनैच्छिक रूप से करता है।

क्रियाप्रसूत व्यवहार-वैसा व्यवहार जो वातावरण के किसी स्पष्ट उद्धीपक द्वारा उत्पन्न नहीं होता, बल्कि इसे व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छा से करता है।

आत्म-सिद्धि - आत्म-उन्नति की एक ऐसी अवस्था जहाँ व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं अन्तःक्षमताओं को विकसित करने की इच्छा करता है।

आदर्श आत्मन्-व्यक्ति के स्वयं के बारे में विकसित की गई एक ऐसी छवि जिसे वह आदर्श मानता है।

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. अ   2. स   3. ब

8.12 संदर्भ-ग्रन्थ

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5. Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.

6. Eysenck – The scientific study of personality

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. पैवलव के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या करें।
2. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में स्कीनर के विचारों को प्रस्तुत करें।
3. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मानवतावादी विचारधारा से आप क्या समझते हैं? मासलो के आत्म-सिद्धि सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
4. रोजर्स द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त पर प्रकाश डालें।
5. टिप्पणी लिखें-

1. पुनर्बलन अनुसूची
2. मेटा-आवश्यकता
3. आत्म-संप्रत्यय

इकाई 9 व्यक्तित्व का डोलार्ड एवं मिलर सिद्धान्त
(Dollard and Miller Theory of Personality)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का परिचय
9.4 डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन
9.5 सार संक्षेप
9.6 पारिभाषिक शब्दावली
9.7 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न
9.8 संदर्भ-ग्रन्थ
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.1 प्रस्तावना-

व्यक्तित्व की व्याख्या हेतु विकसित विभिन्न सिद्धान्तों में डोलार्ड एवं मिलर का उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त एक अधिगम आधारित सिद्धान्त है जो व्यक्तित्व की व्याख्या सीखे गये व्यवहार के साथ-साथ मनोविश्लेषमात्मक दृष्टिकोण से भी करता है।

प्रस्तुत इकाई में डोलार्ड एवं मिलर द्वारा वर्णित विभिन्न संप्रत्ययों पर प्रकाश डाला गया है तथा इन संप्रत्ययों के आलोक में व्यवहार के विभिन्न आयामों को समझने की कोशिश की गई है।

इस सिद्धान्त के अध्ययन से आपको व्यक्तित्व के अन्य अधिगम सिद्धान्तों से इस सिद्धान्त की तुलना करना आसान होगा, साथ-ही, व्यक्तित्व को नये ढंग से समझने में मदद मिलेगी।

9.2 उदेश्य -

इस इकाई का अध्ययन करने के पष्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें,
2. इस व्यक्तित्व सिद्धान्त के प्रमुख संप्रत्ययों का उल्लेख कर सकें तथा
3. इस सिद्धान्त की तुलना दूसरे व्यक्तित्व सिद्धान्तों से कर सकें।

9.3 डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का परिचय-

व्यक्तित्व का यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन एक समाजशास्त्री और एक मनोवैज्ञानिक ने मिलकर किया। अतः व्यक्तित्व का यह सिद्धान्त एक अन्तर्विषयक उपागम (इन्टर डिसिलिनरी अप्रोच) है।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जॉन डोलार्ड एक समाजशास्त्री थे, जबकि नील मिलर एक मनोवैज्ञानिक थे।

इनके सिद्धान्त में हमें तीन तत्वों का एक अनोखा संगम देखने को मिलता है। वे तीन तत्व हैं-सीखने का प्रयोगात्मक अध्ययन, व्यक्तित्व विकास का मनोविश्लेषणात्मक उपागाम तथा व्यवहार को समझने में अंतर्दृष्टि। अगर ध्यानपूर्वक देखा जाए तो डोलार्ड तथा मिलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त हल-स्पेन्स उपागम पर आधारित हैं जिसका संबंध व्यवहार की उत्पत्ति में अभिप्रेरण के महत्व को दिखलाना एवं उन तरीकों को बतलाना है जिससे सीखे गये अभिप्रेरक का विकास व्यक्तियों में होता है। इसीलिए इस सिद्धान्त को व्यक्तित्व का उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त भी कहते हैं।

डोलार्ड तथा मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त में उद्धीपक तथा अनुक्रिया के बीच में सीखे गए साहचर्य पर अधिक बल डाला गया है और इसी के सहारे कई महत्वपूर्ण संप्रत्ययों की व्याख्या की गयी है। इस सिद्धान्त के प्रमुख संप्रत्यय इस प्रकार हैं-

1. सीखने के मूल-तत्व
2. उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएँ
3. अनुकरण
4. भय एवं चिन्ता
5. संघर्ष
6. दमन एवं अचेतन
7. व्यक्तित्व का असामान्य विकास
8. मनोचिकित्सा

इन संप्रत्ययों तथा उनके महत्व का वर्णन निम्नांकित हैं-

9.3.1 सीखने के मूल-तत्व

डोलार्ड तथा मिलर (1950) का मत है कि अधिकतर मानव व्यवहार अर्जित होते हैं। इनका कहना है कि सीखने की परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी असमान क्यों न हों, किसी भी व्यवहार को सीखने में चार मूल-तत्व सम्मिलित होते हैं। इन्हीं चारों तत्वों के आधार पर साधारण सीखना या जटिल सीखना की व्याख्या की जा सकती है। इनके चार मूल तत्व निम्नलिखित हैं-

1. प्रणोद
2. संकेत
3. अनुक्रिया
4. पुनर्बलन

इन चारों के महत्व को दिखलाने के लिए उन्होंने एक प्रयोग किया है जिसका वर्णन यहाँ अपेक्षित है। यह प्रयोग एक 6 साल की लड़की पर किया गया। इस प्रयोग में एक कमरा में रखे आलमारी के सबसे नीचे वाले खाने में रखे कई किताबों में से बीच के एक किताब में उस लड़की की मनपसंद मीठा टॉफी छिपा कर रख दिया गया है।

कमरे में लड़की को, जो कुछ घंटों से भूखी थी, बुलाकर यह कहा गया कि आलमारी के एक किताब में मीठी टॉफी छुपाकर रखी गयी है। वह उसे ढूँढ निकाले। यह भी कहा गया कि इस खोज के सिलसिले में वह एक-एक करके जिन किताबों को हटाये, उसे वह अलग रखते जाय। परिणाम में देखा गया कि प्रयोग के प्रथम चरण में लड़की ने कई तरह के यादृच्छिक व्यवहार, जैसे-ऊपरी खाने के किताबों को ढूँढना, आलमारी में रखे मैगजीन एवं टेबुल पर रखे किताबों को उलटना पुलटना आदि, किया। अन्त में करीब 210 सेकंड लगाकर एवं 36 गलत किताबों को प्रतिस्थापित करने के बाद वह मीठी टॉफी ढूँढ निकालने में समर्थ हो गयी। पुरस्कार के रूप में लड़की को टॉफी खाने दिया गया। दूसरी बारी में दूसरी मीठी टॉफी उसी किताब में छिपाकर रखा गया। लड़की को कमरे में बुलाकर पहले की तरह ही निर्देष दिये गये और वह टॉफी खोजना प्रारंभ कर दी। इस बार वह सीधे निचले खाने में खोजना प्रारंभ कर दी और करीब 12 किताबों को प्रतिस्थापन करने के बाद तथा मात्र 86 सेकंड में वह टॉफी खोज निकालने में समर्थ हुई। यह प्रयोग 10 प्रयासों तक चला और 10वें प्रयास के अन्त में लड़की ने टॉफी खोजने में कोई भी त्रुटि नहीं की तथा इस प्रयास में वह मात्र 2 सेकेंड का समय ली।

इस प्रयोग के माध्यम से उन्होंने उपर्युक्त चारों संप्रत्ययों के महत्व का वर्णन किया है जो निम्नलिखित है-

1. अन्तोंद या प्रणोद-

प्रणोद से तात्पर्य किसी भी ऐसी शक्तिषाली उद्धीपक से होता है जो प्राणी को क्रिया करने के लिए तो प्ररित करता है परन्तु उस क्रिया के स्वरूप का निर्धारण नहीं करता है। प्रणोद की शक्ति उद्धीपक की शक्ति, जिससे प्रणोदन उत्पन्न होता है, पर निर्भर करता है। जितना ही प्रणोद मजबूत होगा, उससे प्राणी में उतना सतत व्यवहार उत्पन्न होता है। उपर्युक्त प्रयोग में भूख लड़की में एक प्रणोद का उदाहरण है जो सचमुच में एक तरह का जन्मजात प्रणोद है। इसके अलावा कुछ प्रणोद जन्मजात न होकर अर्जित होते हैं। ऐसे प्रणोद को व्यक्ति अपने जीवनकाल में सीखता है। जैसे, रूपया-पैसा प्रारंभ में शिषु के लिये न तो धनात्मक होता है और न ही ऋणात्मक होता है। परन्तु धीरे-धीरे वह उसके प्रति धनात्मक महत्व देना सीख लेता है।

2. संकेत-

संकेत से डोलार्ड एवं मिलर का तात्पर्य वैसे उद्धीपक से है, जो यह बतलाता है कि कब, कहाँ तथा कैसे प्राणी द्वारा अनुक्रियाएँ की जाती हैं। संकेत तीव्रता एवं प्रकार के दृष्टि से भिन्न होता है। जैसे, प्रकार की दृष्टि से संकेत श्रव्य तथा चाक्षुष मुख्य दो तरह के होते हैं तथा तीव्रता के दृष्टिकोण से संकेत कमजोर या तीव्र कुछ भी हो सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में लड़की श्रव्य संकेत के आधार पर अर्थात् प्रयोगकर्ता से मिले शाब्दिक निर्देष के आधार पर अनुक्रिया अर्थात् टॉफी खोजने की अनुक्रिया कर रही थी। इसके अलावा चाक्षुष संकेत जैसे आलमारी के एक खाने से दूसरे खाने में अन्तर करना, किताबों के बीच अन्तर करना आदि के आधार पर भी अनुक्रिया कर रही थी।

3. अनुक्रिया-

डोलार्ड तथा मिलर (1950) के अनुसार अनुक्रिया से तात्पर्य प्राणी द्वारा प्रणोद तथा संकेत के प्रतिक्रिया के रूप में होने वाला व्यवहार से होता है। उपर्युक्त उदाहरण में लड़की द्वारा उस उपयुक्त एवं सही किताब को उठाना जिसमें टॉफी छिपायी गयी थी, एक अनुक्रिया का उदाहरण है। किसी भी दी हुई परिस्थिति में कुछ अनुक्रियाएँ की होने की संभावनाएँ अन्य अनुक्रियाओं की तुलना में अधिक होती है। अनुक्रिया के होने के इस मौलिक क्रम को अनुक्रिया का प्रारंभिक पदानुक्रम कहा जाता है। इससे फिर अनुक्रिया के होने की संभावना में भी परिवर्तन हो जाता है। इसे अनुक्रिया का परिणामी पदानुक्रम कहा जाता है। जैसे, उपर्युक्त उदाहरण में लड़की द्वारा प्रारंभ में कई किताबों में टॉफी का खोजा जाना, कई तरह से संबंधित प्रश्नों को करना तथा अन्य कई संबंधित व्यवहारों को करना आदि अधिक की जाती थीं परन्तु बाद के प्रयासों में ऐसी गलत अनुक्रियाएँ कम की जाती थीं तथा सही अनुक्रिया के होने की संभावना अधिक होती थी।

4. पुनर्बलन-

पुनर्बलन से डोलार्ड तथा मिलर का तात्पर्य एक ऐसी घटना से था जो संकेत तथा अनुक्रिया के बीच के संबंध को मजबूत करके भविष्य में अनुक्रिया के होने की संभावना को बढ़ाता है। इन लोगों के अनुसार किसी अनुक्रिया को सीखने के लिए पुनर्बलन या पुरस्कार का होना अनिवार्य है। इन लोगों ने पुनर्बलन को प्रणोद में कमी के रूप में परिभाषित किया है और कहा है कि जब कोई घटना से प्राणी के प्रणोद जैसे-भूख, प्यास आदि में कमी हो जाती है तो इसके बाद होने वाली अनुक्रिया पुनर्बलित हो जाती है और बाद में फिर उसी अनुक्रिया को व्यक्ति दोहराना चाहता है। उपर्युक्त उदाहरण में लड़की द्वारा उपयुक्त अनुक्रिया के बाद टाफी प्राप्त कर लेना एक पुनर्बलन का उदाहरण है। टॉफी खा लेने से लड़की की भूख अर्थात् प्रणोद में कमी आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप टॉफी खोजने की अनुक्रिया पुनर्बलित हो जाती है। यही कारण है कि लड़की आगे के प्रयासों में इस अनुक्रिया को अधिक दृढ़ता के साथ दोहराती है।

डोलार्ड तथा मिलर (1959) ने अपने सिद्धान्त में सीखने के सिद्धान्त के कुछ अन्य संप्रत्ययों की भी व्याख्या की है जिनमें प्रमुख हैं-प्रयोगात्मक विलोपन, स्वतः पुनर्लाभ, सामान्यीकरण तथा विभेद।

1. प्रयोगात्मक विलोपन-

जब सीखी गयी अनुक्रिया धीरे-धीरे अपुनपुर्बलित होती जाती है, तो अन्त में एक ऐसी अवस्था आती है जहाँ प्राणी उस अनुक्रिया को करना पूर्णतः बन्द कर देता है। इसे ही प्रयोगात्मक विलोपन की संज्ञा दी जाती है। एक धूम्रपान करने वाला व्यक्ति जब यह अनुभव करने लगता है कि सिगरेट पीने से उसे संतुष्टि नहीं हो रही है, तो वह धीरे-धीरे सिगरेट पीना कम कर दे सकता है और अन्त में वह सिगरेट पीना बन्द भी कर दे सकता है। कुछ अनुक्रियाएँ ऐसी होती हैं जिनकी विलोपन गति तीव्र होती है तथा कुछ ऐसी अनुक्रियाएँ होती हैं जिनकी विलोपन गति धीमी होती है। डोलार्ड तथा मिलर (1959) ने अपने शोधों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि अन्य बातों

के अलावा विलोपन गति इस कारक या तथ्य से प्रभावित होती है कि वह आदत जिसका विलोपन होता है, कितनी मजबूत होती है। आदत जितनी ही मजबूत होगी, उसके विलोपन की गति उतनी ही धीमी होगी।

2. स्वतः पुर्नलाभ-

जब कोई विलोपित अनुक्रिया अचानक बिना किसी पुनर्बलन के ही पुनः प्राणी द्वारा की जाती है तो उसे स्वतः पुनर्लाभ कहा जाता है। जैसे, यदि कुछ दिनों या महीनों तक धूम्रपान बन्द कर देने के बाद प्राणी भयानक धूम्रपान करना प्रारंभ कर देता है, तो वह स्वतः पुनर्लाभ का उदाहरण होगा। विलोपन तथा स्वतः पुनर्लाभ दोनों से ही व्यक्ति में अनुकूली व्यवहार विकसित होते हैं। चूँकि अपुनर्बलित अनुक्रियाएँ धीरे-धीरे विलोपित हो जाती हैं, व्यक्ति उसके जगह पर पहले से अधिक संतुष्टि प्रदान करने वाली क्रिया को सीखकर अपने व्यवहार को अधिक अनुकूली बनाता है।

3. सामान्यीकरण-

एक सीखी गयी अनुक्रिया का प्रभाव दूसरी अनुक्रिया पर होना ही सामान्यीकरण कहलाता है। दो परिस्थितियों में संकेतों का पैटर्न लगभग समान होता है, तो इससे सामान्यीकरण अधिक होता है। जैसे, कोई व्यक्ति यदि ब्राण्ड 'अ' सिगरेट पी लेता है तो वह ब्राण्ड 'ब' सिगरेट भी पीने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखलायेगा। डोलार्ड तथा मिलर ने यह बतलाया है कि जैसे-जैसे प्रणोद की शक्ति बढ़ती जाती है, सामान्यीकृत अनुक्रिया की शक्ति भी बढ़ती जाती है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति ब्राण्ड 'अ' सिगरेट ही अधिक पीता है परन्तु कई हतों से किसी कारण से वह उसे नहीं पी पाया है, तो वह एक ऐसा सिगरेट भी पीने के लिए तैयार हो जाएगा जिसकी महक एवं कष उसे बिल्कुल ही पसंद नहीं है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उसमें कई हतों से सिगरेट नहीं पीने से प्रणोद में वृद्धि हो गयी थी।

4. विभेद-

विभिन्न संकेत के पैटर्नो में अन्तर के प्रत्यक्षण को ही विभेदन कहा जाता है। जब एक संकेत पैटर्न के प्रति की गयी अनुक्रिया पुरस्कृत होती है परन्तु दूसरा संकेत पैटर्न के प्रति की गयी अनुक्रिया पुरस्कृत नहीं होती है तो इससे विभेद की उत्पत्ति होती है और व्यक्ति दो संकेत पैटर्न के बीच विभेदन करना सीख लेता है। विभेदन का आधार प्रायः संकेत का रंग, आकार, प्रकार, समय, जगह आदि होता है। डोलार्ड तथा मिलर (1950) के अनुसार व्यक्तित्व में जो अन्तर देखने को मिलता है, उसका आंशिक कारण व्यक्ति के विभेदन करने की परिवर्ती क्षमताएँ तथा समान अनुक्रियाओं के पुनर्बलन एवं अपुनर्बलन से उत्पन्न होने वाली विभिन्न अनुभूतियाँ होती हैं।

9.3.2 उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएँ-

डोलार्ड तथा मिलर (1959) का मत है कि वातावरण के साथ व्यक्ति की अन्तःक्रियाएं दो तरह की होती है। पहले प्रकार की अन्तःक्रियाएँ वे हैं जिनका प्रभाव वातावरण पर तुरंत पड़ता है और ऐसे अन्तःक्रिया में प्रायः एक ही संकेत होते हैं। जैसे, चलते साइकिल के सामने किसी व्यक्ति के आ जाने पर अचानक साइकिल को रोक देना एक ऐसी ही अन्तःक्रिया के उदाहरण हैं। दूसरे तरह की अन्तःक्रियाओं को संकेत उत्पन्न अनुक्रिया कहा जाता है

जिसमें व्यक्ति के मन में एक संकेत से ही कई तरह की अनुक्रियाएँ एक-एक करके उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसी अन्तःक्रियाओं में कई तरह की आन्तरिक घटनाएँ जिसे चिन्ता कहा जाता है, सम्मिलित होती है। जैसे, जनरल ओर देखकर मन में यह याद आ जाना कि दंतमंजन लेना है, और फिर यह देखना कि पॉकेट में पर्याप्त रूपया है या नहीं, संकेत उत्पन्न अनुक्रिया के उदाहरण हैं। संकेत उत्पन्न व्यवहार स्पष्ट एवं अस्पष्ट कुछ भी हो सकता है। संकेत उत्पन्न व्यवहार द्वारा कई तरह के कार्य किये जाते हैं जिनमें सामान्यीकरण तथा विभेदीकरण प्रधान है। डोलार्ड तथा मिलर के अनुसार, बोली गयी भाषा, चिन्तन, लिखित भाषा तथा भावभंगिमा सभी संकेत उत्पन्न अनुक्रिया के उदाहरण हैं। बहुत-सी ऐसी अनुक्रियाओं से दूसरों के साथ संचार स्थापित करने में मदद मिलती है। तर्कणा एक दूसरा प्रमुख उच्चतर मानसिक प्रक्रिया है जिस पर डोलार्ड तथा मिलर ने बल डाला है। तर्कणा को प्रयत्न एवं भूल की अपेक्षा समस्या समाधान की एक अधिक उपयुक्त विधि समझा गया है। तर्कणा द्वारा व्यक्ति उपयुक्त अनुक्रियाओं को चुनने में सफल हो जाता है जिससे समाधान में तीव्रता आ जाती है। इससे भविष्य में किए जाने वाले कार्यो को योजना बनाने में मदद मिलती है। चूँकि तर्कणा में संकेत उत्पन्न अनुक्रियाओं का प्रयोग होता है, इसलिए कई प्रयत्न एवं भूल वाले कदम अपने-आप समाप्त हो जाते हैं और कुछ पूर्व पुनर्बलित अनुक्रियाएँ एक क्रम में आगे आने लगती है। कुछ तर्कणा में व्यक्ति लक्ष्य से ही प्रारंभ कर पीछे की ओर तब तक जाता है जब तक कि वह सही अनुक्रिया नहीं कर लेता है। कई समस्याओं का समाधान व्यक्ति इस दूसरे तरह की तर्कणा के आधार पर भी करता है।

9.3.3 अनुकरण-

डोलार्ड तथा मिलर (1950) ने प्रारंभ में अनुकरण को एक सीखा गया व्यवहार माना था। परन्तु बाद में उन्होंने इसे एक जन्मजात प्रवृत्ति माना है जो सीखना या प्रशिक्षण द्वारा परिवर्तित होती है। उन्होंने अनुकरण के तीन प्रकार बतलाये हैं-समान व्यवहार, नकल उतारने वाला व्यवहार तथा समेल आधारित व्यवहार।

1. समान व्यवहार-

समान व्यवहार दूसरों को देखकर या बिना देखे हुए ही सीखा जाता है। जब किसी संकेत के प्रति प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होकर एक समान व्यवहार करता है, तो इसे ही डोलार्ड एवं मिलर ने समान व्यवहार की संज्ञा दी है। घंटी की आवाज सुनकर वर्ग से बच्चों का निकलना एक समान व्यवहार का उदाहरण है।

2. नकल उतारने वाला व्यवहार-

जब कोई व्यक्ति सचेत होकर किसी खास उदेश्य से दूसरे के व्यवहार के समान अपना व्यवहार बनाने की कोषिष करता है, तो उसे नकल उतारने वाला व्यवहार कहा जाता है। इस तरह का व्यवहार समान व्यवहार से इस अर्थ में भिन्न होता है कि इसमें व्यक्ति में सचेतता एवं एक उद्देश्य होता है जबकि समान व्यवहार करने में व्यक्ति में कोई ऐसा निष्चित प्रयोजन नहीं होता है। नकल उतारने वाला व्यवहार करने में व्यक्ति अपने व्यवहार तथा दूसरे व्यक्ति के व्यवहार में जो अन्तर देखता है, उसे कम करने का भरसक प्रयास करता है।

3. समेल-आधारित व्यवहार-

समेल आधारित व्यवहार तीसरे तरह का अनुकरण है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों को संकेत मानकर उसका अनुकरण करता है। यहाँ वह अपने व्यवहार तथा दूसरों के व्यवहार की समानताओं एवं विभिन्नताओं पर अधिक ध्यान नहीं देता है। नकल उतारने वाला व्यवहार तथा समेल आधारित व्यवहार में अन्तर यह है कि नकल उतारने वाला व्यवहार में नकल उतारने वाला व्यक्ति तथा जिसके व्यवहारों का नकल उतारने वह जा रहा है, में सामाजिक समानता होती है अर्थात, वे दोनों ही सामाजिक रूप से लगभग समान होते है जबकि समेल आधारित व्यवहार में ऐसे दोनों व्यक्तियों में सामाजिक असमानता पायी जाती है। इस तरह के व्यवहार में एक व्यक्ति जिसके व्यवहारों को संकेत मानकर अनुकरण किया जाता है पहले व्यक्ति से अधिक योग्य कुशल एवं अनुभवी होते हैं। छोटे भाई द्वारा बड़े भाई के व्यवहारों को संकेत मानकर अनुकरण करना समेल आधारित व्यवहार का उदाहरण है।

9.3.4 भय एवं चिन्ता-

डोलार्ड तथा मिलर के अनुसार भय एवं चिन्ता मानव व्यवहार के दो ऐसे शक्तिषाली प्रेरणात्मक बल है जिसे व्यक्ति सीखता है।इन मनोवैज्ञानिकों का मत है कि भय एवं चिन्ता प्रणोद, संकेत, अनुक्रिया एवं पुनर्बलन के रूप में कार्य करके व्यक्ति को कुछ सीखने की प्रेरणा देता है। भय से तात्पर्य किसी बाह्य या भीतरी, वास्तविक या काल्पनिक खतरों के प्रति एक आषंका से होता है जबकि चिन्ता से तात्पर्य एक ऐसे भय से होता है जिसका स्रोत अस्पष्ट होता है और दमन के कारण छिपा होता है। चिन्ता तथा भय के बीच का संबंध इतना अधिक घनिष्ठ है कि डोलार्ड तथा मिलर ने इसकी एक ही संप्रत्यय के रूप में व्याख्या की है जो निम्नांकित है-

1. प्रणोदन के रूप में भय-

डोलार्ड तथा मिलर ने भय एवं चिन्ता को प्रणोद कहा है। उससे नयी अनुक्रियाएँ करने के लिए व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। भय या डर के कारण हम घरों में या अन्य सुरक्षा प्रदान करने वाले स्थानों में छिप जाते हैं। भय या डर से हम सड़क पर कार या अन्य सवारी को सतर्कता से चलाते हैं। इसी ढंग से चिन्ता के कारण हम अध्ययन में अधिक मन लगाते हैं या कभी-कभी नख को दाँत से काटने लगते हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भय तथा चिन्ता प्रणोद के रूप में कार्य करके हमें कुछ व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

2. अनुक्रिया के रूप में भय-

भय तथा चिन्ता व्यक्ति की आन्तरिक अनुक्रिया हैं जो बाह्य अनुक्रियाओं के समान सीखे जाते हैं तथा वे विलोपित होते हैं एवं उनका स्वतः पुनर्लाभ भी होता है। यद्यपि भय तथा चिन्ता आन्तरिक अनुक्रियाएँ हैं, वे कई तरह की बाह्य अनुक्रिया पैदा करती हैं। भय प्रायः भाग जाने की अनुक्रिया उत्पन्न करता है जबकि चिन्ता प्रायः रक्षात्मक प्रक्रमों की उत्पत्ति करती है।

3. संकेत के रूप में भय-

भय का संकेत मूल्य भी होता है क्योंकि यह एक उद्धीपक होता है जो अन्य उद्धीपकों से भिन्न होता है। संकेत के रूप में भय अधिक तीव्र मात्रा में हो सकता है या कम तीव्र मात्रा में हो सकता है। व्यक्ति कुछ आन्तरिक संकेतों को 'भय' की संज्ञा देकर उसके प्रति अनुक्रिया करना सीख लेता है।

4. पुनर्बलन के रूप में संकेत-

भय एवं चिन्ता अपने आप में पुनर्बलन या पुरस्कार नहीं है परन्तु उसमें कमी का होना एक पुनर्बलन है। एक बालक बड़ा कुत्ता देखकर डर जाता है और भाग जाता है। यहाँ भाग जाना अपने आप में पुनर्बलन नहीं है परन्तु इससे प्रणोद में कमी उत्पन्न होती है जो एक पुनर्बलन कारक के रूप में कार्य करता है।

9.3.5 संघर्ष-

डोलार्ड तथा मिलर (1959) का मत है कि जब दो समान परन्तु अमेल अनुक्रियाएँ करने के लिए व्यक्ति एक ही समय में बाध्य हो जाता है, तो इससे उसमें संघर्ष उत्पन्न होता है। जब व्यक्ति इस संघर्ष की स्थिति में होता है, तो उसमें तनाव, चिन्ता, दुविधा आदि पाये जाते हैं। डोलार्ड तथा मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त में संघर्ष पर गंभीर रूप से एवं गहन रूप से शोध किया गया है और इसके लिए इनके सिद्धान्त की ख्याति काफी है। अपने शोधों के आधार पर इन्होंने चार तरह के संघर्ष का वर्णन किया है तथा कुछ महत्वपूर्ण पूर्वकल्पनाओं का भी वर्णन किया है। संघर्ष प्रकारों का वर्णन करने के पहले यह आवश्यक है कि उन पूर्वकल्पनाओं पर एक नजर डाली जाय। ऐसी पूर्वकल्पानाएँ निम्नांकित चार हैं-

1. डोलार्ड तथा मिलर (1950) की एक महत्वपूर्ण पूर्वकल्पना यह थी कि जब व्यक्ति लक्ष्य के नजदीक आ जाता है, तो व्यक्ति में लक्ष्य पर पहुँचने की प्रवृत्ति हो जाती है। इसे इन लोगों ने उपागम की क्रमिकता की संज्ञा दी है।
2. जब व्यक्ति किसी उद्धीपक के नजदीक पहुँच जाता है, तो उससे दूर होने की प्रवृत्ति उसमें मजबूत हो जाती है। इसे डोलार्ड तथा मिलर ने परिहार की क्रमिकता की संज्ञा दी है।
3. जब एक ही लक्ष्य का धनात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही मूल्य होते हैं, तो व्यक्ति जैसे-जैसे ऐसे लक्ष्य के करीब आता है, उसमें परिहार की शक्ति उपागम की शक्ति से अधिक मजबूत होती है।
4. जब व्यक्ति में प्रणोद की मात्रा अधिक होती है, तो उसमें धनात्मक मूल्य के लक्ष्य पर पहुँचने की प्रवृत्ति तथा ऋणात्मक मूल्य के लक्ष्य से दूर रहने की प्रवृत्ति अधिक मजबूत होती है।

डोलार्ड तथा मिलर (1950) ने निम्नांकित चार तरह के संघर्ष के प्रकार वर्णन किया-

1. उपागम-उपागम संघर्ष
2. परिहार-परिहार संघर्ष
3. उपागम-परिहार संघर्ष
4. द्विउपागम-परिहार संघर्ष

1. उपागम-उपागम संघर्ष-

जब व्यक्ति के सामने दो धनात्मक लक्ष्य होते हैं जो समान रूप से महत्वपूर्ण एवं आकर्षक होते हैं तथा जब व्यक्ति इन दोनों की प्राप्ति एक ही समय में कर लेना चाहता है तो इससे उत्पन्न मानसिक संघर्ष को उपागम-उपागम संघर्ष कहा जाता है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति एक ही समय में अपने दोस्त के बारात में शामिल होना चाहता है तथा साथ-ही-साथ उसी समय अपने बीमार पिता के पास भी जाना चाहता है, तो इससे जो संघर्ष उसके मन में उत्पन्न होगा, वह उपागम-उपागम संघर्ष होगा।

2. परिहार-परिहार संघर्ष -

इस तरह के संघर्ष में व्यक्ति दो ऋणात्मक लक्ष्यों के बीच घिर जाता है और इन दोनों से छुटकारा पाना चाहता है क्योकि इनमें से किसी भी एक की पूर्ति उसके लिए हानिकारक होती है। परन्तु यदि उसे बाध्य होकर किसी एक लक्ष्य के पक्ष में निर्णय लेना पड़ा तो वह मानसिक संघर्ष से गुजरने लगता है। उसकी स्थिति 'इधर गढ्डा उधर खाई' वाली हो जाती है।

3. उपागम-परिहार संघर्ष-

इस तरह के संघर्ष में व्यक्ति के सामने लक्ष्य तो एक ही होता है परन्तु उसके प्रति परस्पर विरोधी भाव उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। इस लक्ष्य पर वह पहुँचना भी चाहता है तथा साथ-ही-साथ उससे दूर भी रहना चाहता है। इस तरह का संघर्ष अन्य संघर्षो की अपेक्षा अधिक घातक होता है।

4. **द्धिउपागम-परिहार संघर्ष-**

इस तरह के संघर्ष में दो या कभी-कभी दो से अधिक भी, धनात्मक लक्ष्य व्यक्ति को एक साथ अपनी-अपनी ओर खींचने लगते हैं। जीवन की अधिकांश परिस्थितियाँ इसी प्रकार की होती हैं जिसमें व्यक्ति को कई धनात्मक एवं ऋणात्मक लक्ष्यों का सामना एक साथ करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न संघर्ष को द्विउपागम-परिहार संघर्ष या बहु-उपागम परिहार संघर्ष कहा जाता है।

9.3.6 दमन एवं अचेतन-

वैसे प्रणोद, संकेत तथा अनुक्रियाएँ जिससे कभी भी व्यक्ति अवगत नहीं हो पाया है या जिसकी संज्ञा नहीं दे पाया है, अचेतन में चला जाता है। फ्रायड के समान ही डोलार्ड तथा मिलर 1950 का मत है कि लैंगिक एवं आक्रामक अनुक्रियाएँ व्यक्ति के अचेतन में रहती हैं। दमन से तात्पर्य उन विचारों से होता है जो व्यक्ति के शाब्दिक नियंत्रण में नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे विचारों के लिए व्यक्ति कोई पर्याप्त शाब्दिक लेबल नहीं दे पाता है। चूँकि दमन प्राक्षाब्दिक तथा स्वचालित होता है, अतः व्यक्ति चाहकर भी दमन को रोक नहीं पाता है। डोलार्ड तथा मिलर के अनुसार दमन की प्रक्रिया इसलिए होती है क्योंकि जब व्यक्ति कुछ खास-खास अनुभूतियों के बारे में सोचना बन्द कर देता है, तो वह अपने आप में पुरस्कृत हो जाता है। चूँकि दमन में व्यक्ति कुछ खास-खास विचारों के बारे में चिन्ता करना बन्द कर देता है, अतः व्यक्ति इन विचारों को उत्पन्न करने वाले संकेतों के बीच के संबंधों को ठीक ढंग से प्रत्यक्षण नहीं कर पाता है। दमन की मात्रा साधारण से पूर्ण स्मृति-लोप तक की हो सकती है।

चूँकि दमन व्यक्ति को अपने चिन्तन एवं भावों को शब्दों के रूप में अभिव्यक्त करने से रोकता है तथा वह फिर अपनी समस्याओं के बारे में तर्कसंगत ढंग से सोचना असंभव कर देता हैद्व इससे जो व्यवहार उत्पन्न होता है, उसे डोलार्ड एवं मिलर ने मूढ़ व्यवहार कहा है।

9.3.7 व्यक्तित्व का असामान्य विकास-

डोलार्ड तथा मिलर (1959) का मत है कि व्यक्तित्व का असामान्य व्यवहार संघर्ष, दमन तथा पुनर्बलन आदि के परिणामस्वरूप विकसित होता है। अधिकतर असामान्य व्यवहारों को बचपनावस्था में सीखा जाता है और इसे माता-पिता तथा अन्य सामाजिक एजेण्टों द्वारा उद्देश्य रहित रूप से सिखलाये जाते हैं। इनका कहना है कि तीव्र भय से व्यक्ति प्रायः असामान्य व्यवहार को विकसित कर लेता है। भय की स्थिति में व्यक्ति के मन में संघर्ष उत्पन्न होता है। संघर्ष से व्यक्ति अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाता है और इससे प्रणोद में कमी नहीं आती है और व्यक्ति उच्च प्रणोद की स्थिति में सतत बना होता है। इससे उसमें तनाव एवं चिड़चिड़ापन उत्पन्न होता है जिसे डोलार्ड तथा मिलर (1959) ने विशेष संज्ञा अर्थात् दुर्दशा कहा है। दुर्दषा से घिरे हुए व्यक्ति में कई तरह के असामान्य लक्षण जैसे अनिद्रा, दुर्भीति, बेचैनी, भावषून्यता आदि प्रधान रूप से देखे जाते हैं। संघर्ष से व्यक्ति में अवरोध उत्पन्न होता है अर्थात् विचारों एवं चिन्तन का अवरोध उत्पन्न होता है जिससे दमन उत्पन्न होता है। दमन से व्यक्ति में विवकी एवं अविवेकी क्रियाओं के बीच अन्तर करने की क्षमता समाप्त हो जाती है और इस तरह की स्थिति को डोलार्ड तथा मिलर ने मूढ़ता की संज्ञा दी है। ऐसे मूढ़ व्यक्ति आत्म-दोषयुक्त ढंग से व्यवहार करते हैं जिससे व्यक्ति में असामान्यता उत्पन्न हो जाती है।

9.3.8 मनोचिकित्सा-

डोलार्ड तथा मिलर (1950) यह मानते हैं कि असामान्य व्यवहार सीखा हुआ व्यवहार होता है और मनोचिकित्सा में व्यक्ति को नये ढंग से समायोजन करने की क्षमता को सिखलाया जाता है। इन लोगों ने मनोचिकित्सा में फ्रायड द्वारा प्रतिपादित प्रविधियों जैसे स्पप्न विष्लेषण, स्वतंत्र साहचर्य तथा हस्तान्तरण आदि को महत्वपूर्ण बतलाया है तथा साथ-ही-साथ सामान्यीकरण, विभेदीकरण तथा विलोपन को उपयोगी बतलाया है। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से रोगी को उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं का प्रयोग अधिक-से-अधिक करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जब रोगी सही-सही ढंग से विवकी एवं अविवेकी क्रियाओं में अन्तर करना सीख लेता है, तो उससे दमन एवं स्पष्ट अवरोध अपने आप समाप्त हो जाते हैं और उसमें दूरदर्षिता, वास्तविक प्रत्याषाएँ, अनुकूली योजना एवं सूझ-बूझ आदि काफी बढ़ जाते है।

9.4 डोलार्ड तथा मिलर सिद्धान्त का मूल्यांकन-

डोलार्ड तथा मिलर द्वारा प्रतिपादित उद्धीपक अनुक्रिया सिद्धान्त का मूल्यांकन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस सिद्धान्त के कुछ गुण एवं परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. डोलार्ड तथा मिलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्ति के सिद्धान्त को वैण्डुरा के सामाजिक-सीखना सिद्धान्त की तुलना में अधिक विस्तृत माना जाता है। इस सिद्धान्त में व्यवहारवादी नियमों को मनोविश्लेषण तथा सामाजिक विज्ञानों से जोड़ने की कोशिश की गयी है। फलस्वरूप, इसमें व्यक्तित्व की एक विस्तृत एवं सामान्य व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।
2. डोलार्ड एवं मिलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व का सिद्धान्त पहले ऐसा सिद्धान्त है जिसमें स्पष्ट एवं अस्पष्ट दोनों ही तरह के शाब्दिक व्यवहार पर संकेत तथा अनुक्रिया के रूप में बल डाला गया है। संकेत उत्पन्न अनुक्रिया के आधार पर व्यक्तित्व के उच्चतर मानसिक क्रियाओं की संतोषजनक व्याख्या हो पायी है।
3. इस सिद्धान्त के सभी प्रमुख संप्रत्यय स्पष्ट रूप से एवं वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित है तथा आनुभाविक घटनाओं से वस्तुनिष्ठ रूप से संबंधित है। इससे इस सिद्धान्त की विश्वसनीयता एवं निर्भरता अधिक बढ़ जाती है।
4. इस सिद्धान्त की व्याख्या से स्पष्ट है कि इसमें एक ठोस एवं प्रत्यक्षवादी उपागम पर अधिक बल डाला गया है तथा आत्मन्ष्ठि संप्रत्यय जैसे अन्तर्ज्ञान आदि का सहारा व्यक्तित्व की व्याख्या में नहीं की गयी है।
5. डोलार्ड एवं मिलर का सिद्धान्त विशिष्ट रूप से एवं सावधानीपूर्वक सीखने की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है तथा उस पर व्यक्तित्व की व्याख्या को आधारित किया गया है। फलस्वरूप, इस क्षेत्र में अन्य सिद्धान्तों के लिए यह सिद्धान्त एक मॉडल के रूप में कार्य करता है।
6. इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व की व्याख्या करने में सामाजिक सांस्कृतिक चरों का खुलकर प्रयोग किया गया है। फलस्वरूप, इस सिद्धान्त को सांस्कृतिक मानवषास्त्रियों द्वारा भी अधिक प्रयोग में लाया गया है।

इन गुणों के बावजूद व्यक्तित्व के इस सिद्धान्त के कुछ परिसीमाएँ हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. डोलार्ड एवं मिलर द्वारा प्रतिपादित उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त की सबसे जबर्दस्त आलोचना यह है कि इस सिद्धान्त में न तो उद्धीपक और न ही अनुक्रिया को ही विषिष्ट रूप से समझने की कोषिष की गयी है। दूसरे शब्दों में, इस सिद्धान्त में मानव व्यवहार के उपयुक्त उद्धीपकों को तथा उन अनुक्रियाओं जिससे व्यवहार की उत्पत्ति होती है, को वस्तुनिष्ठ रूप से नहीं परिभाषित नहीं किया गया है। आलोचकों ने व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त में उद्धीपक एवं अनुक्रिया के संबंध के बारे में अधिक कहा गया है जबकि स्वयं उद्धीपक तथा अनुक्रिया के बारे में कोई खास बात नहीं कही गयी है।
2. इस सिद्धान्त की एक अन्य आलोचना यह है कि यह अत्यन्त सरल सिद्धान्त है जिसमें मान व्यवहारों को छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट कर अध्ययन करने पर बल डाला गया है। पूर्णतावादी सिद्धान्तवादियों का मत है कि प्राणी को जब तक कार्यात्मक रूप से एक सम्पूर्ण प्राणी के रूप में नहीं समझा जाता है, उनके व्यवहारों को समझना एवं उसके बारे में पूर्वकथन करना संभव नहीं है।

3. उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त की आलोचना इसलिए भी की गयी है क्योंकि इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या करने में भाषा एवं चिन्तन प्रक्रियाओं के महत्व की उपेक्षा की गयी है। दूसरे शब्दों में इस सिद्धान्त द्वारा इस तथ्य की व्याख्या नहीं होती है कि व्यक्ति जटिल संज्ञानात्मक कार्यो को किस प्रकार सम्पन्न कर पाता है।
4. कुछ आलोचकों का मत है कि मिलर तथा डोलार्ड द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त की मूल प्राक्कल्पनाएँ पषुओं पर न कि मानव पर किये गए तथ्यों पर आधारित है। क्या पषुओं पर किये गए अध्ययनों के आधार पर मनुष्यों की उन विशेषताओं के बारे में समझा जा सकता है जो पषुओं की विशेषताओं से भिन्न होते हैं? इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर हमें अभी तक इस सिद्धान्त के आधार पर नहीं मिल पाया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद मिलर तथा डोलार्ड द्वारा प्रतिपादित उद्धीपक अनुक्रिया सिद्धान्त को एक प्रमुख सिद्धान्त माना गया है क्योंकि यह वस्तुनिष्ठ एवं आनुभाविक शोधों पर आधारित है।

अभ्यास प्रश्न -

1. व्यक्तित्व के डोलार्ड एवं मिलर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में जॉन डोलार्ड थे-

क. एक मनोवैज्ञानिक ख. एक समाजशास्त्री

ग. एक इतिहासकार घ. इसमें से कोई नहीं

2. डोलार्ड एवं मिलर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में कितनी तरह के संघर्ष का वर्णन किया है।

क. दो ख. तीन

ग. चार घ. पाँच

9.5 सार संक्षेप

डोलार्ड एवं मिलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त एक अधिगम सिद्धान्त है जिसमें निम्नलिखित तीन तत्वों का अनोखा संगम देखने को मिलता है-सीखने का प्रयोगात्मक अध्ययन, व्यक्तित्व विकास का मनोविश्लेषणात्मक उपागम तथा व्यवहार को समझने में अन्तर्दृष्टि।

इस सिद्धान्त के प्रमुख सम्प्रत्यय निम्नलिखित हैं-सीखने के मूलतत्व उच्चतर मानसिक क्रियाएं, अनुकरण, भय एवं चिन्ता, संघर्ष, दमन एवं अचेतन, व्यक्तित्व का असामान्य विकास तथा मनोचिकित्सा।

9.6 पारिभाषिक शब्दावली-

प्रणोदः एक ऐसा शक्तिषाली उद्धीपक जो व्यक्ति/प्राणी को क्रिया करने के लिए प्रेरित तो करता है, परन्तु उस क्रिया के स्वरूप का निर्धारण नहीं करता।

पुनर्बलनः एक ऐसी घटना जो संकेत या अनुक्रिया के बीच के सम्बन्ध को मजबूत करके भविष्य में अनुक्रिया के होने की संभावना को बढ़ाता है।

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख 2. ग

9.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5. Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6. Eysenck – The scientific study of personality.

9.9 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न -

1. डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की समीक्षा करें।
2. डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के प्रमुख संप्रत्यय कौन-कौन से हैं? सीखने के मूल तत्वों की व्याख्या करें।
3. डोलार्ड एवं मिलर के अनुसार व्यक्तित्व के लिए विभिन्न तरह के मानसिक संघर्ष की संगतता बतायें।